जीवन सखा

— रीरिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य का पथ-प्रदर्शक —

जल-चिकित्सा अंक

जनवरी

१९४६

वार्षिक मूल्य ३)

इस अंक का ३)

विषय सूची

—:o:—

दांतों की शोभा, मुख की शोभा !
चेहरे की सुन्दरता के लिए दांतों की सुन्दरता निहायत जरूरी है। यदि आपके दांत सड़-गल गये हों, निकलवा देने की जरूरत हो तो उन्हें बिना किसी तकलीफ के और वैज्ञानिक रीति से निकलवा देने और उनकी जगह नये दाँत बनवाने के लिये नीचे लिखे पते से पत्र-व्यवहार करें या स्वयं आकर मिलें। हमारे यहां दाँत और आँख की प्रायः सभी बीमारियों का सही और निरापद इलाज भी होता है।
डा० किशोरीलाल, सर्जन डेन्टिस्ट
६७, जानस्टन गंज (मंदिर दरबेश्वरनाथ के सामने)
इलाहाबाद
मधुर जीवन
(व्यावहारिक तथा दैनिक मनोविज्ञान का मासिक पत्र)
यह पत्र आपको पुरानी मानसिक लीक से निकाल कर नए विचार देगा। आपको शीघ्रही दूसरों पर प्रभाव डालने, वश में करने, मित्र बनाने तथा लोकप्रियता बढ़ाने में सहायतादेगा; आपके कार्य करने की योग्यता बढ़ायेगा। मनोवैज्ञानिक चिकित्सा, वशीकरण, दाम्पत्य जीवन के रहस्य, सेक्स, बाल मनोविज्ञान तथा प्रतिदिन के संपर्कों में कैसे मनोविज्ञान के नियमों का प्रयोग करना सिखायेगा। अमेरिका के जिस पत्र के आदर्शों पर इसे चलाया जा रहा है उसके बीस हजार ग्राहक हैं। विशेष विवरण जानने के लिए आज ही लिखें:—
संचालक, महेन्द्र मन्दिर, नयापुरा, कोटा (राजपूताना)
रबर की मोहर
और
पीतल की सील, चपरास, डाई, स्टैन्सिल, स्टील स्टैम्प तथा साइनबोर्ड अच्छे व सस्ते बनते हैं।
हमारी तैयार की हुई मोहरों की एजेन्सी लेकर लाभ उठाइये।
मुन्नूलाल वर्मा एण्ड सन्स
८४, जानसेन गंज, इलाहाबाद

Reg. No. 1-172

जलचिकित्सा अंक

जीवन सखा

सम्पादक

डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह

वर्ष ११] जनवरी [अङ्क १

शुभ संदेश

'जीवन-सखा' का जल-चिकित्सा अंक निकलने वाला है, वह उपयोगी हो और जनता में प्राकृतिक चिकित्सा की भावना फैलावे, यह मेरी मंगल कामना है।

वर्षों के अनुभव से मेरा विश्वास है कि औषधियों के विषय में अन्ध-परम्परा ने मनुष्य मात्र में मानसिक दुर्बलता फैला रखी है। प्राकृतिक चिकित्सा का आधार प्राकृतिक जीवन है। अप्राकृतिक औषधियों की ओर से मनुष्य को खींच कर प्राकृतिक साधनों—मन, तेज, वायु, मिट्टी और जल—द्वारा शरीर को शुद्ध करना, यह प्राकृतिक चिकित्सा का सिद्धान्त है। इन साधनों से न केवल शारीरिक किन्तु मानसिक शुद्धि होती है क्योंकि शरीर और मन का गहरा सम्बन्ध है। तरह तरह की नकली औषधियों के व्यापारिक प्रचार ने न केवल मनुष्य के स्वास्थ्य को धक्का पहुँचाया है किन्तु उसके नैतिक तल को नीचा किया है।

जो लोग प्राकृतिक साधनों का महत्व दिखाकर मनुष्य में स्वास्थ्य सम्बन्धी आत्म-निर्भरता पैदा करते हैं वे धार्मिक दृष्टि से भी समाज की ऊंची सेवा करते हैं। —पुरुषोत्तमदास टण्डन
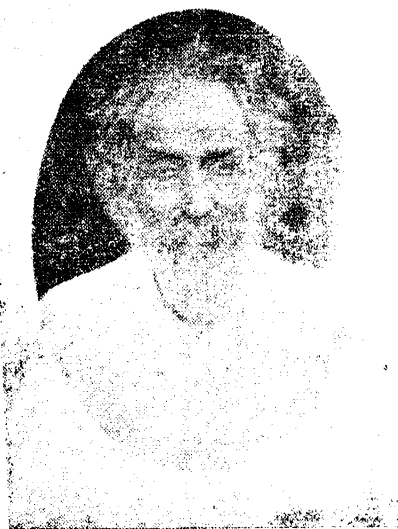
जल-तत्त्व

[श्री गंगाप्रसाद गौड़, 'नाहर']

जल जीवन-धारण के लिए उतना ही आवश्यक है जितना कि श्वास लेने के लिए वायु। 'जल में अमृत है, जल में औषधियां हैं। जल रोगों का शत्रु है, यही सभी रोगों का नाश करता है'—यह है हमारी कतिपय वैदिक ऋचाओं का अर्थ जिससे प्रकट होता है कि अनादि काल से ही भारतवासी जल के औषध गुण से सर्वथा परिचित थे—परिचित ही नहीं थे वरन् जल में उन्हें इतने गुण दिखायी दिए थे कि वे इसकी देवता (वरुण) के रूप उपासना भी करने लगे। वेदों में जल 'जीवन' तथा अमृत भी कहा गया है, जो जल की इसी महानता का द्योतक है।

प्रस्तुत लेख में 'नाहर' जी ने जल के इसी नैसर्गिक गुण पर प्रकाश डाला है। आप प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली के मर्मज्ञ ही नहीं एक अनुभवी विशेषज्ञ भी

हैं। इधर आप 'तत्व चिकित्सा-विज्ञान' नामक एक वृहद् ग्रंथ तैयार करने में लगे हैं। यह लेख उसी का एक अंश है। —सं०]

सृष्टि के आरम्भ में भगवान की चेतना-शक्ति की प्रेरणा से क्रमशः आकाश, वायु, तथा तेज (अग्नि) के प्रादुर्भाव होने के बाद रूपतन्मात्रमय तेज के विकृत होने पर उससे रसतन्मात्र हुआ, जिससे जल-तत्त्व की उत्पत्ति हुई। रस अथवा जल तत्त्व अपने शुद्ध स्वरूप में एक ही है, किन्तु अन्य भौतिक पदार्थों के संयोग से वह कसैला, मीठा, तीखा, कड़ुवा, खट्टा, नमकीन तथा गदला आदि हो जाता है।

वस्तुओं को गीला करना, मिट्टी आदि को पिण्डाकार बना देना, तृप्त करना, प्राणियों को जीवित रखना, प्यास बुझाना, पदार्थों को मृदु करना, ताप की निवृत्ति करना, सब प्रकार की स्वच्छता प्रदान करना और कूपादि में से निकाल लिए जाने पर उन्हें फिर भर देना—ये जल की वृत्तियां हैं।

भ्रम, क्लान्ति, मूर्च्छा, पिपासा, तन्द्रा, वमन, विबंध और निन्द्रा को दूर करना, शरीर को बल देना, उसे तृप्त

करना, हृदय को प्रफुल्लित रखना, शरीर के दोषों को दूर करना छः प्रकार के रसों का कारण बनना तथा प्राणियों के लिए सर्वदा अमृत तुल्य सिद्ध होना आदि जल के साधारण कार्य हैं तथा शीतलता, तरलता, हल्कापन, एवं स्वच्छता इसके प्राकृतिक गुण।

जल के अनेक नाम हैं, जैसे, पानीय, सलिल, नीर, कीलाल, जल, अम्बु, आप, वारि, वारिक, तोय, पय, पाथ, उदक, जीवन, वन, अम्भ, अर्ण, अमृत, और धनरस आदि। इन नामों में जल का नाम 'जीवन' और 'अमृत' होना, इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि प्राणियों का जीवन धारण करना जल पर ही अवलम्बित है या जल प्राणियों का प्राण है। शास्त्रों में भी कहा है :

'जीवनां जीवनम् जीवो जगत सर्वन्तु तन्मयम्'

अर्थात् जल प्राणियों का प्राण है। सम्पूर्ण संसार जलमय है। मतलब यह कि जल वर्षण से हमें खाद्य-पदार्थ मिलते हैं, जल में सम्पूर्ण रोगों को नाश करने की शक्ति विद्यमान है, तथा आश्रय और संसर्ग भेद से जल में जीवन दान के कितने ही अन्य गुण पाये जाते हैं, जिससे उत्तम स्वास्थ्य एवं दीर्घ आयु की उपलब्धि होती है।

वेदों में जल का एक नाम 'सोम' भी है, और वहां इस को ही बलवर्द्धन, द्युम्नवर्द्धन, शार्यवर्द्धन, आप्यायन करने वाला, मधुमत्तम आदि कहा है। वेदों में स्थान-स्थान पर कहा है कि इन्द्र अर्थात् आत्मा 'सोम' के द्वारा अपनी तृप्ति करता है तथा शरीर के संवर्द्धन और रक्षण आदि 'सोम' के स्वाभाविक सौम्य कार्य हैं।

वेदों में जल के गुणों की प्रशंसा और जल द्वारा रोग-निवृत्ति के वर्णन स्वरूप कितनी ही ऋचायें हैं, जिनमें से कुछ नीचे दी जाती हैं:—

'म्योभुवस्तान ऊर्जेद धातान महेरणाय चक्षसे ॥'

—ऋ० मं० ७ अ० ६। ५

अर्थात्, जल अत्यन्त आरोग्यप्रद एवं बलदायक है।

'जलाषणाभिषिंचत जलषिणोपसिंचत।
जलाषमुग्रं भेषजं तेननो मृड जीवसे'

—ऋ० मं० ६ अ० ५७ मं० २

अर्थात् भगवान आदेश करते हैं कि जल से अभिसिंचन करो। जल सर्व प्रधान औषधि है। इसके सेवन से जीवन सुखमन बनता है और शरीर की अग्नि भी आरोग्य-वर्द्धक होती है।

'आपोहिष्ठा मयो भुवस्ता न ऊर्जे दधातन।
महेरणाय चक्षसे ॥ यो वः शिवतमो
रसस्तस्य भाजयतेहनः। उशतीरिव मातरः।
तस्मादरंगमामवो यस्य
क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः।
ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम्
अपोयायामि भेषजम् ॥'

अर्थात्, जल हम को सुख दे, सुखोपभोग के लिये पुष्ट करे, बड़ा और दृढ़ करे। जिस प्रकार मातायें अपने दुधमुँहे बच्चों को दूध पिलाती हैं, हे जल! उसी प्रकार तुम हमें अपना मंगलकारी रस पान कराओ। तुम हमारे मलों का नाश करो और योग्य संतान प्राप्त करने में सहायक हो। हे परमेश्वर! हम तुमसे अन्नादिक पदार्थों के स्वामी मनुष्य मात्र का रक्षक तथा रोगमात्र की औषधि जल मांगते हैं।

'आपो इद्धा उ भेषजोरापो अभीव चातनीः।
आपस सर्वस्य भपजोस्तास्तु कृण्वन्तु भेषजम् ॥'

—ऋ० १०। १३७। ६

अर्थात् जल ही औषधि है, जल रोगों का दुश्मन है, यह सभी रोग को नाश करता है, इसलिये यह तुम्हारा भी रोग दूर करे।

'अमृतं वै आपः'

—तै० आ० १। १६

अर्थात्, अमृत का देने वाला जल ही है।

'आप इद्धा उ भेषजोरापो अभीव चातनीं।
आपस सर्वस्य भेषजो स्तास्ते मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ॥,

अथर्व० ३। ७। ५

अर्थात् जल ही औषधि है, जल रोग को दूर करता है, जल सब रोगों का संहार करता है। इसलिये यह जल तुम्हें भी कठिन रोग के पंजे से छुड़ा ले।

'अप्स्वन्तरममृतमप्सु भेषजम्।,

—अथर्व० १। १। ५। ४

अर्थात्, जल में अमृत है, जल में औषधियां हैं।

'शन्नोदेवीरभिष्टये आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभिस्रवन्तु नः॥'
—ऋ० १०। ६। ४

अर्थात्, हे ईश्वर! दिव्यगुणों वाला जल हमारे लिए सुखकारी हो, अभीष्ट पदार्थ की प्राप्ति कराये, हमारे पीने के लिये हो, सम्पूर्ण रोगों का नाश करे, तथा रोगों से पैदा होने वाले भय को न पैदा होने दे, और हमारे सामने बहे।

'इदमापः प्रवहत, यतकिंच दुरितं मयि।
यद्वा अहम् अभिदुद्रोह, यद्वा शेपेउतानृतम्।

अर्थात् हे परमात्मा! मुझमें जो पाप (भीतर बाहर का अशौच) है, मैंने जो द्रोह, विश्वासघात किया है या मैंने जो अपशब्द कहे हैं या मैं जो झूठ बोलता हूं, उन सब को जल बहा ले जाय।

संसार के अन्य देशों की बात नहीं कह सकते। पर हम भारतवासी तो जल की महिमा एवं उसके रोगनाशक गुणों के सम्बन्ध में अति प्राचीन काल से जानकारी रखते हैं और नित्य प्रति उससे लाभ उठाते हैं। हमारे सभी सांसारिक और पारमार्थिक कार्यों के करने के प्रथम जल से स्नान करना अनिवार्य है तथा हमारा कोई भी धार्मिक कार्य बिना जल की सहायता के सुसम्पन्न हो ही नहीं सकता। हम भारतवासी जल के इन्हीं कल्याणकारी गुणों पर मोहित होकर जल को साधारण जल न मानकर वरुण देवता के रूप में उसकी पूजा करते हैं। इसके अतिरिक्त गंगा-जल पर अटूट श्रद्धा-भक्ति जो भारतवासियों के हृदयों में आदिकाल से चली आ रही है उसे संसार भलीभांति जानता ही है।

जल प्राण-रक्षा के लिये प्रसिद्ध पञ्च तत्त्व है। यह जीवन के लिये उतना ही आवश्यक है, जितना श्वास लेने के लिये वायु। पेय पदार्थों में तो जल से बढ़कर कोई अन्य शान्तिदायक पेय है ही नहीं। थोड़े में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि जल, ईश्वर प्रदत्त वह अमृत है जिसे उसने कृपा करके हम मृत्युलोक-वासियों को सुख-शान्ति का जीवन बिताते हुये, यदि हम चाहें तो, अमर तक होने के लिये भेजा है। अब यह हमारी गलती है जो हम उसके प्रयोगों से अनभिज्ञ रहकर उससे उचित लाभ न उठावें।*

*लेखक की अप्रकाशित पुस्तक 'तत्त्व चिकित्सा-विज्ञान' से।

संक्रामक रोग तथा वैज्ञानिक जलोपचार

डा० के० शंकरन् नायर, सेवाग्राम, वरधा

[लेखक महात्मा गांधी के साथ। चित्र में महात्मा जी माइक्रोस्कोप द्वारा कीटाणु का निरीक्षण करते हुए दिखायी देते हैं।

कीटाणु हमारे सच्चे मित्र हैं—शत्रु नहीं, जैसा कि आधुनिक कीटाणुवादी एलोपैथिक डाक्टर बताते हैं। इस भूतल का एक कोना भी, जहाँ वायु का प्रवेश है, कीटाणु से रिक्त नहीं। फिर इनकी सृष्टि संहारक नहीं हो सकती। कीटाणुओं की उत्पत्ति, उनकी आकृति-प्रकृति, उनकी वृद्धि के लिए कृत्रिम माध्यम, आदि ज्ञातव्य बातों की संक्षेप में जानकारी प्राप्त कराते हुए लेखक ने अपने मत का बड़े सुन्दर ढंग से प्रतिपादन किया है। साथ में कुछ विभिन्न रोगों में जल-प्रयोग की विधियाँ एवं अपने महत्वपूर्ण अनुभव देकर लेखक ने इस लेख को बहुत ही उपयोगी बना दिया है।

डा० शंकरन् सेवाग्राम में महात्मा गांधी के आश्रम के एक सम्मानित सदस्य हैं। आप वहाँ स्वास्थ्य एवं स्वच्छता सम्बन्धी विभाग के प्रधान हैं। कीटाणुवाद, शरीर-विज्ञान, रोग-विज्ञान तथा एलोपैथी का गम्भीर अध्ययन के करने साथ ही आप प्राकृतिक उपचार-विधियों के प्रयोग में भी पारंगत हैं। आपके विस्तृत अनुभव एवं ज्ञान का परिचय इस सुन्दर लेख से पूरी तरह मिल जाता है।—सं०]

संक्रामक रोगों तथा जलोपचार के वैज्ञानिक प्रयोग के विषय में कुछ कहने के पूर्व अच्छा होगा यदि हम अपना ध्यान किंचित् भूतल के समस्त जीवधारियों तथा उनके एक दूसरे से सम्बध के प्रति आकृष्ट करें और इन संक्रामाण करने वाले जीवाणुओं (Bacteria) के आकार-प्रकार एवं शारीरिक बनावट का जीव-विज्ञान की दृष्टि से विश्लेषण करें। इससे हमें रोग-संक्रमण (Infection) के सिद्धान्त और उनपर जलोपचार के वैज्ञानिक प्रयोग सम्बन्ध बातों को अपेक्षाकृत अधिक स्पष्टतापूर्वक और आसानी से समझने में विशेष सहायता मिलेगी।

इस भूतल के समस्त जीवधारियों को मुख्यतः दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है:—(१) 'यूनी सेल्यूलर,' (एक बीज कोषात्मज) अर्थात् जिनका निर्माण केवल एक ही 'सेल' या बीज-कोष से हुआ है और (२) 'मल्टी सेल्यूलर' (बहु बीज-कोषात्मज) अर्थात् जिनका निर्माण बहुत से बीज-कोषों से हुआ है। 'यूनी सेल्यूलर' जीवधारियों को 'बैक्टीरिया' या जीवाणु कहते हैं।

जीवधारियों का पारस्परिक सम्बन्ध

लेकिन इन सूक्ष्म जीवाणुओं का अन्य उच्चतर श्रेणी के प्राणियों, मनुष्यों तथा पशुओं से क्या सम्बन्ध है तथा एक दूसरे के शान्तिपूर्ण अस्तित्व को बनाए रखने के लिए उनके क्या निर्धारित कार्य हैं, इसकी भी हमें उपेक्षा न करनी होगी, इसे ध्यान में रखना होगा।

कीटाणुओं का वर्गीकरण तथा उनकी बनावट

आधुनिक कीटाणुवाद ने केवल मनुष्यों तथा पशुओं के लिए रोगकारक (pathogenic) अथवा सामान्य

(Non pathogenic) कीटाणुओं से सम्बन्ध रखता है, वरन् उसके अन्तर्गत उच्चतर श्रेणी के वनस्पति जन्य जीवाणु भी आते हैं।

ये जीवाणु (बैक्टीरिया) दो प्रकार के माने गए हैं—

(१) रोग-उत्पन्न करनेवाले (Pathogenic) और (२) सामान्य (Non-Pathogenic)। इसके अतिरिक्त इनके दो प्रकार और भी माने गए हैं— (१) प्राणि जन्य और (२) वनस्पति जन्य। प्राणिजन्य और वनस्पतिजन्य, इन दोनों श्रेणियों के जीवाणु समान्यरूप से रोग उत्पन्न करने वाले अथवा साधारण कोटि के Non pathogenic।

बैक्टीरिया इतने सूक्ष्म कीटाणु हैं कि वे केवल अणु-वीक्षण यंत्र (माइक्रोस्कोप) द्वारा ही देखे जा सकते हैं। आधुनिक कीटाणुवाद के अनुसार ये सूक्ष्म कीटाणु वायु-मण्डल में तथा ऐसे प्रत्येक स्थान पर जहां पर वायु का समागम होता हो—जैसे त्वचा का ऊपरी भाग, मुख, कण्ठ तथा नासिक-रंध्र में मौजूद रहते हैं। इन कीटाणुओं को बुनियादी तौर से दो भागों में बांटा गया है—(१) पैरा-साइट्स (Parasites) और (२) सेप्रोफाइट्स (Saprophytes)। इसके अनन्तर इन कीटाणुओं को, उनकी आकृत-प्रकृति के अनुसार अनेक श्रेणियों में रक्खा गया है जिनमें कुछ मुख्य श्रेणियाँ इस प्रकार हैं—(१) कोकाई (Cocci), (२) बैसिली (Bacilli) और (३) स्पिरिला (Spirilea)। यहां पर इन्हीं तीन प्रकार के कीटाणुओं का संक्षेप में परिचय करा देना पर्याप्त होगा।

(१) कोकाई—ये कीटाणु गोलाकार अथवा अण्डाकार होते हैं। ये तीन प्रकार के होते हैं—डिप्लो कोकाई (Diplo cocci), (२) स्टेफिलो कोकाई (Staphylo cocci), और स्ट्रेप्टो कोकाई (Strepto cocci)। जब ये कीटाणु दो-दो की संख्या में पाए जाते हैं तो इन्हें डिप्लो कोकाई कहते हैं। न्यूमोनिया तथा गर्दन तोड़ बुखार आदि रोगों के कीटाणु इसी कोटि के अन्तर्गत आते हैं। जब ये गुच्छे के रूप में पाए जाते हैं तो इन्हें स्टेफिलो कोकाई कहते हैं। ये कीटाणु फोड़े, विषाक्त व्रण तथा दुष्ट-व्रण (कारबंकिल) से निकलने वाले मवाद में पाए जाते हैं। इन कीटाणुओं की उत्पति कुछ अम्ल के सहित श्वेत-सारों के खमीर से होती है। जब ये कीटाणु एक शृंखला (जंजीर) के रूप में पाए जाते हैं तो इन्हें स्ट्रेप्टो कोकाई कहते हैं। ये प्रायः हर प्रकार के प्रदाह की अवस्थाओं— जैसे नासूर की झिल्लियों का प्रदाह, हृदय के भीतरी स्तरों का प्रदाह, जोड़ों का प्रदाह, अस्थि के ऊपरी स्तर का प्रदाह, आदि—में पाए जाते हैं। इसी प्रकार टांसिलाइटिस (कंठ की कौड़ियों का प्रदाह) कान के पर्दों का प्रदाह, दांत की जड़ में होने वाले विषाक्त घाव आदि के प्रदाह में भी यही कीटाणु पाए जाते हैं, किन्तु ये उतने भयानक नहीं होते जितने कि ऊपर बताए गए रोगों में पाए जाने वाले कीटाणु होते हैं। इन कीटाणुओं की वृद्धि के लिए रक्त और शर्करा तथा श्वेत-सार के माध्यम की आवश्यकता होती है।

(२) बैसिली—ये कीटाणु ऊर्ध्वरेखा की आकृति के होते हैं। यक्ष्मा, टायफायड, पैरा टायफायड, (ए० बी० सी०) डिफ्थीरिया, पेचिश, इन्फ्लुएंजा, टिटैनस (धनुपटंकार) आदि रोगों में ये कीटाणु पाए जाते हैं। इन्हें अपनी वृद्धि के लिए श्वेतसार की आवश्यकता होती है। किन्तु यक्ष्मा और कुष्ठरोग में पाए जाने वाले बैसिली कीटाणुओं की कृत्रिम माध्यम के द्वारा कम वृद्धि होने के उदाहरण मिलते हैं।

(३) स्पैरिला—ये कीटाणु आकुंचित (curved) आकृति के होते हैं। ये उपदंश या गरमी (Syphilis) से होने वाले स्राव में तथा बुखार की अवस्थाओं में भी पाए जाते हैं। इनकी वृद्धि के लिए रक्त के माध्यम की आवश्यकता होती है।

बैक्टीरिया की रासायनिक बनावट

बैक्टीरिया की रासायनिक बनावट में विशेष विभिन्नता पाई जाती है। माइक्रोकेमिल प्रयोगों से यह प्रकट हुआ है कि बैक्टीरिया में ग्लाइकोजन (Glycogen) और वसा (Fats) से सम्बद्ध तत्व मौजूद रहते हैं। बैक्टीरिया में प्रोटीन, चरबी या तेल जैसे पदार्थ (Lepoid Snbstances) और लवण विभिन्न अनुपात में रहते हैं। बैक्टीरिया-जन्य प्रोटीन (Mycro protien) साधारण प्रोटीन

से इस माने में भिन्न होता है कि यह सुरासार Alcchol से प्रभावित नहीं होता और इसमें गंधक (Sulpher) नहीं रहता। बैक्टीरिया जन्य प्रोटीन प्रधानतः ग्लोबलिन और न्युक्लियो प्रोटीन होते हैं। इसके सेल की दीवारें 'काइटिन' (chitin) की बनी होती हैं। बैक्टीरिया जन्य लवण में मुख्यतः सोडियम, पोटैशियम और मैगनेशियम पाए जाते हैं।

भिन्न-भिन्न बैक्टीरिया के भोजन, उनकी आकृति-प्रकृति के अनुसार, भिन्न-भिन्न होते हैं। मोटे तौर पर बैक्टीरिया की वृद्धि के लिए उन्हें दिए जाने वाले कृत्रिम भोजन के सम्बन्ध में होना यह चाहिए कि ये कीटाणु जिस वातावरण में उत्पन्न होते हैं, उसका जहां तक हो सके अधिक से अधिक अनुसरण किया जाय।

रोग कारक (Pathogenic) बैक्टीरिया के सम्बन्ध में ध्यान रहे कि उनको जो कृत्रिम भोजन दिया जाय वह शरीर के तरल पदार्थों तथा तन्तुओं के अनुरूप होना चाहिए। बैक्टीरिया को अपनी वृद्धि के लिए प्रोटीन, नाइट्रोजन और लवणों की आवश्यकता होती है है। माध्यम (Medium) की प्रतिक्रिया विशेष महत्वपूर्ण है। अधिकांश बैक्टीरिया की कुछ क्षारीय (Alkaline) माध्यम के द्वारा सर्वोत्तम रीति से वृद्धि होती है। लेकिन अन्य बैक्टीरिया—जैसे हैजे के कीटाणु—के माध्यम में लेशमात्र अम्ल (Acid) मौजूद होने पर अपनी वृद्धि नहीं कर सकते।

नमी (Moisture)—बैक्टीरिया की वृद्धि के लिए नमी का होना अत्यन्त आवश्यक है। सूखे वातावरण में अपने अस्तित्व को कायम रखने की बैक्टीरिया की क्षमता में उनकी श्रेणी के अनुसार विशेष अन्तर पाया जाता है। इस तरह के वातारण में B. coli और V. cholra (हैजे के कीटाणु) शीघ्रता से मर जाते हैं। लेकिन क्षय के कीटाणु (B. Tuberculosis) कुछ महीने तक अपने अस्तित्व को कायम रख सकते हैं।

बैक्टीरिया का गैस (Gaseous Environment) से सम्बन्ध

कुछ किस्म के बैक्टीरिया केवल आक्सीजन की मौजूदगी में ही बढ़ सकते हैं, जैसे B. Subtitis। अन्य बैक्टीरिया आक्सीजन के सर्वथा अभाव में बढ़ते हैं, जैसे B. Tetani। लेकिन वे अपने माध्यम के यौगिकों (Compounds) से आक्सीजन प्राप्त करते हैं। अधिकांश कीटाणुओं के लिए आक्सीजन का रहना या न रहना महत्वपूर्ण नहीं होता, हालां कि उन्हें ऐसा वातावरण अनुकूल पड़ता है जिसमें आक्सीजन हो। इन कीटाणुओं को अपने अस्तित्व के लिए वायु की आवश्यकता नहीं होती।

तापमान

(अ) बैक्टीरिया की वृद्धि पर तापमान प्रभाव—प्रत्येक किस्म के बैक्टीरिया के लिए एक निर्दिष्ट तापमान (Optimum Temperature) होता है, जिसमें उनकी वृद्धि सबसे अधिक होती है। मोटे तौर पर यह तापमान (जिसमें बैक्टीरिया की क्रियाशीलता सबसे अधिक होती है) बैक्टीरिया की प्रकृति के अनुसार निर्धारित होता है। उदाहरण के लिए प्राणि-तन्तुओं में निवास करने वाले बैक्टीरिया की सबसे अधिक वृद्धि ३७'५ डिगरी सेन्टीग्रेड पर होती है तथा सड़न उत्पन्न होने की प्रक्रिया में योग देने वाले बैक्टीरिया की सबसे अधिक वृद्धि २० डिगरी और २४ डिगरी सेन्टीग्रेड तापमान के बीच होती है। कुछ कीटाणुओं की वृद्धि के लिए तो बहुत ऊंचा तापमान (६० से ७० डिगरी सेन्टीग्रेड) अनुकूल पड़ता है—जैसे थरमोफेलिक बैक्टीरिया (Thermophelic Bacteria) यह कीटाणु खाद और अंत्र-मार्ग (Intestinal tract) आदि ये पाया जाता है। इसका सबसे अच्छा विकास ५० डिगरी सेन्टीग्रेड से ५५ डिगरी सेन्टीग्रेड या उससे भी अधिक तापमान में होता है।

(ब) कीटाणुओं के जीवन-धारण की क्षमता (Viability) पर प्रभाव—अपुनरुत्पादक कीटाणु ५७ डिगरी सेन्टीग्रेड से अधिक तापमान में शीघ्रता से मर जाते हैं। वह न्यूनतम तापमान जिसमें कोई भी कीटाणु १० मिनट के भीतर मर जाता है, 'थरमल डेथ प्वाइन्ट' (Thermal death point) कहलाता है। शुष्क-ताप (Dry heat) की अपेक्षा नमी में अधिक शीघ्रता पूर्वक कीटाणु मर जाते हैं।

अपुनरुत्पादक कीटाणु १४० डिगरी शुष्क तापमान में ३ घन्टे तक अथवा १०० डिगरी सेन्टीग्रेड तापमान में ६ घन्टे तक जीवित रह सकते हैं। सभी ज्ञात कीटाणु १२५

डिगरी सेन्टीग्रेड तापमान का भाप लगने पर १५ मिनट में मर जाते हैं।

प्रकाश

बैक्टीरिया अपनी वृद्धि तथा जीवन-धारण के लिए अन्धकार को पसन्द करते हैं और सूर्य की सीधी किरणें पड़ने पर शीघ्रता से मर जाते हैं। सूर्य की हरी, कासनी (Violet) और परा-कासनी (Ultra-Violet) किरणें कीटाणुओं के लिए सबसे अधिक सांघातिक होती हैं। प्रकाश का कार्य ऊपरी (Supefricial) होता है और बहुत पतले शीशे के द्वारा सूर्य की किरणें रुक जाती है। रोन्टेजेन किरणें (Rontgen Rays) और रेडियम-उद्भूत प्रकाश (Radium emanation) अधिक काल के बाद ही अपना कोई प्रभाव दिखा सकते हैं

पारस्परिक प्रभाव—कुछ (पैरा साइट्स) कीटाणु जीवित प्राणि-तन्तुओं अथवा पौधों में वृद्धि प्राप्त करते हैं। अन्य कीटाणुओं (सैप्रोफाइट्स) की वृद्धि जल, सड़ने वाले वस्तुओं, मिट्टी (Soil) आदि में होती है तथा अन्य बहुतेरे कीटाणु पैरा साइट्स अथवा सैप्रोफाइट्स की तरह रह सकते हैं। इस के अलावा कीटाणुओं में एक अन्य प्रकार का सम्बन्ध होता है है जिसे 'सिम्बियोसिस' (Simbiosis) कहते हैं, जिसमें दोनों तरह के कीटाणु (Symbronts) दूसरे की वृद्धि के अनुकूल पड़ते हैं। जैसे लिक्वेमिनेसो की जड़ में, जहां से इन पौधों के लिए नाइट्रोजन मिलता है, बढ़ने वाले कीटाणु। दूसरी ओर 'एन्टी बियोसेस' (Antibioses) उस अवस्था को कहते हैं जो कि तत्संबंधी कीटाणुओं की वृद्धि के लिए प्रतिकूल पड़ती है।

कीटाणु सम्बन्धी उफान (Bacterial enzymes)

कीटाणु सम्बन्धी उफान या खमीर प्राणियों व पौधों के खनिज पदार्थ (Organic matter) के बहुत ही विषम (complex) परमाणुओं (molucules) को अपेक्षाकृत साधारण तत्वों में खंडित कर देता है। सड़ाव की अवस्था में एल्बूमिनस कण (Abluminous bodies) इण्डोल (Indol), और एरेटाइनिन (Eretinin) जैसे समान्य तत्वों में विभाजित हो जाते हैं और विभिन्न सुरासार (Alkohol), तथा अम्ल (Acid) कीटाणुओं द्वारा श्वेतसारों (Carbo hydrates) के खण्डित होने के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं।

रंगीन पदार्थ उत्पन्न करनेवाले क्रोमोजेनिक बैक्टीरिया (Chromogenic bacteria) जैसा कि उनके नाम से प्रकट होता है, एक रंगीन पदार्थ (pigments) सामान्यतः लीपो क्रोम्स (Lipochromes) उत्पन्न करते हैं। प्राणि-तन्तुओं में कोई विशेष का वसा-प्रधान रंगीन पदार्थ (Fatty pigments) पाया जाता है। ये रंगीन पदार्थ सम्भवतः लसीका (Exeritory products) के रूप में होते हैं। ये चूंकि कीटाणुओं के स्वतः शरीर के अन्दर उत्पन्न होते हैं, इसलिए यह रंगीन पदार्थ कीटाणुओं के कृत्रिम या वास्तविक माध्यम के आक्साइड में परिणत होने (Oxidation) से (अनुचित आहार के फलस्वरूप) शरीर में उत्पन्न हो सकता है।

कीटाणु जन्य विष (Bacterial Toxins)

कीटाणु जन्य की विष विस्तृत जानकारी हमें बैक्टीरिया तथा उनके प्रभावों के अनुसार प्राप्त हो सकती है। ये कीटाणु हमारे लिए अनेक रोग-विज्ञान सम्बन्धी व्याघात(pathological Lisions) उत्पन्न करते हैं। ये विष प्रोटीन होते हैं प्रधान और इन्हें निम्न श्रेणियों में विभाजित किया गया है:—एक्सोटाक्सिन्स' अथवा एक्स्ट्रा सेल्यूलर टाक्सिन (Exo toxins or extra cellular toxins), घुलन शील विष, जो कि डिप्थीरीरिया, (Diptheria), टीटैनस और पेचिश Dysentry आदि कतिपय रोगों के कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न होता है। इन विषों को बहुत ही प्रमुखता मिली है क्योंकि विशिष्ट विष का विशिष्ट तन्तु से सम्बन्ध होता है। यह विष कीटाणुओं को तरल माध्यम में पाल कर प्राप्त किया जा सकता है।

एण्डोटाक्सिन अथवा इन्ट्रासेल्यूलर टाक्सिन ये—विष बैक्टीरिया के बीज कोषों (Cells) से उत्पन्न विषाक्त पदार्थ होते हैं और ये आवृत किए हुए मध्यम में मीलित नहीं होते। इनके कार्य भी अपेक्षाकृत कम विशिष्ट होते हैं और ये अधिकांश रोग कारक कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न होते हैं।

टोमेन विष (ptomains poison)

टोमेन विष प्रोटीन के विकीर्ण होने की प्रक्रिया के बीच उत्पन्न होते हैं। प्रोटीन पहले एल्बुमोज़ Albumoses और पेपटोन peptones में और उसके अनन्तर एमिनोऐसिड

Ameinoaidis में परिणत होते हैं। टोमेन वानस्पतिक उपक्षार (Alkaoids) के अनुरूप होते हैं और वे अ-विषाक्त जैसे मिथिलेमीन (Mythylamine) अथवा विषाक्त हो सकते हैं—जैसे पनीर में पाया जाने वाला टीरो टाक्सिकन (Tyro toxicon) और मसूरिका (Measles) में पाया जाने वाला मिटीलो टाक्सिन (Mytilo toxin.)

बैक्टीरिया की वृद्धि के लिए माध्यम

समस्त कीटाणुओं को सफलता-पूर्वक अपनी वृद्धि एवं विस्तार के लिए माध्यम (भोजन) की आवश्यकता होती है। और यह भोजन अथवा माध्यम भी यदि कृत्रिम है तो उसे शरीर की बनावट तथा कार्यकेअनुरूप होना चाहिए। लेकिन रोग-कारक कीटाणुओं के सम्बन्ध में अनुभवों तथा प्रयोगों द्वारा यह सामान्य रूप से प्रकट हुआ है कि यह अपने भोजन के रूप में सीरम (Serum) या रक्त को ग्रहण करता है। कीटाणुओं के भोजन अथवा माध्यम में अन्नसार (Proteids) और श्वेतसार (Corbohydrates) की तरल या कुछ ठोस रूप में तथा पार दर्शक (Transparent) अथवा अ-पार दर्शक (Opaque) रूप में आवश्यकता होती है।

मांस (Meat) की लसीका कीटाणुओं का सामान्य रूप से भोजन है। उन कीटाणुओं का भोजन, जिनका अप्लीमम तापमान(Optimum Temperature)जिलेटिन जिसमें उनकी सबसे अधिक क्रियाशीलता होती है (जान्तव पदार्थ विशेष) गलन-विन्दु (Melting point) से अधिक होता है, एक अन्य जान्तव पदार्थ,(श्वेतसार) एजर, (Agger) होता है। दोनों जिलेटिन, एजर और रक्त का सीरम, ये सभी अधिकांश कीटाणुओं के लिए आवश्यकीय भोजन होते हैं।

कीटाणु-विशेषज्ञों की राय में समस्त रोगवाही कीटाणुओं की वृद्धि तथा विस्तार का मूल आधार एक विशिष्ट तापमान, नमी और उपयुक्त माध्यम हैं। अब हम यह देखें कि मनुष्य के शरीर-प्रणाली में किस प्रकार ये माध्यम, तापमान तथा नमी उत्पन्न होते हैं।

कीटाणुओं के लिए अनुकूल माध्यम, तापमान और नमी शरीर में कई तरह उत्पन्न होते है। जैसे—(१) अनमेल (Incompatible) भोजन, (२) अन्नसार (Proteid) तथा श्वेत-सार प्रधान खाद्य ठूस ठूस कर खाना और (३) भोजन के अवशिष्ट अंश का सड़ाव।

अनमेल भोजन

प्रति दिन ग्रहण किए जाने वाले भोजन में मुख्य अंश स्टार्च (श्वेतसार) और प्रोटीन (दाल, मांस, इत्यादि) होते हैं। इनके रासायनिक परिवर्तन(Convertion) के लिए इनसे सर्वथा भिन्न पदार्थ की—अर्थात्, स्टार्च के लिये क्षार (Alkaline) की और प्रोटीन के लिए अम्ल (Acid) की आवश्यकता होती है। जब किसी अम्लकारक खाद्य के साथ स्टार्च ग्रहण करते हैं—जैसे अम्लकारक फल, दही या खटाई पैदा करने वाला कोई अन्य पदार्थ—तो क्षारीय तत्व टियालिन (Ptyalin)—लार में पाया जाने वाला एक प्रकार का खमीर जिससे स्टार्च डेक्सट्रिन (Dextrin) और शर्करा में परिणित होता है। प्रभावहीन (Neutralised) हो जायगा। इस तरल पदार्थ टियालिन (ptyalin) का कार्य समस्त स्टार्चों और श्वेतसारों पर असर करना और उनको घुलनशील शर्करा (Sugar) तथा एक प्रकार की अन्य शर्करा विशेष माल्टोज (Maltose) में परिणत कर देना होता है। लेकिन अम्ल का मिश्रण होने के कारण वह भोजन क्षार-तत्व के इस आधार को नष्ट कर देगा और शरीर में अम्ल तथा गैस उत्पन्न होंगे। इसी प्रकार जब प्रोटीन प्रधान भोजन संगठित (Consentrated) क्षारीय खाद्य-वस्तुओं के साथ ग्रहण किया जाता है तो उसके फलस्वरूप प्रोटीन का पेप्सिन (pepsin)—पाचक-रस का उपादान—विशेष में परिणत होन का कार्य पर्याप्त रूप से नहीं हो सकता। और इसका नतीजा यह होगा कि प्रोटीन में खमीर उठने लगेगी और अन्त में वह सड़ने लगेगा। इस प्रकार शरीर-प्रणाली में स्टार्च और प्रोटीन का सड़ाव बैक्टीरिया की वृद्धि के लिए बहुत अनुकूल माध्यम प्रस्तुत कर देता है।

आवश्यकता से अधिक भोजन

यह कहा जाता है कि हम जितना भोजन करते हैं उसका केवल एक तिहाई भाग हमें जीवित रखता और बाकी दो तिहाई भाग डाक्टरों को जीवित रखता है। यह कथन यथार्थ ही है। जब असाधारण परिमाण में भोजन

किया जाता है तो शरीर की पाचन-प्रणाली उसे उपर्युक्त घुलनशील खाद्य-तत्वों में परिणत करने में असमर्थ हो जाती है और धीरे-धीरे अजीर्ण की शिकायत पैदा हो जाती है। अजीर्ण समस्त कीटाणु जन्य रोगों का मूल कारण बनता है। उदाहरण के लिए मैं यहां पर हैजे के सम्बन्ध में भी अपने निजी अनुभवों को देना चाहता हूँ जो कि मध्य प्रान्त में इस संक्रामक रोग के सम्बन्ध में मुझे प्राप्त हुए। लड़ाई के दिनों में गरीब लोग पूरा-पूरा राशन नहीं प्राप्त कर सकते थे और वे तुवर, चना, अरहर, मोट (इन सब में संगठित रूप से प्रोटीन होता है) खाकर ही गुजर करते थे। अतः उन लोगों को अजीर्ण की शिकायत पैदा हो गयी जिसके परिणाम स्वरूप पिछले वर्ष १९४५ में उस प्रान्त में हैजे का प्रकोप होने पर ७०,००० व्यक्ति काल-कवलित हुए। एलोपैथी-प्रणाली भी यह स्वीकार करती है कि हैजे के कीटाणुओं की वृद्धि तथा विस्तार के लिए अजीर्ण उपयुक्त आधार प्रस्तुत करता है।

भोजन के अवशिष्ट अंशों का सड़ाव

हम जो भोजन ग्रहण करते हैं उसके अधिकांश भाग को बड़ी आँत (Colon) से साफ हो जाना चाहिए। लेकिन जब अधिक परिमाण में भोजन किया जाता है तो बड़ी आंत की मल-विसर्जन शक्ति शिथिल पड़ जाती है और इस प्रकार भोजन का अवशिष्ट अंश बड़ी आँत में जमा होने लगता है और अन्ततोगत्वा यह मल को बाहर ठेलने में असमर्थ हो जाता है। अनुचित आहार तथा अपर्याप्त मल-विसर्जन के फलस्वरूप पच न सकने वाला स्टार्च तथा प्रोटीन से भरा हुए भोजन का अवशिष्ट अंश रुका पड़ा रहता है जो बाद में सड़ने लगता है। इसके अनन्तर इस सड़ाव के बीच उत्पन्न होने वाले गैस तथा विभिन्न प्रकार के अम्लों का बड़ी आँत शोषण कर लेती है और यह विषाक्त पदार्थ तन्तुओं में एकत्र हो जाता है। अन्त में ये तन्तु निष्क्रिय हो जाते हैं और रोग रोगवाही कीटाणुओं का संक्रमण होने की सम्भावना हो जाती है।

रोग संक्रमण का सिद्धान्त

आधुनिक डाक्टरी प्रणाली का यह विश्वास है तथा वह दूसरों को भी यह विश्वास दिलाना चाहती है कि जिस प्रकार किसी दुर्बल राष्ट्र पर कोई शक्तिशाली राष्ट्र आक्रमण कर देता है उसी प्रकार शरीर-प्रणाली की रोग-प्रतिरोधक शक्ति क्षीण पड़ जाने पर तथा कथित रोग-कारक कीटाणु उस पर आक्रमण कर देते हैं। और इस आधार पर डाक्टर लोग कुछ रसायनों (Chemicals) का आविष्कार करके इन कीटाणुओं को नष्ट कर देने का प्रयत्न कर रहे हैं। लेकिन उनका यह विश्वास यह कहां तक सत्य है, यह विचारणीय है।

हमें यह ज्ञात हो चुका है कि ये कीटाणु (Bactera) वायु-मंडल में सर्वत्र विद्यमान हैं। कोई भी स्थल, जहां पर वायु का समावेश होता हो, इन कीटाणुओं से रहित नहीं है। यह भी स्वयं सिद्ध है कि इस भूतल के समस्त प्राणी इस विश्व के अस्तित्व को शांति पूर्वक बनाए रखने के लिए हैं। कीटाणुओं की बनावट सम्बन्धी विज्ञान से हमें यह भी ज्ञात हुआ है कि बिना किसी विशिष्ट तापमान, नमी और उपयुक्त आहार के इन कीटाणुओं की वृद्धि असम्भव है। इस लेख में पहले यह भी बताया जा चुका है कि ये तीनों आवश्यक वस्तुएं शरीर-प्रणाली में विभिन्न कारणों से उत्पन्न होती हैं। इसके अलावा आधुनिक डाक्टर चिकित्सा विज्ञान स्वयं कहता है कि रोग निवारण (Immunily)-शक्ति के अभाव के ही कारण रोग के कीटाणुओं का संक्रमण (Infection) होता है। यह स्वतः रोग संक्रमण का सिद्धान्त ही है जो आज सारे संसार को आतंकित किए हुए है, जिसके फलस्वरूप बड़ी से बड़ी बेवकूफियां भी हो रही हैं। संसार में भयानक से भयानक अनिष्ट अथवा आपदाएं भी आधुनिक विज्ञान की घातक भूलों के ही परिणाम हैं। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि सम्पूर्ण जड़ जगत् जीवित प्राणियों को लेकर बना है। खमीर उठना (Fermentation) और स्वतः रोग भी शरीर में असाधारण तापमान के फलस्वरूप विजातीय द्रव्यों का ही उद्रेक है। खमीर का उठना शरीर में सूक्ष्म जीवाणुओं (Microdes) और वैसिली (Bacpili) की बनावट पर निर्भर करता है, जो कि सर्वथा स्वभाविक कार्य है।

इस जड़ जगत् को, जिसका अनुभव हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा करते हैं, भ्रम मात्र समझना चाहिए और इससे उदासीन हो जाना चाहिए, किन्तु डाक्टरी

चिकित्सा विज्ञान के प्रतिनिधि जड़वाद के आधार पर इस जगत को सर्वथा विपरीत दृष्टि से देखते हैं। वे असत्य को सत्य समझते हैं। सामान्य रूप से अगोचर पदार्थों तथा जीवों को देखने के लिए एक विशेष प्रकार के शीशे (Magnifying glass) का प्रयोग किया जाता है। रोन्टेज़ेन यंत्र (Rontgen aparatus) का प्रयोग शरीर के समूचे भीतरी आग को प्रज्वलित कर देने के लिए किया जाता है। यह पहले सिरे की बेवक़ूफ़ी नहीं तो और क्या है?

जब कि यह जड़ जगत् वस्तुतः भ्रम ही है, मनुष्य की निर्णायक बुद्धि उस पर शासन करती है; अणु-वीक्षण यंत्र Microscope द्वारा देखे गए कीटाणु घर घसीटे जाते हैं और उन्हें हौवा बना दिया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में इन कीटाणुओं के प्रति भय और आतंक भर दिया जाता है।

इस प्रकार तो हम यही समझेंगे निर्दोष जीवाणु भी संसार में मृत्यु तथा विनाश को आमंत्रित कर सकते हैं। रोगवाही कीटाणु जीवन तथा आरोग्य सम्बन्धी गलत तौर तरीके के परिणाम मात्र हैं। इस सम्बन्ध में सबसे बुरी बात तो यह है कि ये वैज्ञानिक सिद्धान्त मनुष्य को अपनी रोग-व्याधि के मूल कारण से अधिकाधिक विमुख करते जा रहे हैं और इस प्रकार वे अपनी रोग-व्याधि का कारण अपने से बाहर, कीटाणु इत्यादि में, ढूंढ़ते हैं। इससे तो मनुष्य विनाश के ही पथ पर अधिकाधिक अग्रसर होता जायगा। इस दृष्टि से वर्तमान कीटाणुवाद सर्वथा अस्वास्थ्यकर ही है।

'आपद्काल का मित्र ही सच्चा मित्र है'। प्रकृति के नियम के अनुसार, ऐसे प्रत्येक अवसर पर जब कि वे देखते हैं कि मनुष्य की शरीर-प्रणाली अपने कार्य को पूरा करने में असफल हो रही है, उसकी सफाई करने के लिए ये कीटाणु प्रस्तुत रहते हैं, अर्थात् शरीर में जो मल इकट्ठा हो जाता है उसका कुछ भाग तो वे स्वयं खा जाते हैं और बाकी विषम भाग अपेक्षाकृत अधिक सामान्य हिस्सों में विभक्त हो जाता और इस प्रकार उसे बाहर निकाल फेंकना शरीर प्रणाली के लिए सरल बन जाता है। इस रासायनिक (शरीर-यंत्र सम्बन्धी) प्रतिक्रिया तथा विष (बैक्टीरिया से निःसृत स्राव) के कारण बहुत अधिक तापमान, पीब पड़ना सिर दर्द आदि लक्षण प्रकट होते हैं, जो मनुष्य को भयभीत कर देते हैं और वह डर कर कृमि-नाशक सूइयों और दवाइयों का प्रयोग करता हुआ अपने 'सच्चे मित्र' कीटाणुओं का नाश कर देने के लिए कोशिश करने लगता है। लेकिन इससे उसकी हालत बद से बदतर ही हो जाती है।

हमें यह स्मरण रखना होगा यह शरीर एक मन्दिर है जिसमें हमारी आत्मा प्रतिष्ठित है। यह इस मन्दिर में कोई विजातीय द्रव्य प्रविष्ट होने देना अथवा उसमें रहने देना नहीं चाहती। इसलिए यह शरीर में एकत्र हुआ विसदृश अथवा विजातीय द्रव्य को तथा बैक्टीरिया तथा औषधियों के सेवन से शरीर में उत्पन्न हुए विष को भी बाहर निकाल फेंकना चाहती है। इस प्रकार दवाइयों के विष को दूर करने का यह अतिरिक्त भार उस पर आ पड़ता है। जब जहरीली औषधियों के प्रयोग से शरीर-प्रणाली के मित्र कीटाणु मर जाते हैं तो उस हालत में शरीर-प्रणाली निरुपाय हो जाती है।

उपर्युक्त बातों से अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि इन तथा कथित रोगाणुओं (Bacteria) हम को शत्रु के बजाय अपना घनिष्ट मित्र ही समझें और उन्हें प्राकृतिक उपायों जैसे जल का वैज्ञानिक प्रयोग अर्थात् कटि-स्नान मेहन स्नान, न्युट्रल बाथ, धूप-स्नान पैरों का गर्म नहान, गरम पट्टी, बाष्प-स्नान, गीली पट्टी, छाती की गीली पट्टी, तरारा, आदि के साथ साथ उपवास तथा वैज्ञानिक आहार के द्वारा शरीर-मंदिर को मल रहित तथा स्वच्छ रखने में सहायता पहुँचावें, यही हमारे लिए श्रेयस्कर है।

जल के वैज्ञानिक प्रयोग

जल आन्तरिक (शारीरिक) तथा बाह्य स्वच्छता का प्रतीक है। हमारे शरीर की ७५ प्रतिशत रचना जल से हुई है तथा हमार शारीरिक क्रियाएं सर्वांशतः जल पर ही निर्भर करती हैं। शरीर विज्ञान की दृष्टि से यह भी सत्य है कि जल के बिना जीवन धारण करना असम्भव है।

निःसन्देह रोगोपचार के समस्त उपकरणों में जल-प्रयोग सबसे प्राचीन है। जलोपचार का उल्लेख प्राचीनतम चिकित्साग्रन्थों में मिलता है। सबसे प्राचीन जातियों की

रीति रिवाजों में भी इसका समावेश पाया जाता है। प्राचीन मिस्री, फारसी, यहूदी, यूनानी और हिन्दू सभी जातियों ने रोगोपचार के लिए जल को अपनाया था, जैसा कि इन जातियों के लोग आज भी करते हैं।

भारतीयों में यह सामान्य परम्परा थी की दर्द तथा विषाक्त फोड़ा (Ulcer) को दूर करने के लिए सारे शरीर पर स्थानिक भाप का प्रयोग किया जाता था! घाव और सूजन पर ठंडी पट्टी देने का भी रिवाज था।

महात्मा गांधी और प्रो० मंसाली भाई जैसे महापुरुषों ने यह दिखा दिया है कि वे जल का प्रयोग करते हुए कई दिनों तथा निरान्न रह कर भी जीवन धारण किए रह सकते हैं। महात्मा जी ने ७६ साल की अवस्था में २१ दिनों का उपवास किया था। प्रो० मंसाली भाई ने साबरमती आश्रम में ५३ दिनों का और १९४२ में वरधा में ६३ दिनों का उपवास किया था। इन उपवासों में उन्होंने जल के सिवाय और कोई वस्तु ग्रहण नहीं की थी। मैं यह कहूँगा उपवास के बाद इन दोनों व्यक्तियों का स्वास्थ्य बहुत उत्तम हो गया, जिससे कि यदि वे चाहें तो १५० वर्ष से भी अधिक समय तक जीवित रह सकते हैं!

जल का एक प्रधान गुण यह है कि वह संसार के प्रायः सभी पदार्थों को अपने में घुला सकता है। शरीर के भीतर यह वह माध्यम है जिसके द्वारा भोजन का रस तैयार होता है जो तन्तुओं में समीकरण के लिए पहुँचता है। इस प्रकार से तैयार होने वाला भोजन का रस हो धमनियों में तथा वह रस के हो रूप में यकृत और गुर्दों में तथा त्वचा तथा अन्य मल-विसर्जक अवयवों में पहुंचता है।

यह एक उल्लेखनीय बात है कि शर्करा और पेपटोन (peptone), जो कि पचे हुए भोजन से तैयार होनेवाले दो मुख्य पदार्थ हैं, ये दोनों ही जल में अत्यन्त घुलनशील हैं। कारबोनिक ऐसिड गैस (Carbonic acid gas), जो कि श्वेतसारों के आक्सीजन के साथ मिलने की क्रिया (Oxidition) से उत्पन्न होता है, तथा हाइड्रोकार्टोन (Hydrocartons) भी लवणाक्त (Saline) माध्यम में अत्यधिक घुलनशील हैं। मूत्र में पाया जाने वाला विषाक्त द्रव्य—यूरिया—(Uriea) भी, जो कि अन्न-सार (proteid) के आक्सीजन से मिलने की क्रिया के समय उत्पन्न होता है, जल में बहुत अधिक घुलनशील है। यूरिकाम्ल (Uric acid), चीनी से उत्पन्न विषाक्तद्रव्य तथा अन्य असाधारण पदार्थ, जैसे बैक्टीरिया जन्य विष साधारण मल की अपेक्षा जल में अधिक आसानी के साथ घुल जाते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि परिमार्जक द्रव्य के रूप में जल न केवल शरीर के बाहरी भाग के लिए बल्कि अन्दरूनी हिस्से के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण है। इस सम्बन्ध में मैं यहाँ पर दो-तीन विशेष उदाहरण देना चाहता हूँ। महात्मा गांधी ने १९२४ में दिल्ली में जो उपवास किया था उन दिनों एक बार उनकी हालत बहुत बिगड़ी हुई जान पड़ने लगी। उनके पेशाब में 'कास्ट' (वे 'सेल' जिनसे रक्त-शिराएं बनी हैं) जाने के लक्षण प्रकट होने लगे, जिससे डाक्टर लोग घबड़ा गए। उन्होंने महात्मा जी को थोड़ा फल का रस लेने के लिए राजी करने का प्रयत्न किया, लेकिन भला गांधी जी कब माननेवाले थे। इसके उत्तर में गांधी जी ने डाक्टरों से यही कहा—'आप २ दिन तक खामोश रहिए।' गांधी जी ने जल का सेवन कुछ और बढ़ा दिया। दो दिन में पेशाब में 'कास्ट' जाना अपने आप बन्द हो गया!

दूसरा उदाहरण स्वयं मेरा अनुभव है जो श्रीमती किशोर लाल मशरूवाला की बीमारी के समय, जब कि वह गत नवम्बर के महीने सेवाग्राम आश्रम में टाइफस बुखार से पीड़ित हो रही थीं, मुझे हुआ। उनके मूत्र में एलब्यूमेन—रक्त के साथ रहने वाले कण विशेष—जाने के लक्षण प्रकट होने लगे। उनको सांस लेने में कठिनाई होने लगी। ऐसी हालत में उन्हें काफी पानी पीने को दिया गया और उनकी अवस्था सामान्य (Normal) पर फिर पहुंच गयी। एक दूसरा अनुभव मुझे गत वर्ष मध्य प्रान्त में हैजे के व्यापक प्रकोप के समय, जब कि ७०,००० आदमी इसके शिकार बने थे, हैजा निवारकआन्दोलन के सिलसिले में हुआ। वह यह कि जब के रोगी हैजे के गुर्दे या मूत्राशय (Kidneys) ने काम करना बन्द कर दिया—जब कि उनका पेशाब रुक गया तो उन पर गरम और ठंडे जल का प्रयोग किया गया। रोगियों को इस प्रकार के स्नान देने के ५ मिनट के अन्दर ही फिर पेशाब होने लगा। निःसन्देह जल में रोगोपचार सम्बन्धी एक महान्

गुण है। तरल होने के कारण जल का शरीर पर अनेक प्रकार से आन्तरिक और वाह्य प्रयोग हो सकता है—स्नान, पट्टी, तरारा आदि के रूप में। और इनके परिणाम भी विशेष उल्लेखनीय होते हैं। इस सम्बन्ध में यहां पर विभिन्न रोगों में जल-प्रयोग के उदाहरण देना अप्रासंगिक न होगा।

फोड़ा (Absess)

शरीर के किसी भाग में कुछ ललाई के साथ धीरे-धीरे या पीड़ायुक्त सूजन के साथ-साथ शीघ्रतापूर्वक फोड़ा हो सकता है। सूजन में जलन होने लगती है, वहाँ की त्वचा लाल और मुलायम हो जाती है और वह टपकने लगता है। इस हालत में त्वचा के निचले हिस्से में या मांस पेशियों में फोड़ा हो सकता है। फोड़ा स्वतः प्रकृति के एक प्रयत्न के रूप में है, जिसके द्वारा वह शरीर में घुसे हुए दूषित पदार्थ को निकाल देना चाहती है। अगर उस फोड़े से निकलने वाली पीब का एक बूंद अणुवीक्षण यंत्र के सामने रक्खा जाय तो उसमें बहुसंख्यक स्टेफिलोकोकाई कीटाणु दिखाई देंगे।

लक्षण—बुखार, ललाई, सूजन, प्रदाह, पीड़ा, पीठ में दर्द। यदि यह गहरा है तो सिर दर्द।

चिकित्सा—द्वितीय अवस्था के बजाय प्रथमावस्था में ही इसकी चिकित्सा यह है कि रोगी को पूर्ण उपवास कराया जाय और बीच-बीच में उसे एक प्याला गरम पानी में नीबू का रस निचोड़ कर पीने को दिया जाय। लेकिन नीबू के साथ जितना गरम पानी उसे पीने के लिए बताया गया है उसके अलावा उसे और पानी भी पीने को न दिया जाय। हर रोज दो बार और आवश्यकता जान पड़ने पर तीन बार एनिमा भी दिया जाय। एनिमा का पानी सिरगरम होना चाहिए। यह रोगी की अवस्था के अनुसार ही किया जाय।

फोड़े पर स्थानिक गरम और ठंडी पट्टी। यह साधारण पट्टी से भिन्न होती है। पहले गरम जल की पट्टी दें—कोई ५ मिनट तक। उसके बाद कुछ क्षण तक—२० या २५ सेकेण्ड या उससे भी अधिक समय तक—ठंडी पट्टी दें जिससे त्वचा की गरमी बाहर खींच ली जाय। सूजन गायब होने तक इस क्रम को चलावे।

शारीरिक प्रभाव—गरम पट्टी देने के बाद तुरन्त ठंडी पट्टी देने से ठंडे जल की अस्वरित (Atonic) प्रतिक्रिया स्वरित (Tonic) प्रतिक्रिया में परिणत हो जाती है और इस प्रकार रक्त-नलिकाओं (Blood-vessels) की अवस्था में विशेष परिवर्तन हो जाता है और इसके द्वारा वहाँ की त्वचा में रक्त का संचालन लम्बे अरसे तक सक्रियता पूर्वक कायम रक्खा जा सकता है।

यदि फोड़े की द्वितीयावस्था है या वह बिलकुल पक गया है तो उसका आपरेशन करा देना आवश्यक होगा। लेकिन चीरा लगाए जाने के बाद भी वही गरम और ठंडी पट्टी का प्रयोग जारी रखना होगा। फोड़े पर मिट्टी की पट्टी लगा दी जाय। मिट्टी को घाव पर भी लगाया जा सकता है।

मामूली फोड़ा (Boils)

इसका भी कारण वही है जो विपाक्त फोड़े (Absess) का, लेकिन यह अपेक्षाकृत साधारण होता है।

लक्षण—ललाई, दर्द और अन्त में पीब पड़ जाना।

चिकित्सा—इसकी चिकित्सा भी वही है जो पहले प्रकार के फोड़े (Absess) की। गरम और ठंडी पट्टी और मिट्टी की पुल्टिस। आहार भी वही होना चाहिए। एनिमा के प्रयोग से आंतों को साफ रखना चाहिए।

दुष्टव्रण या पृष्ठव्रण (Carbuncle)

साधारण फोड़े की भाँति दुष्टव्रण का भी विसदृश-द्रव्यों (Dead matter) का केन्द्र होता और है जहाँ के तन्तु मृत हो जाते हैं। यह साधारण फोड़े की अपेक्षा अधिक भयानक होता है। कतिपय प्रतिकूल अवस्थाओं अथवा पहले से ही मौजूद रहने वाले कारणों से कोई फोड़ा दुष्ट-व्रण (Carbuncle) में परिणत हो सकता है। वात-रोग (Gout), बहुमूत्र (Diabetes) और अण्ड-लाल मूत्र (Albuminuria) ये सभी दुष्टव्रण के पूर्व कारण होते हैं। दुष्टव्रण हो जाने पर अवस्था बहुत गम्भीर हो जाती है और इसका शरीर पर बहुत भयानक प्रभाव पड़ता है।

लक्षण—साधारण तथा अन्य प्रकार के फोड़ों के समान, किन्तु पीड़ा अधिक। सूजन फैल भी सकती है। इस के ऊपर की त्वचा लाल हो जाती है। फूटने पर इसमें से पीलापन लिये हुये पीब निकलती है।

चिकित्सा—नीबू के रस के साथ ३ दिनों का उपवास। यदि रोगी की अवस्था अनुकूल हो तथा अभी और उपवास की आवश्यकता जान पड़े तो इसे ३ दिन से अधिक समय तक भी चलाया जा सकता है। उपवास के बाद रोगी को सन्तरे का रस और शाक-भाजियों का रस दें। लेकिन रोग को कोई स्टार्च प्रधान शाक, जैसे आलू, न दिया जाय। फोड़े पर गरम और ठंडी पट्टी बारी-बारी से, दिन में कम से कम ४ बार दी जाय। एनिमा और गरम स्नान बहुत आवश्यक हैं। कम तापमान होने पर न्यूट्रल बाथ भी दिया जा सकता है। यह स्नान बुखार रहने पर भी जारी रक्खा जा सकता है और इस क्रम को तब तक चलाया जा सकता है जब कि फोड़ा अच्छा न हो जाय।

न्यूट्रल बाथ (Neutral Bath) का प्रभाव यह होता है कि इससे त्वचा अपेक्षाकृत सतेज (Active) बन जाती है जिससे मल-बहिष्करण क्रिया में सहायता मिलती है। लेकिन इस स्नान में प्रयुक्त जल का तापमान शरीर के तापमान से कुछ कम होना चाहिए। कम तापमान होने से शरीर में अपेक्षाकृत अधिक गर्मी पैदा होने की क्रिया सतेज हो उठती है तथा इसके अन्य प्रतिक्रियात्मक (Reflex) प्रभाव होते हैं। जब जल का तापमान शरीर के तापमान के बराबर रक्खा जाता है तो उससे मल के बाहर निकलने में रुकावट हो जाती है जिससे शरीर का तापमान बढ़ जाता है। इसका एक दूसरा प्रभाव शमनकारक होता है और इसके स्नायुओं को पूर्ण विश्राम मिल जाता है। स्नायुओं को शक्ति संचय का अवसर प्राप्त होता है जिससे स्नायु-केन्द्र सतेज एवं सक्रिय हो उठते हैं। इससे त्वचा सम्बन्धी स्नायुओं की उत्तेजना (Irretability) शान्त हो जाती है। महात्मा गांधी के लिए तो न्यूट्रल बाथ एक दैनिक कार्य बन गया है।

स्टेफिलो कोकाई कीटा-णुओं के संक्रमण से उत्पन्न सभी रोगों का इसी प्रकार उपचार किया जा सकता है।

स्ट्रेप्टो कोकाई कीटाणु जन्यरोग

इस श्रेणी के रोग कारक अथवा सामान्य (Non pathogenic) कीटाणु टांसिल, (Tonsilites) अन्तः कार्ण प्रदाह (Otitis) दांत की जड़ों में हो जाने वाले फोड़े में पाए जाते हैं जो अपेक्षाकृत कम उग्र होते हैं। मनुष्य के शरीर में स्ट्रेप्टो कोकाई कीटाणुओं का रोग-सम्बन्धी प्रक्रियाओं, जैसे पीब पड़ने की क्रिया, के साथ साथ अथवा बिना इसके सूजन का फैलना, विसर्प रोग, (Erysipelas) नासूर की झिल्लयों में पीब पड़ना, जोड़ों, अस्थि के ऊपर परदों (Periosteum) हृत्पिण्डावरक झिल्ली का प्रदाह (Ulcerative endocardites) बच्चा जनने के उपरान्त प्रायः स्त्री के जनेन्द्रिय में उत्पन्न हो जाने वाला प्रदाह (puerperal) सम्बन्धी रक्त की विषाक्तता (Septicaemia), अंत्र प्रदाह (Appendi-citis) की द्वितीयावस्था में होने वाला अंत्रावरक झिल्ली का प्रदाह (peritonitis) आदि से सम्बन्ध होता है। लेकि न इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात यह स्मरण रखना चाहिए कि ये समस्त रोग स्वतः रोग नहीं, रोग के लक्षण मात्र हैं जैसे बुखार। बुखार कत्तई कोई रोग नहीं है बल्कि रोग का एक लक्षण है। इसलिए उपचार का उद्देश्य होना चाहिए। रोग की जड़ को दूर कर देना यदि हम लक्षण को दृष्टि में रख कर उपचार करेंगे तो यह एलोपैथी जैसा दमनकारी उपचारक्रम मात्र होगा। अतएव मैं यहां स्ट्रेप्टो-को काई कीटाणु अन्य रोगों के उपचार का उदाहरण दूंगा। इसी प्रकार तत्सम्बन्धी रोगों का भी उपचार किया जा सकता है।

विसर्प रोग (Erysipelas)

यह सबसे तीव्र एवं भयानक रोग है। लेकिन जब इसका संक्रमण केवल त्वचा में होता है अर्थात् जब त्वचा में ही दूषित पदार्थ जमा होता है तो यह विसर्प रोग होता है। जब यह विषाक्त पदार्थ तन्तुओं में जमा होता है तो इससे बीज कोषात्मज झिल्लियों (Cellutis) का प्रदाह होता यदि यह कहीं रक्त नालिका में हुआ तो इससे सारे शरीर में रक्त-विकृति (Septicemia) हो जाती है जो और भी भयानक होती है।

निदान—इस रोग का आक्रमण होने पर बेचैनी बहुत बढ़ जाती है और शरीर में क्लांति छा जाती है। इसके साथ साथ शरीर में विषाक्त पदार्थ के फैलने के भी लक्षण प्रकट होते है—जैसे, बुखार, सिर दर्द, वमन, पीठ का दर्द, जोड़ों में दर्द, आदि। जिस स्थान पर यह रोग होता है वह सूज कर

(शेष पृष्ट ५७ पर)

जल चिकित्सा का सिद्धान्त

डा० कुलरंजन मुकर्जी, कलकत्ता

रोग चाहे कोई भी हो किन्तु इसका मूल कारण एक ही होता है—शरीर प्रणाली में विजातीय पदार्थ अथवा मल का संचय। इस मल की सफाई ही रोग दूर करने का सबसे सही इलाज है। शरीर-प्रणाली में संचित मल की सफाई करने में हमारे लिए जल कितना सहायक होता है, यही इस लेख का मुख्य विषय है, जिसे अनुभवी लेखक ने भली-भांति दर्शाया है।

डा० कुलरंजन मुकर्जी कलकत्ते के एक सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक हैं। वहां पर आपका एक स्वास्थ्य-गृह भी है जहाँ पर रोगियों की नैसर्गिक चिकित्सा पद्धति के अनुसार इलाज होता है। आपने प्राकृतिक उपचार अनेक पुस्तकें भी लिखीं हैं। आपकी एक पुस्तक 'वैज्ञानिक जल-चिकित्सा' का हिन्दी संस्करण हिंदी भाषा-भाषियों के बीच आ चुका है और उसे अच्छी लोकप्रियता भी मिल रही है। आपका यह लेख अनुभव पूर्ण एवं उपादेय है।　　—सं०]

हम चाहे जिस रोग से पीड़ित हों, किन्तु शरीर में मल तथा विषाक्त पदार्थों का एकत्रित हो जाना ही उसका मूल कारण होता है। इन दूषित तथा विषाक्त पदार्थों के स्वरूप विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं किन्तु यह असंदिग्ध है कि इसके बिना शरीर में कोई रोग नहीं हो सकता।

ये दूषित तथा विषाक्त पदार्थ साधारण तथा मलांत्र (colon) तथा छोटी आंत की मल-विसर्जन क्रिया में व्यवधान पड़ जाने, मल समुचित रीति से निष्कासन न हो सकने अर्थात् उनमें मल भरे रहने के फलस्वरूप शरीर में उत्पन्न होते हैं। हम जो भोजन करते हैं वह हमारे शरीर को पोषण-तत्व तथा शक्ति एवं स्फूर्ति प्रदान करता है, किन्तु वह जब मल के रूप में आंतों में बहुत समय तक रुका रहता है उस हालत में भी वह पोषणतत्व प्रदान कर सकता है किन्तु इसके साथ-साथ वह विष भी उत्पन्न करेगा। हमारी आंतों की भीतरी दीवार छोटी-छोटी जिह्वाओं से आवद्ध हैं, जिन्हें 'विली' (Villi) कहते हैं। वे सदैव गतिशील बनी रहती हैं और अधपचे खाद्य-तत्वा का शोषण करती रहती हैं। जब आंतों के आंशिक रूम से निष्क्रिय होजाने के कारण मल की सफाई की क्रिया समुचित रीति से नहीं हो पाती और जब बहुत अर्से तक मल रुका पड़ा रहता है तो उसमें बहुत ही सूक्ष्म जीवाणु, जिनका निरीक्षण माइक्रोस्कोप से ही किया जा सकता है, पैदा हो जाते हैं और वे अत्यन्त विषाक्त पदार्थ उत्पन्न करते हैं। और इन विषाक्त पदार्थों का भी शोषण आंतों की जिव्हाएं [Villi] कर लेती हैं। मनुष्य को सताने वाले अधिकांश रोग आंतों के इन विषाक्त पदार्थों के समीकरण से ही उत्पन्न होते हैं।

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि केवल आंतों में मलावरोध होने के ही कारण शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं। हमारे शरीर में जो विविध प्रकार की रासायनिक क्रियाएं-तथा प्रतिक्रियाएं हुआ करती हैं उनके कारण अनेक प्रकार के विष उत्पन्न हुआ करते हैं। इन विषों को हमारे गुर्दे, फेफड़े और पसीना बहाने वाली ग्रंथियां बाहर फेंका करती हैं। यदि हमारे शरीर के ये अंग ठीक समय पर इन विषों को बाहर निकालते रहें तो हम कभी बीमार ही नहीं पड़ सकते। किन्तु जब किन्हीं कारणों से विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालने की क्रिया ठीक से संचालित नहीं हो पती तो फिर यह विष और विजातीय पदार्थ कहां जावें ? अतः वे निश्चय ही हमारे शरीर में अपने लिए स्थान ढूंढ़ लेंगे और स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालेंगे।

कभी कभी यह विष और गन्दगी बहुत लम्बे अर्से तक हमारे शरीर में एकत्रित हुआ करती है। इस समय हमें यह मालूम नहीं होता कि हमारे जीवन में घुन लग रहा है। वह बहुत समय तक अप्रकट रह सकता है और इसमें भ्रान्त धारणा उत्पन्न हो सकती है कि हम बिलकुल स्वस्थ हैं। किन्तु आगे चलकर जब इन्हें सम्हालना कठिन हो

जाता है तो शरीर में भयंकर बीमारी पैदा हो जाती है।

लोगों का ख्याल है कि बीमारी एकाएक हो जाया करती है किन्तु बात ऐसी नहीं है। हमें बीमारी एकाएक हो सकती है किन्तु उसके प्रकट होने में सदा बहुत समय लगा करता है। मामूली सर्दी जुकाम भी एकाएक नहीं होता। जब सर्दी लग जाने के कारण रोम-कूप बन्द हो जाते हैं तो जो विष प्रायः त्वचा के रोम-कूपों से होकर निकला करता है वह गुर्दों और अतड़ियों से बाहर निकलता है। किन्तु हमारे यह अंग जब शक्ति से अधिक काम करने के कारण निर्बल हो जाया करते हैं और रक्त में लगातार विष मिश्रित होता रहता है और इस प्रकार जब यह अतिरिक्त परिश्रम करने में असमर्थ हो जाते हैं तभी प्रकृति उन्हें शरीर के किसी अन्य भाग से निकालती है और हमें सर्दी लग जाया करती है।

इस प्रकार वस्तुतः बीमारी प्रकट होने से बहुत पहले ही हमारे शरीर में गड़बड़ी हुआ करती है और रोग उसी समय प्रकट होता है जब यह गड़बड़ी पूर्णता को प्राप्त हो जाती है। सफाई की क्रिया के अवरुद्ध हो जाने के परिणाम-स्वरूप एकत्रित विष की उपेक्षा शरीर एक सीमा तक ही कर सकता है और जब शरीर की इस सहन शक्ति की सीमा का अतिक्रमण हो जाता है तो हमें कोई न कोई रोग हो जाया करता है।

शरीर के विष को नष्ट करने की जो गुंजाइश हमारे शरीर में हुआ करती है वह उसे शरीर में सरलता से एकत्रित होने की सुविधा नहीं प्रदान करती। जब शरीर अपने अंदर की गरमी को अपने मुख द्वारों से निकालने में असमर्थ हो जाताहै तब गंदगी मूत्र, पसीने और श्वास से निकला करती है। इसी प्रकार गुर्दे का कार्य त्वचा और त्वचा का कार्य गुर्दे तथा शरीर के किसी निष्क्रिय अंग का कार्य दूसरा अंग करने लगता है। हमारा शरीर इस प्रकार का स्वतः कार्य करने वाला एक अद्भुत यंत्र है।

किंतु दिन प्रतिदिन प्राकृतिक नियमों की उपेक्षा करके हम अपने शरीर में एक ऐसी अवस्था उत्पन्न कर लेते हैं जिसमें शरीर में अवांछित तत्वों के एकत्रित होने में सुविधा होती है। समय असमय, बहुत अधिक मात्रा में तथा भक्ष्याभक्ष्य पदार्थों का ग्रहण करना, आवश्यकता से अधिक परिश्रम या आवश्यकता से कम व्यायाम करना, अधिक सहवास करना, बंद कमरों में रहना, उतावला और चिंतित रहना और अनेक ज्यादतियां और व्यतिक्रम हमारे शारीरिक क्रिया में एक उलटफेर उत्पन्न कर देती हैं और इस प्रकार हमारे शरीर की सफाई करने वाले अंगों की क्रिया में व्याघात पहुँचता है।

हम सदा इन अस्वास्थ्यकर पदार्थों को शरीर में एकत्रित करने के लिए उत्तरदायी नहीं हुआ करते। हम जान बूझ कर प्राकृतिक नियमों का अतिक्रमण नहीं करते। कदाचित् हमारा अज्ञान ही हमारा सबसे बड़ा अपराध है, किंतु प्रकृति बड़ी कठोर अनुशासक है। उसके कोष में क्षमा नामक शब्द नहीं होता। जब कभी भी ज्ञान या अज्ञान से हमारे शरीर में बहुत अधिक गंदगी एकत्रित हो जाती है और इस सीमा तक पहुंच जाती है कि वह जीवन की क्रिया में हस्तक्षेप करने लगती है तब शरीर को साफ करने के लिए प्रकृति कोई कठोर साधन प्रयोग में लाती है। प्रकृति की इस क्रिया को रोग कहते हैं।

जब आंतों में भोजन का अवशिष्ट भाग या और कोई गंदगी जम जाती है तो प्रकृति उसे बलपूर्वक दूर करती है। प्रकृति के इस प्रयत्न को पेचिश, दस्त या अजीर्ण कहते हैं।

कभी कभी प्रकृति शरीर की गंदगी को रोम द्वारा निकालना चाहती है इसी कारण खुजली, फोड़े-तथा फुन्सी तथा अन्य चर्म-रोग हो जाया करते हैं।

कभी-कभी शरीर की पतली झिल्लियों को सफाई के द्वारों की भांति प्रयुक्त किया जाता है और हम विभिन्न प्रकार के नजलों की बीमारी सुना करते हैं।

कभी-कभी प्रकृति शरीर की गंदगी को जला देने के लिये शरीर के ताप में वृद्धि कर देती है और हम उसे ज्वर कहते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमें चाहे जो व्याधि हो—चाहे हम उसे दस्त कहें, चाहे फोड़ा या बुखार—सब एक ही बीमारी के अनेक स्वरूप हैं। शरीर में गंदगी और विष का एकत्रित होना ही रोग का मूल कारण है और प्रकृति द्वारा शरीर को स्वच्छ करने के अनेक प्रयत्नों का नाम रोग है।

[शेष पृष्ट ६० पर]

जलोपचार—क्रिया एवं प्रतिक्रिया

श्री विट्ठलदास मोदी, संचालक, आरोग्य मंदिर, गोरखपुर

जल जीवन का दानी और उसका रक्षक दोनों ही है और सम्भवतः इसीलिए हमारे प्राचीन मनीषियों ने जल को 'जीवन' की संज्ञा दी, 'जीवन' को 'जल' का पर्याय बना दिया! जल का महत्व निस्सन्देह बहुत बड़ा है ।

यहां पर आप देखेंगे कि विभिन्न अवस्थाओं में जल-प्रयोग की किस तरह भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाएं होती हैं। विषय जितना गम्भीर है उतना ही यह लेख मोदी जी सरीखे सिद्ध-हस्त लेखक की लेखनी से निःसृत होकर सरल और सुबोध भी बन गया है।

'जीवन सखा' के भूतपूर्व सम्पादक डा० मोदी से पाठकों का परिचय कराने का नहीं, उनका स्मरण दिलाने की आवश्यकता है। हमें इसका हर्ष ही नहीं गर्व भी है कि आप पिछले ५ वर्षों से सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली द्वारा प्रकाशित गांधी जी की रचनात्मक प्रवृत्तियों के—जिनमें प्राकृतिक चिकित्सा भी सम्मिलित है— मुख पत्र 'जीवन साहित्य' के सम्पादन और गोरखपुर में अपने चिकित्सिागृह आरोग्य मंदिर के सफलतापूर्वक संचालन में व्यस्त रहने हुए भी इधर अब हमारे पाठकों के लिये भी समुचित सामग्री नियमित रूप से प्रस्तुत कर रहे हैं। इसके लिए हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।—सं०

जल विभिन्न रूपों में—तरल, वायव्य (भाप) कठोर (बरफ)—प्रयोग किये जा सकने की सुविधा के कारण शरीर के अपने को रोग मुक्त करने के प्रयास में बहुत बड़ा सहायक होता है। अतः जो दुर्बल को सशक्त एवं रोगी को स्वस्थ बनाना चाहते हैं उनके लिए यह चिकित्सा का एक बहुत बड़ा एवं शक्तिपूर्ण साधन है। ठंडे, गरम और सिरगरम पानी का उपयोग नया नहीं है। रोगों से मुक्ति पाने एवं शरीर को स्वस्थ रखने के लिए सभ्य और और असभ्य सभी प्रकार के लोगों द्वारा यह सदियों से प्रयुक्त होता रहा है। पर अब जल-चिकित्सा विज्ञान की दृढ़ भित्ति पर प्रस्थापित हो गई है एवं यह इतनी समुन्नत हो गई है कि जो इसका समझकर उपयोग करते हैं वे इससे मनचाहा एवं लोगों को आश्चर्य में डालने वाला लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

जल में अनेक रूपता के गुण के अलावा तीन गुण और होते हैं—(१) गरमी जज्ब करने और गरमी देने की शक्ति, (२) चीजों को अपने में मिला लेने की शक्ति, (३) रूप परिवर्तन की शक्ति अर्थात् जिस पात्र में यह रखा जाता है वैसी ही इसकी शक्ल हो जाती है।

गरमी धारण करने की शक्ति जल से अधिक किसी भी अन्य वस्तु में नहीं है और गरमी यह बहुत शीघ्रता से पकड़ता एवं छोड़ता भी है। अतः यह शरीर से गरमी निकालने एवं शरीर को गरमी पहुंचाने, इन दोनों कार्यों में आवश्यकतानुसार आता है। अपनी घुलाने की क्षमता के कारण पिये जाने पर शरीर के अंदर से यह यूरिक एसिड और आक्जेलिक एसिड जैसे हानिप्रद तत्वों को शरीर से बाहर कर देता है।

शरीर-शोधन के लिए जल का उपयोग अधिकतर तरल अवस्था में ही होता है, पर आवश्यकता होने पर जल को भाप में परिवर्तित कर अथवा जमाकर, इसे बरफ बनाकर, भी काम में लाते हैं।

जल के प्रयोग गोकि बहुत सीधे सादे एवं सर्वथा प्राकृतिक होते हैं पर ये चिकित्सा के बहुत शक्ति पूर्ण साधन हैं, अतः इसका प्रयोग बहुत सावधानी से रोगी का बलाबल समझकर ही करना चाहिए। जो प्रयोग एक मोटे, सशक्त व्यक्ति के शरीर को जुकाम से मुक्त करने में

सहायक हो सकता है वही प्रयोग जुकाम से पीड़ित दुबले-पतले, कमजोर एवं रक्ताभाव के रोगी के लिए संहारक सिद्ध हो सकता है। जो यह नहीं समझते वे रोगी को लाभ के बदले नुकसान ही पहुंचाते हैं। कई बार कई लोग जल-चिकित्सा के किसी प्रयोग द्वारा रोग-मुक्त हुये हैं और वे उसी रोग से पीड़ित व्यक्ति से मिलने पर दवा के नुस्खे की तरह वही प्रयोग उसी रीति से उन्हें कराते हैं और रोगी को नुकसान पहुंचने पर प्रयोग कराने वाला बदनाम न होकर जल-चिकित्सा पद्धति बदनाम होती है।

जल का प्रयोग शरीर की गरमी घटाने अथवा बढ़ाने के लिए तो होता ही है पर जल की गरमी और ठंडक का असर जो शरीर की त्वचा पर होता है वह वहीं तक सीमित नहीं है। शरीर का ऊपरी भाग अपने नाड़ी-मंडल एवं रक्त-शिराओं के विचित्र सहयोग द्वारा सीधे शरीर के भीतरी भाग से संबंधित है। अतः जब जल का प्रयोग त्वचा पर किया जाता है तो उसका असर शरीर के अन्दर की मांस पेशियों, नाड़ियों एवं रक्त-शिराओं पर भी पड़ता है। यह असर दो प्रकार का होता है, पहला प्रतिक्षिप्त क्रियात्मक (Reflex) और दूसरा आत्मचालित (Mechanical)। यदि गरमी, ठंडक, मालिश अथवा थपकी के प्रयोग द्वारा त्वचा पर सिकुड़न पैदा की जाती है तो यह सिकुड़न सारे शरीर के अन्दर भी पैदा हो जाती है। यह शरीर के ऊपर त्वचा पर की गई क्रिया की प्रतिक्षिप्त क्रिया है। पर आत्मचालित क्रिया दूसरे ही प्रकार की होती है। जब त्वचा के निकट की रक्त-शिरायें संकुचित की जाती हैं तो इस संकोचन के फलस्वरूप शरीर के अन्दर रक्त तेजी से पहुंचता है—रक्त-शिराओं के संकोचन के कारण उनसे निकला रक्त भीतर की तरफ स्थान पाने को भागता है। अतः त्वचा पर की गई क्रिया के दो विरोधी असर साफ समझ में आते हैं—पहला प्रतिक्षिप्त, जिसके फलस्वरूप रक्त-शिरायें सिकुड़ती हैं और दूसरा आत्मचालित, जिसके फलस्वरूप शरीर के भीतर की शिरायें फैलती हैं। अतः त्वचा पर की गई जल-क्रिया का सही असर उसके द्वारा शरीर के अन्दर होनेवाली प्रतिक्षिप्त क्रिया एवं आत्मचालित क्रिया को समझने के बाद ही जाना जा सकता है एवं जो इसे समझते हैं वे जल के द्वारा शरीर के अंग-प्रत्यंग पर इच्छित प्रभाव डाल सकते हैं।

इसी प्रकार जो क्रिया त्वचा पर की जाती है उसका प्रभाव उस क्रिया तक ही सीमित न होकर उससे होनेवाली प्रतिक्रिया पर भी निर्भर है। ठंडे पानी को लीजिये। इसके प्रयोग द्वारा त्वचा की रक्त-शिराओं के संकुचित हो जाने के कारण, अर्थात् गरम रक्त के त्वचा के निकट से हट जाने के कारण, त्वचा ठंडी एवं पीली हो जाती है पर ज्यों ही वह प्रयोग बन्द किया जाता है संकुचित शिरायें फूल जाती हैं और त्वचा का पीलापन अथवा नीलापन लाली में बदल जाता है।

ठंडे पानी के प्रयोग द्वारा पहले पसीना निकलना तुरन्त बन्द हो जाता है पर इस प्रयोग की जब प्रतिक्रिया होती है तब वह अधिकता से निकलने लगता है। साथ ही ठंडे पानी के प्रयोग के फलस्वरूप यह भी होता है कि जब तक यह प्रयोग चलता रहता है अथवा पानी में ठंडक रहती है शरीर से गरमी निकलती रहती है, पर ठंडे उपचार के बन्द होने पर इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप जब रक्त तेजी से त्वचा के निकट पहुंचता है तब गरमी बढ़ती हुई प्रतीत होती है। इसका फल यह होता है कि अन्दर के रक्त के त्वचा के निकट आने पर शरीर से गरमी अधिक तेजी से निकलने लगती है।

ठंडे पानी का प्रयोग त्वचा पर कीजिए, रक्त की गति मंद हो जायगी साथ ही हृदय की गति भी। केवल हृदय की गति कम करने की आवश्यकता हो तो हृदय के ऊपर की दो मुट्ठी जगह पर खूब ठंडे पानी से भीगी पट्टी अथवा बरफ से भरी बैग देर तक रखिये। हृदय की गति कम हो जायगी। हृदय के ऊपर की जगह हृदय से सम्बन्धित है। पर यदि हृदय की गति तीव्र करनी है हो तो ठंडे पानी का प्रयोग बहुत थोड़ी देर तक करना चाहिए। ठंडे पानी का प्रयोग देर तक करने से ठंडे जल के प्रतिक्षिप्तात्मक प्रभाव के फलस्वरूप हृदय की गति मन्द रहेगी पर वही प्रयोग जब बहुत थोड़ी देर तक किया जायगा तो आत्मचालित क्रिया के कारण हृदय की गति तीव्र हो जायगी।

जो जल के प्रयोग में निपुण होना चाहते हैं उन्हें त्वचा पर जल के प्रयोग की प्रतिक्रिया, शरीर के अन्दर उससे होनेवाली प्रतिक्षिप्त क्रिया एवं आत्मचालित क्रिया

को ठीक ठीक समझने के साथ शरीर के ऊपर के किस भाग का शरीर के अन्दर के किस अंग से क्या सम्बन्ध है, यह भी जानना-समझना चाहिए।

आमाशय के ऊपर की त्वचा से आमाशय का इतना अधिक सम्बन्ध है कि जो कुछ वहां रक्त संचालन एवं स्नायु-शक्ति-प्रसरण के सम्बन्ध में किया जाता है उसका सीधा असर आमाशय पर पड़ता है। इसी प्रकार यकृत के ऊपर की त्वचा से यकृत का भी सीधा सम्बन्ध है। जब इस स्थान पर ठंडे पानी का प्रयोग किया जायगा तब लिवर की रक्त-शिरायें संकुचित होंगी एवं वहीं पर गरम पानी का प्रयोग करने पर वे फैलेंगी। इसलिए यदि लिवर के पास आवश्यकता से अधिक रक्त इकट्ठा हो गया है तो हटाया जा सकता है और यदि रक्त-शिराओं में उचित-रीति से प्रवाहित नहीं होता तो वहां नये स्वस्थ रक्त का संचार कर लिवर रोग-मुक्त किया जा सकता है।

यदि शरीर के अन्दर कहीं सूजन हो, अथवा किसी रीति से कहीं रक्त इकट्ठा हो गया हो तो इस अवस्था से मुक्ति पाने के लिए गरम पानी से भरे टब में लेटना चाहिए। फल यह होगा कि गरम पानी की गरमी त्वचा के निकट की रक्त-शिराओं को फैला देगी और रक्त वहां इतनी अधिक मात्रा में आ जायगा कि भीतर के पीड़ित भाग को रक्त के दबाव से छुट्टी मिल जायगी। और वहां का कष्ट दूर हो जायगा। ऐसे कष्टों को दूर करने के लिए गरम नहान से बढ़कर दुनिया में कोई दूसरी सरल दवा नहीं है।

जल के प्रयोग से किसी भी दवा का कोई मुकाबिला नहीं हो सकता। शरीर के सबसे अधिक मूल्यवान अंग हृदय पर ठंडे-गरम जल के प्रयोग से पड़ने वाले असर के बारे में हम बता आये हैं। यह असर जल का प्रयोग होते ही देखने को मिलता है। ऊपर त्वचा पर जल का प्रयोग हुआ, उनकी अनुभूति का असर नाड़ी पर एवं उसके द्वारा नाड़ी-केन्द्र (रीढ़) पर पहुंचा। वहां से उसकी प्रतिक्रिया के लिए हुक्म हुआ। इस सारे काम में एक सेकेंड का सवां हिस्सा भी नहीं लगता। अतः लाभ तुरन्त दिखाई देता है। पर यही लाभ यदि दवा से लेना हो तो? दिल जोरों से धड़क रहा है, यह धड़कन रोगी को शराब पिलाकर कम की जा सकती है। पीने पर शराब पहले रक्त में मिलती है तब वह रक्त के सहारे सारे शरीर में पहुंचती है, इस प्रकार दी गई शराब का बहुत थोड़ा अंश हृदय को मिलता है और इस सारी क्रिया में बहुत देर लगती है। पर यदि धड़कते हुए हृदय पर ठंडे पानी की पट्टी रखी जाती है तो हृदय की धड़कन तत्क्षण सम हो जाती है! यदि शराब से होने वाली हानि का विचार न किया जाय तो भी पानी के इस प्रयोग के सामने शराब का क्या मूल्य?

आदमी बेहोश होकर फर्श पर गिर पड़ता है। ऐसी दशा में मुंह पर पानी के छींटे मारते ही हृदय फिर से चलने लगता है, छाती फूल उठती है, आँख खुल जाती है और रोगी की मृत्यु का भय दूर हो जाता है!

इसी प्रकार यदि शरीर का कोई भी अंग काम करना बंद कर दे तो कम से कम उस अंग को बेहोश हुआ तो माना ही जायगा। कभी कभी जब लोग दावत वगैरह में या घर पर ही कस कर खा लेते हैं तो पेट अकसर फूल जाता है और पाचन-क्रिया रुक जाती है। ऐसी हालत में यदि पेट पर थोड़ी देर तक गरम पानी से सेंक देने के बाद ठंडे पानी की पट्टी रखकर तुरंत हटा ली जाय तो इससे आमाशय को उसकी चैतन्यता उसे वापस मिल जाती है और वह पुनः काम करने लग जाता है, अर्थात् पाचन-क्रिया शुरू हो जाती है और पेट के भारीपन का कष्ट धीरे धीरे चला जाता है। चूरन, चटनी यह काम इतनी शीघ्रता से कभी नहीं कर सकते।

यदि शरीर के किसी भी अंग का कार्य शिथिल हो गया हो तो इसी रीति से उसे पुनः कार्य में प्रवृत्त किया जा सकता है, जानने की जरूरत केवल इतनी ही है कि वह अंग कहाँ है और लाभ उसे ठंडे पानी से होगा अथवा गरम पानी से।

ठंडे पानी के प्रयोग से शरीर में होने वाली प्रतिक्रिया एवं उसके मूल्य को हम नित्य किये जाने वाले साधारण स्नान से भली भाँति समझ सकते हैं और उसे समझ कर हम अपने स्नान को अधिक उपयोगी भी बना सकते हैं।

सभी का अनुभव है कि गरमी में ठंडे पानी का स्नान बड़ा आनंददायक होता है और यही स्नान जब ठंडे पानी

से भरे तालाब में या गहरी नदी में किया जाता है तब आनन्द और भी बढ़ जाता है। पर जाड़े के दिनों में यही स्नान सब लोग समान रूप से बर्दाश्त नहीं कर सकते। मोटे दुर्बलों की अपेक्षा अधिक देर तक ठंडे पानी में रह सकते हैं और बच्चों के दाँत बड़ों की अपेक्षा ठंडे पानी के प्रयोग से जल्द ही कटकटाने लगते हैं। इससे यह भली भाँति समझा जा सकता है कि पानी का गलत उपयोग स्वास्थ्य देने के बजाय हानि पहुंचा सकता है।

ठंडा पानी शरीर से गरमी खींचता है। गरमी में स्वभावतः यह जाड़े में पानी की ठंडक अधिक होने से शरीर से गरमी तेजी से खिंचती है। इस समय यदि ठंडे पानी का प्रयोग बहुत थोड़े समय के लिए किया जाय तो शरीर की बची गरमी उसे फिर शीघ्रता से गरम कर लेती है पर यदि गरमी अधिक निकल जाय तो ?—गरमी कमजोर एवं रोगी शरीर में कम होती है। शरीर के सभी कार्य एवं रक्त-संचालन धीमा पड़ जाता है और स्नान द्वारा चैतन्यता बढ़ने के बजाय शिथिलता का अनुभव होता है।

इसी ठंडक की उपयुक्त मात्रा शरीर पर लगने पर त्वचा के निकट की रक्त-शिराओं के संकुचित होने के कारण जब रक्त शरीर के अन्दर के भाग में अधिक मात्रा में पहुंचता है तब अंदर के प्रत्येक अंग चैतन्य हो जाते हैं, वे सब अपने कार्य तेजी से करने लगते हैं। सभी का अनुभव है कि नदी में गोता लगाते ही आदमी जोरों से साँस खींचता है। यह फेफड़ों की क्रियाशीलता बढ़ जाने का प्रमाण है। यह कार्य बिना किसी प्रयास के तलवे में गुदगुदी लगने पर पैर उछल जाने के समान अपने आप होता है। गहरी सांस के कारण शरीर में अधिक ओषजन पहुंचता है। हृदय भी अपना कार्य तेजी से करने लगता है। फलतः रक्त की गति तीव्र हो जाती है और शरीर के प्रत्येक अंग को अधिक रक्त एवं शुद्ध रक्त मिलने लगता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि समुद्र, नदी, तलाव में स्नान करने अथवा ठंडे पानी के किसी प्रकार के नित्य के प्रयोग से शरीर में रक्त बनने की गति स्थाई रूप से बढ़ जाती है।

ठंडे पानी के प्रयोग से पाचन-क्रिया भी ठीक होती है, जिससे भोजन ठीक तरह से पचता है एवं उसके बचे हुए भाग का उपयोग रक्त शीघ्रता एवं परिपूर्णता से करता है। त्वचा पर ठंडक लगने का प्रभाव यह भी होता है कि आमाशय से पाचक रस तेजी से निकलते हैं। इन्हीं कारणों से ठंडे पानी के स्नान के बाद अथवा प्रातःकाल शीतल मंद बयार में टहल आने के बाद भूख तेजी से लगती है। ठंडक से हमेशा पाचन क्रिया ठीक होती है एवं भूख बढ़ती है, यकृत एवं लालाग्रंथियों का कार्य भी उत्तेजित होता है। बरफ भरे मैदान में रहने वाले एसकिमों जाति के लोग ठंडक के प्रभाव से ही भर-भर पेट चरबी अथवा ऐसे खाद्य खाकर पचा पाते हैं जिनको साधारण आदमियों के लिए पचा सकना कठिन है।

ठंडे पानी के स्नान से जो प्रभाव शरीर के अंग-प्रत्यंग पर पड़ता है ठीक वही प्रभाव खुली त्वचा पर ठंडी हवा लगने से प्रभाव ठंडक का होता है। उसका वाहन चाहे जल हो अथवा वायु।

यह हुई ठंडे पानी के स्नान की बात। ठंडे पानी के बाद अब सिरगरम अर्थात् ९२° से लेकर ९५° फारनहाइट गरम पानी के बारे में जानना चाहिए। सिरगरम पानी से भरे टब में लेटने से गरमी में गरमी कम लगती है। अनिद्रा और स्नायु दौर्बल्य की यह एक ही दवा है। सिरगरम पानी में स्नायुओं को शिथिल करने की बड़ी शक्ति है। टब में लेटे लेटे शरीर का वह शिथिलीकरण होता है जो योगियों के लिए दुर्लभ है। ऐसी अवस्था में नींद आ जाती है और यह एक घंटे की नींद बाहर के चार घंटे की नींद के बराबर होती है। कुछ दिन का यह स्नान त्वचा को सतेज, सुन्दर एवं सुचिक्कण बना देता है। बीमारी के बाद उठे कमजोर रोगियों को यह स्नान कुछ दिन तक लगातार करना चाहिए। उनके लिए यह वह काम करेगा जो कोई मालिश नहीं कर सकती।

अब हम कुछ तीव्र रोगों में जलोपचार की विधि बतायेंगे।

लू लगना

गरमी के दिनों में लू लगना आये दिन की घटना होती है। इस दशा में शरीर की गरमी बहुत बढ़ जाती है और अकसर रोगी का कुछ घंटों के अन्दर ही प्राणांत हो

जाता है। ऐसी दशा में ठंडे पानी का प्रयोग आशातीत लाभ करता है। लू लगे हुये प्राणी पर उसे बैठाकर या सुलाकर चार फीट की ऊंचाई से खूब ठंडा पानी--अच्छा होगा कि बरफ मिलाकर पानी का तापमान ६०° फारन हाइट कर लिया जाय--डालना चाहिए और साथ साथ दो तीन आदमियों को मिलकर रोगी के सारे शरीर को खुले हाथों से रगड़ना चाहिए। तलहथी से रगड़ने के कारण पानी की ठंडक की वजह से शरीर के अन्दर गया रक्त त्वचा के निकट वापस आता रहता है और ठंडे पानी के संपर्क में आकर ठंडा होता रहता और शरीर की गरमी को कम करता रहता है। रोम-कूप खुल जाते हैं और उनके द्वारा भी शरीर से गरमी निकलने लगती है। लू लगने से रोम-कूप बन्द हो जाते हैं अर्थात् शरीर से गरमी और गंदगी (पसीने के रूप में) निकलने का मुख्य द्वार बन्द हो जाता है। रोम-कूपों द्वारा फेफड़ों की तरह शरीर भी सांस लेता है, अतः उनके बन्द होने से शरीर को ओपजन मिलने में भी कोताही होने लगती है। गरमी में पसीना निकलने की क्रिया के फलस्वरूप शरीर अपना तापमान ठीक रख पाता है। गरमी के कारण त्वचा पर का पसीना भाप बनता रहता है और त्वचा को ठंडा रखता है। ठंडे पानी के इस प्रयोग से लू लगे व्यक्ति की ये सारी क्रियायें दुरुस्त हो जाती हैं और वह स्वस्थ हो जाता है।

लूह के रोगी पर पानी डालते वक्त सिर को और सिर के पीछे के भागको ठंडा रखनेका विशेष खयाल रखना चाहिए। ठंडे पानी की यह विधि यदि समय पर काम में लाई जा सके तो रोगी के मृत्यु की कोई संभावना नहीं है।

पेट चलना या हैजा

गरमी के दिनों में एक दूसरा रोग होता है। हैजा या मुहं-पेट चलना। इस तरह के रोगी के पेट और पेडू पर ठंडे पानी से भीगा मोटा तोलिया रखने से निश्चित रूप से मुहँ-पेट चलना बंद हो जाता है। यदि रोगी के पेट में दर्द हो तो गरम पानी का एक एनीमा देकर उसकी आंतें साफ कर देनी चाहिए औद पंद्रह-बीस मिनट तक पेट को गरम पानी से भीगे कपड़े से सेंक कर पुनः पेट पर ठंडे पानी की पट्टी रख देनी चाहिए। ठंडे पानी की पट्टी दस-दस मिनट पर बदली जाती है। ठंडी पट्टी रखने से त्वचा सिकुड़ती है और उसी पट्टी के गरम हो जाने पर रक्त वहां तेजी से पहुंचता है। फिर टंडी पट्टी रखी जाती है वह फिर गरम होने पर रक्त फिर तेजी से आता है। इस प्रकार पेट के हिस्से में, आंतों में नया रक्त आता रहता है और गरमी निकलती रहती है। विदेशों में कुछ समझदार डाक्टर भी ऐसे समय जल प्रयोग करते हैं। उनका कहना है कि प्रतिक्रिया स्वरूप रोगी अंग में जो नया रक्त आता रहता है वह रक्त के सफेद कीटाणुओं को रोग के कीटाणुओं से लड़ने एवं उन्हें नष्ट करने की शक्ति देता है।

मियादी बुखार

मियादी बुखार के रोगी को चाहिए कि जब तक वह जागे एक एक पाव ठंडा पानी प्रति घंटे पीता रहे। इससे त्वचा के रास्ते गंदगी और गरमी निकलती रहेगी। अतः प्यास न रहे तब भी पानी पीते रहना चाहिए। यदि पानी अधिक दिया जा सके तो वह भी पिया जा सकता है क्योंकि इस हालत में पानी प्यास बुझाने से अधिक शरीर की गंदगी दूर करने के लिये पिया जाता है। पानी में शंतरे या किसी फल का रस थोड़ी मात्रा में मिलाया जा सकता है। यदि रोगी पानी न पी पावे तो ८०° फारनहाइट गरम पानी का एक एनीमा दिन में तीन बार देना चाहिए और रोगी को चाहिए कि जहाँ तक हो सके वह इस पानी को रोके। इसके अलावा नित्य सवेरे गुनगुने गरम पानी का एनीमा पेट साफ करने के लिए तो देना ही चाहिए।

अधिक ज्वर होने पर रोगी को नंगा करके ठंडे पानी से भीगी चादर निचोड़ कर उढ़ा दी जा सकती है। यदि ज्वर उतारना आवश्यक हो तो रोगी को मोमजामे पर सुलाकर और ठंडे पानी से तर पट्टी लपेट कर सारी पट्टी पर तेजी से हलके दबाव के साथ हाथ फेरना चाहिए। इससे ज्वर शीघ्र और सिर के पीछे ठण्डे पानी से भीगी पट्टी रखनी चाहिए। इससे सिर दर्द दूर होता है। यह पट्टी गरम होते ही बदलते रहना चाहिए। पर यदि दर्द बहुत तेज हो तो गले के चारों ओर बरफ के पानी में भीगी पट्टी निचोड़ कर लपेटना चाहिए।

पेट पर ठंडी गीली पट्टी तो जब तक ज्वर न उतर जाय तब तक बराबर रखते जाना चाहिए। इस पट्टी के

योग से न आँतों के अन्दर फुसियाँ एवं वधा होते हैं और न खून के दस्त ही आते हैं ।

यदि खाँसी आने लगे तो छाती पर गीली पट्टी रख ऊनी कपड़े से ढक कर बाँध देनी चाहिए। छाती की पट्टी के प्रयोग के समय पेट पर से पट्टी हटा देनी चाहिए। छाती की पट्टी दिन में दो तीन बार आध घंटे के लिए रखना काफी है ।

यदि रोगी ज्वर के कारण अकबक करने लगे तो उसे सारे बदन की गीली पट्टी देना चाहिए—सारे बदन पर ठंडे पानी से भीगा कपड़ा लपेट कर दो-तीन कम्बलें लपेट देना चाहिए। इस समय ६८ फारनहाइट गरम पानी में रोगी को सुलाने से भी वही काम होता। यदि पट्टी दी जाय तो पट्टी के गरम होने पर उसे बराबर बदलते रहना चाहिए। इसके लिए दो पट्टी और चार-छ कम्बलें तैयार रहें। एक पट्टी गरम होने पर रोगी को आहिस्ते से निकाल कर दूसरी पट्टी में लपेट दिया जाय ।

कुछ छोटे-मोटे प्रयोग

सिर के गर्म होने के साथ सिर दर्द होने पर सिर और मुंह पर मोटा टंडा तौलिया रखने एवं गले पर ठंडी पट्टी बाँधने से सिर दर्द जाता है। सिर पर बालों में भी थोड़ा ठंडा पानी लगा देना चाहिए और पट्टी गरम होने पर बदलते रहना चाहिए।

कमजोरदिल या बैठते दिल पर (६०° फारन हाइट) ठंडी पट्टी हर घंटे पंद्रह-बीस मिनट के लिए रखनी चाहिए। दो घंटे पर १० मिनट के लिए गरम पानी से सैंक भी। यदि फेफड़ों में पानी आ जाने के कारण दर्द है तो यह सैंक बार बार दी जा सकती है। इस सेंक के समय पैरों और शरीर के अन्य अंगों को गरम कपड़ों से ढक कर गरम रखना चाहिए।

सर्दी जुकाम और नाक बहने में यदि रात को बालों को टंडे पानी से भिगो लिया जाय तो रात भर में सर्दी जुकाम चली जाय ।

हाथ में या अंगुलियों में सूजन की वजह से दर्द हो तो कोहनी को ठंडे पानी में डुबोना चाहिए ।

फुंफुस के यक्ष्मा के रोगी को यदि खाँसी आवे तो छाती की पट्टी से बढ़कर कोई दूसरी निरापद दवा नहीं है। यह पट्टी पतले कपड़े की होनी चाहिए कि तुरन्त गरम हो जाय और यह गरम ही कुछ देर तक रहने देना चाहिए।

सिर में रक्त संचय होने की वजह से नींद न आने पर नींद बुलाने के लिए ६२° फारन हाइट गरम पानी में सोने के मुकाबिले का कोई दूसरा अच्छा उपाय नहीं है। इस नहान से निकलने के बाद कमर में ठंडे पानी से भिगोकर निचोड़ा हुआ तौलिया लपेटकर ऊपर से ऊनी कपड़ा लपेट देना चाहिए। ताकि पट्टी तुरन्त गरम हो जाय और रक्त खिंच आवे ।

कमर में दर्द हो तो सोते वक्त गरम पानी से भीगे तौलिये से देर तक सेंकना चाहिए और फिर ठंडे पानी से भीगा तौलिया दर्द की जगह पर रखकर ऊनी पट्टी लपेटनी चाहिए।

आँखों में दर्द हो तो आँख की और माथे की हलकी सेंक करनी चाहिए। गाल की नहीं।

पेट में दर्द हो तो गरम पानी का एनीमा देना चाहिए। फिर पेट को सेंक कर घंटे भर के लिए पेट पर ठंडी पट्टी लपेटकर ऊपर से ऊनी पट्टी लपेट देनी चाहिये।

पेड़ू का दर्द पैर को तेज गरम पानी में रखने से दूर होता है। बात यह होती है कि रक्त पेड़ू से हटकर पैर की तरफ आ जाता है। जिससे पेड़ू के पास इकट्ठा रक्त हट जाता है और दर्द चला जाता है। इस समय यदि पैर को गरम पानी में रखने के साथ-साथ कमर को गरम पानी से सेंका भी जाय तो दर्द और भी शीघ्रता से चला जायगा।

नाक से खून गिरने पर यदि रीढ़ के ऊपरी भाग में ठंडे पानी की धार डाली जाय तो नाक से खून आना बंद हो जाता है।

गर्भाशय की गड़बड़ी के कारण यदि हिस्टीरिया का दौरा आता हो तो वह बहुत बार पैरों को ठंडे पानी से धोने से दूर हो जाती है।

बहुत बार रुका हुआ पेशाब, जो किसी तरह नहीं उतरता था पैरों को कुछ ही क्षण के लिए ठंडे पानी में रखने से आ गया है।

(शेष पृष्ठ २४ पर)

जलोपचार की प्रमुख विधियाँ

डा० खुशीराम दिलकश, एम० एस० बी०, एल० एस० ई० पी०, एन० डी०, प्रिंसिपल नेशनल नेचुरोपैथिक कालेज, लखनऊ

जल-चिकित्सा नैसर्गिक उपचार-पद्धति का सब से प्रधान अंग है। सच तो यह है कि प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली का आविर्भाव सबसे पहले जलोपचार के ही रूप में हुआ। अतः बहुत से लोग प्राकृतिक-चिकित्सा का अभिप्राय जल-चिकित्सा ही समझते रहे हैं। किन्तु अब प्रकृति के अन्य तत्वों—मिट्टी, धूप, वायु आदि—के चमत्कार भी रोग-व्याधि पीड़ित मानव-समाज के सामने प्रकट हो चुके हैं। अतः अब इस नैसर्गिक-चिकित्सा प्रणाली के विभिन्न अंगों के अलग-अलग महत्व को लोग इसके विकास के साथ-साथ अधिकाधिक समझने लगे हैं। आधुनिक विशेषज्ञों ने भी अपने वैज्ञानिक अन्वेषणों एवं प्रयोगों के द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि जल में रोग-निवारण तथा आरोग्य लाभ करने के आश्चर्यजनक गुण विद्यमान हैं। वैज्ञानिकों का यह अनुसंधान कोई नई बात नहीं है। क्योंकि रोगों के उपचार और स्वास्थ्य लाभ की दिशा में जल के महत्व से कई शताब्दि पूर्व से ही लोग परिचित हो चुके हैं और संसार के भिन्न-भिन्न देशों में रोगोपचार के रूप में जल का प्रयोग भी होता रहा है। आज के मानव ने अपने पूर्वजों की चिकित्सा-प्रणाली को भुलाया नहीं है, वरन् इस चिकित्सा विज्ञान को अपने वैज्ञानिक अन्वेषणों से अपेक्षाकृत अधिक उन्नत और विकसित ही बनाया है।

जलोपचार का महत्व एवं उपयोगिता

अपनी दैनिक आवश्यकताओं में जल की यह उपयोगिता एक साधारण मनुष्य भी समझ सकता है कि इसका मनुष्य-जीवन पर कितना असीम शारीरिक प्रभाव पड़ता है। जल-चिकित्सा ही एक ऐसी आसान तथा सबसे सस्ती उपचार विधि है जो हर समय सर्वत्र किसी भी सम्भव आवश्यकता के समय प्राप्त हो सकती है। उचित तथा विवेकपूर्ण जलोपचार से हर प्रकार के कठिन से कठिन रोग भी ठीक हो जाते हैं। जल-चिकित्सा जल का असली गुण बताती है और इसका भिन्न भिन्न लक्षणों के आधार पर इस्तेमाल भी विभिन्न प्रकार से ही किया जाता है। तमाम प्राकृतिक चिकित्सा में निस्सन्देह सबसे अधिक गुणकारी तथा शक्तिशाली जल-चिकित्सा ही है। इसका व्यवहार भी बहुत आसान है, क्योंकि यह आसानी से तरल से ठोस और ठोस से भाप बन जाता है। यह अनुभव किया गया है कि पानी ओषजन की ७५ प्रतिशत खपत बढ़ा देता है और ८५ प्रतिशत हाईड्रोजन की मात्रा को शरीर से निकाल देता है। कोई भी रोग ऐसा नहीं है जिसमें किसी न किसी सूरत में नियमित रूप से पानी का उपयोग न किया जा सके। तथापि इसका असर भिन्न भिन्न तापमान में शरीर पर भिन्न भिन्न प्रकार का होता है। जल-चिकित्सा में निम्नलिखित तापमान का पानी व्यवहार में लाया जाता है:—

१—बहुत ठंडा	...	३२ से ५० डिग्री तक
२—ठण्डा	...	५० से ६५ ,,
३—शीतल	...	६५ से ८० ,,
४—गुनगुना	...	८२ से ६२ ,,
५—सामान्य	...	६२ से ६५ डिग्री तक
६—गर्म	...	६५ से ६८ ,,
७—,,	...	६८ से १०४ ,,
८—बहुत अधिक गर्म	...	१०४ से १२० डिग्री तक

या इससे भी अधिक तक।

उपचार में विभिन्न तापमान के जल के गुण और प्रभाव

१२० डिग्री से अधिक तापमान वाला पानी शायद ही कभी व्यवहार में लाया जाता हो। १०४ से १०८ तक के तापमान के स्नान का वही असर होता है जो कि इससे अधिक तापमान का, और १२० डिग्री से अधिक तापमान का पानी खतरे से खाली नहीं होता। १४०° तापमान का भाप और ३००° तापमान तक के वायु को शरीर सहन कर सकता है। जल-चिकित्सा में फारनहाइट का

थर्मामीटर व्यवहार में लाया जाता है और इस लेख में भी तापमान के स्थान में इसी थर्मामीटर का जिक्र किया गया है।

जल-चिकित्सा में शरीर पर पानी का असर, पानी के तापमान, समय की अवधि, शरीर के अंग, व्यवहार करने का तरीका और सबसे अधिक तो रोगी की शारीरिक अवस्था आदि पर निर्भर है।

पानी के व्यवहार की अवधि, जो बड़े बड़े जल चिकित्सालयों में प्रयोग की जाती है, नीचे दी जाती है:—

अत्यल्प (बहुत ही कम),	...	५ से १५ सेकेंड तक
अल्प (कम)	...	१५ से ६० सेकेंड तक
अधिक	...	२ से १० मिनट तक
अत्यधिक	...	१० से ३० मिनट

या इससे भी अधिक समय तक।

जल-प्रयोग के अस्थायी तथा स्थायी प्रभाव

किसी भी अवस्था में जब शरीर पर पानी का प्रयोग किया जाता है, चाहे वह व्यवहार आभ्यान्तरिक हो अथवा बाह्य तो उससे दो प्रकार के असर पैदा होते हैं(१)—क्रियात्मक तथा (२) प्रति क्रियात्मक इनमें से पहले को अस्थायी तथा दूसरे को स्थायी प्रभाव कहते हैं। पानी का व्यवहार इन्हीं दोनों गुणों के लिए किया जाता है। जब पूरक (अस्थायी) प्रभाव की आवश्यकता होती है तो पानी का तापमान साधारण होता है और पर्याप्त समय तक उसकी प्रतिक्रिया को रोकने के लिए किया जाता है। और जब प्रतिक्रियात्मक गुण (स्थायी प्रभाव) की आवश्यकता होती है तो गर्म अथवा ठंडा पानी का व्यवहार किया जाता है और वह भी कम समय तक। इसकी प्रतिक्रिया थोड़े समय के व्यवहार से प्रायः निश्चित हो जाती है, अधिक समय के व्यवहार में नहीं। जल-चिकित्सा का व्यवहार स्थायी अथवा प्रतिक्रियात्मक प्रभाव के लिये ही किया जाता है। इसलिए यह बात सदा याद रखनी चाहिए कि पानी तथा शरीर के तापमान में ही जितना अधिक अन्तर होगा उतना ही अधिक प्रतिक्रिया भी होगी अर्थात् प्रभाव स्थायी होंगे।

अस्पताल के व्यवहारिक अनुभव से शरीर पर जल के व्यवहार का निम्न परिणाम मालूम हुआ है:—

बहुत गर्म पानी अल्प कालीन—

१—शरीर के तापमान को कम कर देता है।

२—चमड़े (त्वचा) की कार्यशीलता को घटा देता है।

३—रक्त-चाप (Blood Presure) पर कोई असर नहीं होता।

४—शारीरिक यंत्रों में स्फूर्ति उत्पन्न करता है।

५—हृदय की गति को स्वस्थ तथा सतेज करता है।

६—माँस पेशियों को सिकोड़ता है।

७—रक्त-स्नायुओं को सिकोड़ता है।

८—पोषण-शक्ति को प्रभावित करता है।

९—श्वास-क्रिया को उत्तेजित करता है।

उष्ण जल, चिरकालीन—

१—शरीर के तापमान को बढ़ाता है।

२—त्वचा की कार्य शक्तियों को बढ़ाता है।

३—रक्तचाप को कम करता है।

४—शारीरिक स्नायुओं को हल्के तौर पर प्रभावित करता है।

५—हृदय की गति को तेज तथा कमज़ोर करता है।

(पृष्ठ २२ का शेषांश)

दमे की तीव्र अवस्था में छाती पर ठंडे पानी की धारा कुछ क्षणों के लिये तेजी से डालने पर दमा पहले बढ़ा हुआ मालूम होगा पर थोड़ी ही देर बाद निश्चित रूप से लाभ प्रतीत होगा। जीर्ण दमे में छाती पर ठंडे पानी की पट्टी लपेटने के बाद ऊपर से ऊनी पट्टी लपेट कर आध घंटे तक दिन में दो तीन बार रहने से जरूर फायदा होता है। दमे का जोर पैरों को अथवा दोनों हाथों को गरम पानी में पंद्रह-बीस मिनट रखने से निश्चित रूप से कम हो जाता है।

जलोपचार के सिद्धान्त—प्रतिक्षिप्त क्रिया, आत्म-चालित क्रिया एवं शरीर पर होनेवाली उनकी प्रतिक्रिया समझने के बाद कोई भी किसी रोग के लिये जलोपचार निश्चित कर सकता है। यहाँ कुछ नित्य होनेवाले रोगों एवं नित्य उपस्थित होनेवाली अवस्थाओं में जल-प्रयोग की विधियाँ इसलिये लिख दी गई हैं कि इनके प्रयोग के बाद प्राप्त हुये अनुभव एवं विश्वास के आधार पर अन्य कठिन अवस्थाओं में भी जल का प्रयोग बिना किसी हिचकिचाहट के किया जा सके।

लेखक

यद्यपि प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार सभी रोगों में एकरूपता मानी जाती है किन्तु, सभी रोगों की चिकित्सा-विधि भी एक ही हो, यह बात नहीं। एक ही रोग से पीड़ित विभिन्न रोगियों की अवस्था एक सी नहीं हो सकती, और इसलिए उनकी चिकित्सा-विधि भी आवश्यकतानुसार अलग-अलग होनी चाहिए। इसके अलावा आप यह भी देखेंगे कि प्राकृतिक चिकित्सा-विधि में किंचित् असावधानी अथवा मल होने से रोगी को लाभ के बजाय हानि ही होती है। अतः यह नितान्त आवश्यक है कि रोग एवं रोगी की अवस्था की भली भाँति जांच कर लेने के बाद ही चिकित्सा-विधि निर्धारित करनी चाहिए।

चिकित्सा-विधि के इस महत्व पर इस लेख के अनुभवी लेखक डा० के० आर० दिलकश, एन० डी० एल० एस० ई० पी, एन० डी, ने जिस योग्यता के साथ प्रकाश डाला है वह सराहनीय है। इस सम्पूर्ण लेख की एक एक पंक्ति आपके विस्तृत अनुभव एवं परिज्ञान की प्रतीत है।

डा० दिलकश नेचर क्योर क्लिनिक, के प्रधान चिकित्सक तथा नेशनल नेचुरोपैथिक कालेज लखनऊ के प्रिन्सिपल हैं। गृह में वर्षों से आपने विभिन्न प्रकार के रोगियों का उपचार करते हुए जो अनुभव प्राप्त किए हैं, वही इस लेख का मूलाधार है। आपने अंग्रेजी में 'नेचर क्योर बाथ्स' और हिन्दी तथा उर्दू में 'हमारा भोजन' आदि पुस्तकें भी लिखी हैं।

आपका यह परिचय इस किंचित् असावधानी के कारण इस लेख के आरम्भ में न दे सके इसके लिए लेखक तथा पाठक दोनों से क्षमा प्रार्थी हैं।—सं०]

६—मांसपेशियों को फैला देता है।

७—सतह के रक्त-पात्रों को हलका करता है।

८—पोषण-शक्ति को प्रभावित करता है।

६—श्वास-क्रिया को तेज़ और कमजोर करता है।

ठंडा पानी अल्प कालीन—१—शारीरिक तापमान को बढ़ाता है।

२—त्वचा की कार्यशीलता में वृद्धि करता है।

३—रक्त-चाप को बढ़ाता है।

४—शरीर की नाड़ियों को प्रभावित करता है।

५—हृदय की क्रिया शीलता को तीव्र और मज़बूत बनाता है।

६—मांसपेशियों को सिकोड़ता है

७—सतह के रक्त-पात्रों को थोड़े समय के लिए सिकोड़ता है।

८—पोषण-शक्ति को प्रभावित करता है।

६—श्वास-क्रिया को हलका तथा कमज़ोर करता है।

ठंडा पानी, अधिक समय तक—१—शरीर के तापमान को कम करता है।

२—त्वचा की क्रियाशीलता को कम करता है।

३—रक्त चाप को घटाता है।

४—स्नायु तथा नाड़ियों को हलके तौर पर प्रभावित करता है।

५—हृदय-गति को कमज़ोर करता है।

६—सतह के रक्त-पात्रों को सिकोड़ता है।

७—पोषण-शक्ति को हलका-सा प्रभावित करता है।

८—श्वास-क्रिया को हलका तथा कमज़ोर करता है।

९—मांस पेशियों को संकुचित करता है।

यदि जल चिकित्सा करते समय जल के तापमान, समय तथा उसके व्यवहार को भली भांति समझ कर उसका प्रयोग किया जाय तो रोगी के लिये व्यवस्था करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। फिर भी इसका ध्यान रखना चाहिये कि जल का व्यवहार सीमा से बाहर न हो जाय। प्रारम्भ में प्रयोग के ठीक ठीक गुण निश्चित करने के लिये प्रयोग हलका तथा अल्प कालीन होना चाहिये। हर प्रयोग के बाद प्रतिक्रिया का होना आवश्यक है। इसलिये रोगी को किसी न किसी प्रकार का व्यायाम करना, तेज चलना आवश्यक होता है। और यदि वह कमज़ोर हो, व्यायाम न कर सकता हो, तो उसे कम्बला में अच्छी तरह से लपेट कर आराम करने देना चाहिये ताकि किसी हालत में उसे ठंड न लगने पाये। यदि नाड़ी की चाल, अनियमित, कमजोर, बहुत हलकी अथवा बहुत तेज हो जाय, यदि शरीर का तापमान बढ़ने लगे तो स्नान उस समय बन्द कर देना चाहिये। ठण्डे स्नान के दो घन्टे बाद भोजन करना चाहिये अथवा भोजन के बाद स्नान दो से तीन घंटे के अन्तर पर देना चाहिये।

जल की विभिन्न प्रयोग-विधियां

रोग-निवारण के लिये पानी का प्रयोग कई प्रकार से किया जा सकता है। यहां केवल जल-चिकित्सा की कुछ मुख्य विधियों का वर्णन किया जाता है।

कटि स्नान—जल-चिकित्सा में इस स्नान को बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त है। इस चिकित्सा विज्ञान के सुप्रसिद्ध जर्मन आचार्य लूई कुने ने इस स्नान का अपने नवीन चिकित्सा विज्ञान (New science of Healing) नामक पुस्तक में वर्णन करते हुये बताया है कि इस स्नान से सैकड़ों रोगियों को लाभ हुआ है। आप लिखते हैं कि इस स्नान के लिये पानी का तापमान ६८ डिग्री से ८४ डिग्री फारन हाइट होना चाहिये। साधारण तथा बहुत से रोगों में पानी का यह तापमान लाभदायक सिद्ध हुआ है, पर बहुत रोगी ऐसे भी हैं जिन्हें पानी के इस तापमान से हानि हुई है और सच तो यह कि इनकी संख्या भी कम नहीं है। यदि किसी प्राकृतिक चिकित्सक कुछ वर्षों तक रोगियों की चिकित्सा की है और यदि उसने अपने रोगियों को ध्यानपूर्वक देखा है तो उसे मालूम होना चाहिए कि उसकी बहुत सी असफलताओं का कारण इस स्नान के लिए प्रयुक्त जल का अनुचित तापमान ही है। उदाहरणार्थ, जुकाम की दबी हुई अवस्था से उत्पन्न होने वाले रोग (Chronic catarrhal conditions), चाहे वह शरीर के किसी भी अंग से सम्बन्ध रखते हों, विशेष कर उस अवस्था में जब कि त्वचा शुष्क हो रही हो पसीना कम आता हो, या बिलकुल न आता हो, जल के इस तापमान से हानि ही होती और ज्यों हीं रोगी ऊपर बताए गए तापमान के जल से स्नानों को आरम्भ करता है उसकी दशा बिगड़ने लगती है। यह सच है कि प्राकृतिक चिकित्सा रोगों की एकरूपता में विश्वास रखती है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि रोग की हर अवस्था में भी एकरूपता है। जहां किसी दो रोगियों के रोग की अवस्था में एकरूपता भी है वहाँ उनकी अपनी अवस्थाओं में एकरूपता होना आवश्यक नहीं। इसलिए सब रोगियों या रोगों की चिकित्सा में एकरूपता के सिद्धान्त का व्यवहार नहीं किया जा सकता। मैं ऐसे कितने ही रोगियों को जानता हूँ जिन्हों ने पुस्तक का सहारा ले कर लूई कुने की जल-चिकित्सा प्रणाली के आधार पर अथवा केवल ऐसे लोगों की सलाह के मुताबिक, जो स्वयं इस चिकित्सा-प्रणाली द्वारा किसी एक रोग से छुटकारा पा चुके थे, अपनी चिकित्सा की और हानि उठाई। यह स्नान यदि उचित ढंग से दिया जाय तो कोई कारण नहीं कि किसी भी रोग में इससे पूरा लाभ न हो। सब से बड़ी भूल जो इस स्नान में की जाती है वह इसके पर्याप्त तापमान और समय की अवधि के सम्बन्ध में होती है।

कटि-स्नान की विधि—इस स्नान के लिये टब इस प्रकार का होना आवश्यक है जैसा कि चित्र में दिखाया गया है। ऐसा टब न मिलने पर नाँद आदि से भी काम लिया जा सकता है। इस टब में पानी इस प्रकार भरा जाता है कि जब रोगी दोनों पांव बाहर रख कर टब में बैठे तो पानी नाभि और जांघों तक पहुंचे। टब से बाहर पांव सामने किसी एक चौकी पर रक्खे जाते हैं और रोगी टब में पीठ तरफ कुछ सहारा लेकर बिना अपना हाथ रोके तेजी से कुल पेड़ू को नाभि से नीचे की ओर और पेड़ू की एक ओर से दूसरी ओर तक एक साधारण मोटे भीगे हुए कपड़े से पानी के अन्दर ही मलता है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि टाँगे पाँव

और शरीर का ऊपरी भाग पेड़ू के साथ ही ठण्डा न किया जाय।

पेड़ू स्नान

विभिन्न रोगों में कटि-स्नान के लाभ—शरीर में विजातीय द्रव्य का एकत्रित होना ही रोग का कारण है। यह स्नान विजातीय द्रव्य अथवा दूषित मल को ढीला कर के शरीर से निकालता है। इसलिये सब रोगों में इससे लाभ उठाया जा सकता है। यहाँ पर मैं उन विशेष बातों का वर्णन करूंगा जिनका इस स्नान के प्रयोग के समय ध्यान में रखना आवश्यक है। जिन रोगियों का रक्त चाप (Blood Pressure) बढ़ा हुआ है उनको ५० डिग्री से ८५ डिग्री तक के शीतल जल से स्नान देने से हानि पहुंचती है फालिज (Paralysis) के रोगियों को जब तक कि उनका रक्त-चाप स्थिर न हो जाय, स्नान कदापि न देने चाहिये। ब्रांकाइटिस (Bronchitis) दमा, प्लुरिसी (Pleurisy) निमोनिया, अण्डकोष अथवा गर्भाशय प्रदाह व पीड़ा, जांघ की रगों की पीड़ा (Sciatica) और गठिया जैसे रोगों की तीव्र अवस्था में ठण्डे पानी का कटि-स्नान सदैव हानिकारक होता है।

ऐसे समस्त रोगों में जिनमें दाह अपनी तीव्र अवस्था में उपस्थित है, अथवा दबे हुये जुकाम की जीर्णावस्था कटि-स्नान के जल का तापमान ८८ डिग्री से १०० डिग्री तक रखना चाहिये।

ठण्डे जल का कटि-स्नान अधिक समय तक लेने से बहुत से रोगियों की भूख और वजन कम होने लगता है। ऐसी दशा में स्नान के समय की अवधि केवल दो मिनट तक कर देने से भूख बढ़ जाती है और शरीर में स्फूर्ति आ जाती है।

पीलिया अथवा पाण्डु में जलोपचार—पीलिया अथवा पाण्डु रोग (Jaundice) जिसमें औषधि-विज्ञान बिलकुल ही विवश होता है, जल-चिकित्सा द्वारा बहुत कम समय में ठीक हो जाता है। गर्म जल के वस्ति कर्म अथवा एनिमा (Enema) या वाष्प स्नान के उपरान्त ठण्डे जल (६५ से ७५ डिग्री तक) का कटि-स्नान २ से ५ मिनट तक देने से अत्यन्त लाभ होता है।

जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोगों में जल-प्रयोग—पुरुषों के जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोगों में ठण्डे जल (६० से ७५ डिग्री तक) का कटि-स्नान आरम्भ में एक से दो मिनट और फिर क्रम-क्रम से पांच मिनट तक देना चाहिये। इससे अधिक समय तक स्नान देने से जनेन्द्रिय में और भी शिथिलता उत्पन्न हो जायगी। जो रोगी स्वप्न-दोष के रोग से ग्रसित हों उन्हें ठण्डे स्नान कदापि न लेने चाहिये। उनके लिये सामान्य जल ८८ से ९४ डिग्री तक के जल से कटि-स्नान (१५ से ३० मिनट तक) अति लाभकारी सिद्ध होंगे।

मासिक धर्म की गड़बड़ी तथा अन्य बीमारियों में—जिन स्त्रियों के मासिक धर्म के समय रक्त अधिक गिरता हो और बहुत दिनों तक रक्त स्राव जारी रहता हो उन्हें कटि-स्नान (जल का तापमान ६० डिग्री से ७५ डिग्री तक), ५ से १० मिनट तक और दिन में दो से तीन बार देने से शीघ्र लाभ होता है।

पाखाने या मुंह के रास्ते खून गिरने की दशा में—कटि-स्नान (जल का तापमान ६५ से ७५ डिग्री तक) १० मिनट तक रोगी की शक्ति के अनुसार दो चार बार तक देना चाहिये।

कटि-स्नान प्राकृतिक चिकित्सा की अन्य विधियों के साथ बांझपन का अचूक इलाज है।

पुराने सुजाक अथवा गर्मी (आतशक) से उत्पन्न हुई व्याधियों के लिये ८८ डिग्री से ९४ डिग्री के तापमान का जल प्रयोग में लाना चाहिये।

लुई कुने के बाद के जल चिकित्सकों ने कटि-स्नानों में कुछ परिवर्तन किये हैं। कटि-स्नान लेते समय वह पाँवों को गर्म पानी (तापमान १०२ से १०४ डिग्री तक) रखने की राय देते हैं। पेट को मलने के साथ साथ कमर के उस भाग को, जो जल के अन्दर होता है, मलवाते हैं (चित्र नं०) इस स्नान को उन्हों ने तीन बड़े भागों में बाँट दिया है— १ ठण्डे पानी का कटि-स्नान (तापमान ५० से ८५ डिग्री तक), (२) सामान्य जल का कटि-स्नान (तापमान ८८ से ६४ डिग्री तक) (३) गर्म जल का कटि-स्नान (तापमान १०२ से १०८ डिग्री तक)।

ठण्ढे या सामान्य जल के कटि-स्नान के गुण वही हैं जो कुने के बताये हुये कटि-स्नान के हैं। गर्म जल में पांव रखने से विशेष लाभ नहीं होता।

मुमकिन है कि यूरोप और अमेरिका जैसे देशों में, जहाँ कड़ी सर्दी पड़ती है, इसकी आवश्यकता हो। भारतवर्ष में जाड़े के दिनों में टाँगों को घुटने तक गर्म कम्बल से ढक देना ही काफी होता है। यदि रोगी बहुत कमज़ोर हो और सर्दी भी कड़ी पड़ रही हो तो गर्म पानी का टब पाँवों के लिये प्रयोग में लाया जा सकता है।

सिर की पीड़ा जैसी व्याधियों से पीड़ित होने वाले रोगियों को जिनकी आँखे और चेहरा सुर्ख और गर्म हो जाता हो, कटि-स्नान के साथ पाँवों को गर्म पानी के टब में रखने से अवश्य लाभ होता है। टब में बैठने के पहले रोगी को अपना सिर ठण्डे पानी से धो कर उस पर एक गीला तौलिया लपेट लेना चाहिये। इस स्नान के लिए प्रयोग किए जाने वाले जल का तापमान १०२ डिग्री से १०८ डिग्री और स्नान समय १० से १५ मिनट तक होना चहिए इसकी विधि इस प्रकार है:—टब में बैठने से पहले रोगी का सिर ठण्ढे जल से धो कर गीले तौलिये लपेट दें। टब में बैठते समय पानी का तापमान १०२ डिग्री होना चाहिये और फिर धीरे धीरे तापमान को बढ़ा कर १०८ तक ले जाना चाहिये। यह स्नान सुजाक की तीव्र जलन को बन्द करता और पेशाब को खोलता है। बवासीर के मस्सों का दाह तथा पीड़ा को नष्ट करता है। स्त्रियों की गुह्येन्द्रियों की दाह व पीड़ा को दूर करता है। सर्दी लग जाने से यदि मासिक धर्म रुक गया हो अथवा पीड़ा के साथ थोड़ा और रुक-रुक कर आता हो तो इससे लाभ पहुँचता है। गर्भाशय, अण्डकोश का जीर्ण दाह (Inflamation) मालूम होने पर आरम्भ के कुछ दिनों तक गर्म पानी के कटि-स्नान दे कर ही ठण्ढे पानी के कटि-स्नान आरम्भ करने चाहिएं। गर्भवती स्त्रियों को गर्म पानी का कटि-स्नान न देना चाहिये।

मसाने अथवा गुर्दे की पथरी के कारण होनेवाले दर्द को कटि-स्नान शान्त करता है। टांग की नसों के दर्द (Sciatica) में यह स्नान दिन में दो बार १० से १५ मिनट तक देने से भी लाभ हो जाता है।

रोगी स्नान समाप्त करके जब उठे तो उसे ठण्ढे जल के टब में ५ से १० सेकेण्ड तक बैठ जाना चाहिए या रोगी के कूल्हे या कमर के निचले भाग को ठण्ढे जल से धो देना चाहिए। इस बात का ध्यान रहे कि रोगी टब से निकलते समय अपने पांवों को ठण्ढी या गीली जगह न रक्खे। यह स्नान सदैव गर्म कमरे में लेना चाहिए और यदि कमरा ठण्ढा हो तो गर्म कर लेना चाहिए।

घर्षण मेहन-स्नान (लुई कुने)

घर्षण मेहन-स्नान उसी टब में दिया जाता है जो कटि-स्नान में प्रयोग किया जाता है। रोगी एक लकड़ी के स्टूल पर बैठता है जो टब के सिरे से तीन इंच नीचा रहता है— टब में जल इतना भरा रहता है कि वह स्टूल के धरातल तक उसके सिरे को छू कर पहुँच सके। इसके लिए ५५ से ६५ डिग्री तापमान के ६ से ८ गैलन (प्रायः २४ से ३२ सेर तक) जल की आवश्यकता होती है। लुई कुने ने अपनी पुस्तक में जल का तापमान ५० से ६० डिग्री तक रखने की सम्मति दी है, जो कि जर्मनी जैसे शीत प्रधान देश के लिए ही उपयुक्त है। रोगी, जो अपने पैरों को टब के बाहर रखकर स्टूल पर बैठता है, जनेन्द्रिय के अग्र भाग की त्वचा को आगे की ओर खींचता है और बायें हाथ की तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों की सहायता से इस त्वचा को इस प्रकार खींचकर पकड़ता है कि जनेन्द्रिय का अगला भीतरी भाग इन दोनों उंगलियों से पीछे रहे। तब वह आगे खींची हुई सारी त्वचा को एक रूमाल के बराबर के जूट या लीनियन के कपड़े से हलके हलके रगड़ कर धोता है। जनेन्द्रिय के

अगले भीतरी भाग को न रगड़ा जाता है न धोया जाता है। मुसलमानों को, चूँकि वह जनेन्द्रिय के अग्र भाग की त्वचा को कटा देते हैं, फोतों और गुदा के मध्य भाग को, जिसे सीवन कहते हैं, और फोतों अथवा जांघों के मध्य भाग अथवा मेरुदण्ड के अन्तिम भाग को रगड़ कर धोना चाहिये। स्त्रियों को जननेन्द्रिय के ऊपरी परदों को ही मलना चाहिये। सदैव अंगोछे से जितना अधिक पानी उठ सके उठाये और हलके हाथों से धीरे-धीरे इन परदों को इधर उधर न रगड़ते हुये धोया जाय। लुई कुने ने स्टूल के स्थान पर एक ऐसे तख्ते को टब में रखने की सम्मति दी है जो आगे से गोल कटा होता है। यह स्नान दिन में दो या तीन बार या इससे भी अधिक १० से ३० या ४५ मिनट के लम्बे समय तक दिया जाता है। दूसरे स्नानों की भाँति शरीर का गर्म करना इस स्नान के पश्चात् भी आवश्यक है। स्नायु सम्बन्धी रोगों में यह स्नान अति लाभदायक सिद्ध होता है हिस्टीरिया और मिर्गी जैसे भयानक रोगों में लेखक ने बीसियों रोगियों को पूर्ण स्वस्थ किया है। लकवा और गठिया के रोगियों को यह स्नान लम्बे समय तक देना चाहिये। प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी दूसरी क्रियाओं के साथ यह स्नान दिक अथवा क्षय रोग की प्रत्येक दशा में लाभ पहुँचाता है। क्षय रोग चाहे फेफड़ों, आँतों, ग्रन्थियों अथवा हड्डियों का हो, सभी को इस स्नान से लाभ होता है। वीर्य सम्बन्धी रोगों में जब कि जननेन्द्रिय में वीर्य्य धारण करने की शक्ति न हो, स्तम्भन शक्ति का नाश हो चुका हो, उत्तेजना कम हो गई हो या बिलकुल जाती रही हो तो इस अवस्था में यह स्नान अति लाभदायक है।

बांझपन, बारम्बार गर्भपात तथा डिफ्थीरिया जैसे भयानक रोगों में घर्षण-मेहण स्नान का प्रयोग

बाँझपन की दशा में या जिन स्त्रियों को बार बार गर्भपात होता है इस स्नान से बहुत लाभ होता है। बच्चों के सभी रोगों में विशेषकर डिप्थीरिया जैसे भयानक रोग जिससे ९९ प्रतिशत बच्चे काल के ग्रास हो जाते हैं और जिसकी संसार में कोई औषधि नहीं है ठीक समय पर यह स्नान देने से रक्षा की जा सकती है। डिप्थ रिया की दशा में यह स्नान स्थानिक वाष्प-स्नान के बाद दिन में दो तीन बार देना चाहिए। नासूर, भगन्दर पृष्ठ-व्रण या कारबंकिल (Carbuncle) आदि रोगों में वाष्प-स्नान के पश्चात २० से ३० मिनट तक यह स्नान देना चाहिये। इससे घाव जल्द भर जाते हैं।

गले की खराबियाँ, साँस की नली की सूजन, छोटी आंतों की सूजन आदि तीव्र अवस्थाओं में घर्षण-मेहन-स्नान

जुकाम का होना और बह जाना एक अच्छा लक्षण है। इससे शरीर के विजातीय द्रव्य की शुद्धि हो जाती है। परन्तु जब शरीर से जुकाम के बाहर निकालने की शक्ति कम हो जाती है तो यह शरीर के अन्दर रुक कर बहुत सी खराबियां पैदा करता है। गले की खराबियां (Tonsilitis, Pharyngitis) साँस की नली की सूजन (Bronchitis) दमा, निमोनिया, आमाशय की सूजन (Gastritis and Gastralgia) छोटी आँतों की सूजन, (Entritis) आदि आदि जुकाम के अन्दर रुक जाने की अवस्थायें हैं। इन सब तीव्र अवस्थायों में कटिस्नान न देकर मेहन-स्नान देना चाहिये। इन दशाओं के सुधार के लिऐ मेहन-स्नान से बढ़ कर प्राकृतिक चिकित्सा में और कोई साधन नहीं है। मेहन-स्नान सब प्रकार के भीतरी वर्मों को लाभ पहुँचाता है।

फालिज या लकवा (Paralysis) टाँगों की निष्क्रियता (Paraplegea) में यह स्नान लम्बे समय तक दिन में दो तीन बार देने चाहिये।

लुई कुने लिखते हैं कि स्टूल या तख्ते के तीन अंगुल ऊपर तक पानी रखने से बहुत से रोगों में शीघ्र लाभ होता है। ऐसी दशा में जल का तापमान ६३ से ७३ डिग्री तक होना चाहिए। लुई कुने ने ऐसी अवस्थाओं या ऐसे रोगों का कोई वर्णन नहीं किया है। अतः इस संबंध में चिकित्सक और रोगी दोनों ही प्रायः भूल करते हैं और इस कारण उन्हें सफलता नहीं प्राप्त होती बल्कि इसके विपरीत कभी कभी हानि ही उठानी पड़ती है। इसके बारे में चिकित्सक या रोगी को यह ध्यान रखना चाहिये कि जिन रोगों में बिना किसी प्रकार की उत्तेजना दिये दूषित मल को शरीर के बाहर निकालना होता है वहीं ही हम पानी

के तापमान को बढ़ाते अथवा जल को तख्ते , या स्टूल के ऊपर ले आते हैं।

स्त्रियों को मासिक धर्म के समय यह स्नान बन्द कर देना चाहिये। मेहन-स्नान केवल रोगियों के लिये है, स्वस्थ स्त्री पुरुषों को इसे न लेना चाहिये अन्यथा इससे निःसन्देह हानि होगी।

प्राकृतिक स्नान (एडोल्फ जूस्ट)

यह स्नान एक टब में लिया जाता है जिसकी लम्बाई ४ फीट चौड़ाई १८ इंच और गहराई ६ इंच होती है इस स्नान में पांव के ठंढा स्नान, कुने के पेड़ू-स्नान तथा सर्वांग स्नान के प्रभाव मिश्रित हैं। ४ से ६ इंच गहरा पानी, ७० से ७२ डिग्री के तापमान का, टब में डाला जाता है। रोगी टब में टांगे फैलाये हुए घुटनों को पानी से ऊपर एक दूसरे से अलहदा रख कर बैठ जाता है और अपने हाथों से पानी में डूबे हुए सीवन और अंडकोश और अंडकोशों के दोनों ओर के भागों को ५ मिनट तक धोता और मलता है। इसके पश्चात् पानी को हथेलियां से पेडू पर जोर से फेंकता है और साथ ही साथ में मलना शुरू कर देता है। इस तरह ५ मिनट तक मलने के पश्चात् पानी को उठा कर रोगी अपने शरीर पर डाल लेता है। वह अब टब से बाहर आकर अपने गीले शरीर को हाथों से मल कर सूखा कर देता है। इस स्नान को लेखक ने मन्दरीक स्नायु-दौर्बल्य, वायु-विकार दूषित जिगर, चक्कर आने और आंखों की बीमारियों में बहुत ही लाभदायक पाया है। पुरुषों के जननेन्द्रिय सम्बंधी रोगों में तो इससे बढ़ कर शायद ही कोई दूसरी विधि होगी। जीवन-शक्ति को बढ़ाने में यह स्नान बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ है।

वेट शीट पैक (गीली) चादर में लपेटने का स्नान)

सन् १७५० में पहले लूकस ने इस स्नान का प्रयोग किया और उसके बाद वी० प्रेमनिज ने मुख्तलिफ बीमारियों में इस चिकित्सा प्रणाली को अपनाया। रोगी को एक गीली चादर में लपेट कर ऊपर से खुश्क कम्बल या गरम कपड़े इस प्रकार लपेट दिया जाता है कि शरीर को हवा न लग सके। इस स्नान के लिए दो बड़े कम्बल, दो बड़ी चादरें जो कि लिनेन या हाथ के कते हुये सूत तथा हाथ से ही बुनी हुई खादी की हों, एक बड़ा तौलिया और एक बाल्टी की जिसमें पानी (तापमान ६०-८५ से डिग्री) भरा हो, आवश्यकता है। ६० डिग्री से कम तापमान का पानी प्रयोग में न लाना चहिये।

वेट शीट पैक देने का तरीका

पहले तौलिये को खाट के एक सिरे पर आड़े-आड़े बिछा दें। तकिये के लिये ७-८ इंच की जगह छोड़ देनी चाहिये। इसके बाद दोनों कम्बलों को बिछा दें। चादर आवश्यकतानुसार तापमान के पानी में निचोड़ कर कम्बल के ऊपर बिछा दी जानी चाहिये। बाद में रोगी को उस पर इस प्रकार लिटा देना चाहिये कि चादर का तीन इंच हिस्सा कन्धों से बाहर निकला रहे। रोगी की दोनों बाहों को सिर से ऊपर रखवा देना चाहिये। इसके बाद एक तरफ़ से शरीर को चादर से लपेट देना चाहिये और चादर

पूरे शरीर की गीली पट्टी

का सिरा बगल के नीचे दबा देना चाहिये। कूल्हे के नीचे के चादर के हिस्से को उसी तरफ़ की टांग पर लपेट कर दूसरी टांग को बिना ढके छोड़ देना चाहिये। अब रोगी की बांह को नीचे आने देना चाहिये ताकि उससे चादर को दबा सके। इसी प्रकार शरीर की दूसरी तरफ़ को भी गीली चादर लपेटना चाहिये।

अब समस्त शरीर को टांग सहित खूब अच्छी तरह कम्बलों से ढक दें। गर्दन पर कम्बल को ठीक-ठीक लपेटने के लिये एक पट्टी लपेटने की आवश्यकता है। बाद में कम्बल से बचाने के लिये, जिससे वह शरीर में गड़ने न पावे तथा हवा को भीतर प्रवेश करने से रोकने के लिये तौलिये को बाहर कर कन्धे के नीचे मुंह, गर्दन को ढंक देना चाहिये। शरीर को और अधिक गर्मी पहुंचाने के लिये शरीर पर एक

और कम्बल लपेटा जा सकता है। रोग की गति के अनुसार इस स्नान को एक से तीन घंटे तक या इससे भी ज्यादा समय तक दिया जा सकता है।

ठंडा पैक देने की विधि

इसका प्रयोग ठीक 'वेट शीट पैक' की तरह होता है। पानी का तापमान ६० से ७० डिग्री के बीच होता है। इससे कम तापमान का प्रयोग गुणकारक नहीं होता। वेट
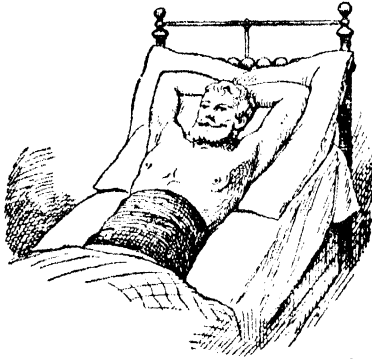
पेट की गीली पट्टी

शीट तथा ठण्ढे पैक में अन्तर यह है कि ठण्ढे पैक में चादर सब तर रहनी चाहिये तथा एक चादर के स्थान पर दो चादरों को अधिक देर तक ठंढा रखने के लिये व्यवहार में लाना चाहिये। इस प्रयोग में कन्धों को सावधानी से बचाये रखना चाहिये जिससे गर्दन के पास ठण्ढक न पहुँचे। गीली चादर हर १०-१५ मिनट के बाद बदलते रहना उचित है। इस बार-बार बदलने की तकलीफ़ से बचने के लिये सब से नया तरीका जो इस्तेमाल किया जाता है वह यह है कि ऊपर के कम्बल को हटा कर चादर पर बर्फ़ रगड़ा जाता है जब तक कि चादर काफ़ी ठण्ढी नहीं हो जाती। ठण्ढा पैक बुख़ार सम्बन्धी रोग जैसे कि मलेरिया, इन्फुलेन्जा, पीला बुख़ार, मियादी, टाइफाइड, बुख़ार और प्लेग आदि में बहुत हितकारी है।

गीली चादर का स्नान (ड्रिपिंग शीट)

यह प्रयोग जल चिकित्सालयों में विशेष लाभप्रद होता है। भीगे चादर से लिपटे रहने पर शरीर को भली प्रकार रगड़ने के प्रयोग को ड्रिपिंग शीट कहते हैं। लिनेन अथवा खादी की एक बड़ी चादर एक पानी के बर्तन में थोड़ी देर रक्खी जाती है जिससे कि चादर ख़ूब अच्छी तरह पानी में भीग जाय और फिर उसे निचोड़ लिया जाय। चादर पानी से भली प्रकार तर रखनी चाहिए। उसको एक सिरे से पकड़ कर दूसरे सिरे से समेट लेना चाहिए। रोगी को टब में जिसमें ३-४ इंच गहराई लिये हुये ठंढा पानी भरा होना चाहिए, खड़ा कर देना चाहिये। रोगी को अपने दोनों हाथों को थोड़ा ऊपर उठाने दो तब गीली चादर को बाईं बगल से रोगी के शरीर पर लपेटना आरम्भ करें। यह ध्यान रखना चाहिए कि रोगी चादर को मजबूती से पकड़े रहे ताकि चादर अपने स्थान पर रुकी रहे। और फिर दो आदमियों से रोगी के शरीर को तेजी से रगड़वाना चाहिए। शरीर के गर्म होने पर और पानी शरीर पर डाला जाना चाहिये। गीली चादर के गिरा देने के बाद सूखी चादर लपेट कर शरीर को रगड़ना चाहिये। बस यह स्नान पूरा हो जायगा।

इस स्नान के प्रयोग का प्रभाव पानी के तापमान पर तथा पानी की मिकदार, जो कि चादर में छोड़ दी गई हो, तथा प्रयोग की अवधि पर भी निर्भर है। कमजोर

ड्रीपिंग बाथ

रोगी को खाट पर लिटा कर अथवा स्टूल पर बिठा कर भी यह प्रयोग में लाया जा सकता है। यह भी ध्यान रखना चाहिये कि जितना ही अधिक ठंढा पानी होगा उतना ही अधिक वह लाभदायक भी प्रमाणित होगा। दुर्बल या ऐसे

रोगी, जो ठंढे पानी के प्रयोग से अभ्यस्त नहीं होते उनके लिये कुछ गर्म पानी का (तापमान ६५ से ७५ डिग्री फा०) प्रयोग करना चाहिए। शरीर से मजबूत रोगी के लिये ५५ डिग्री फा० तक का पानी व्यवहार में लाया जा सकता है जो सदैव लाभदायक सिद्ध होगा।

लेखक ने बिजली के स्नान अथवा गर्म पैक तथा अन्य पसीना लाने वाले प्रयोगों के अनन्तर भी इस प्रयोग को किया है जिसका परिणाम सन्तोषप्रद हुआ है। यह ठंढे स्नान के मुकाबले में सबसे अच्छा प्रयोग है।

पेड़ू का स्थानीय गर्म सेंक (Abdominal heating pack) और उसके विभिन्न प्रयोग

जल-चिकित्सा के अन्तर्गत पेड़ू का स्थानीय गर्म पैक (Abdominal heating Pack) बहुत लाभदायक प्रयोग है। एफ० ई० विल्ज ने ठीक ही कहा है कि यदि कोई सर्वोपयोगी रामबाण औषधि हो सकती है तो वह रात को पेड़ू की पट्टी ही है। उन्होंने अपनी विख्यात पुस्तक 'दि नेचुरल मेथड्स आफ हीलिंग' में लिखा है कि स्त्रियों के गुप्त रोगों में इस प्रयोग का आश्चर्यजनक प्रभाव होता है। यह प्रयोग जब छाती पर किया जाता है तब इसे छाती का पैक कहते हैं। यक्ष्मा (टी० बी०) रोग में चेस्ट पैक सफलतापूर्वक व्यवहार में लाया जाता है। चेस्ट पैक खांसी को रोकता है तथा तापमान को कम करता है। पुरनी खांसी तथा फेफड़े की सूजन में लेखक ने इस प्रयोग को विशेष लाभदायक पाया है। यह पैक गर्दन के के इर्द-गिर्द गले की बढ़ी हुई गिल्टियों में अथवा आवाज के बैठ जाने में बहुत फायदेमन्द है। लेखक ने इस प्रयोग को पुराने डिप्थीरिया के रोग में सफलतापूर्वक व्यवहार किया है।

गीले कपड़े की गद्दी और उसके प्रय ग एवं गुण

पानी की गद्दी (कम्प्रेस) जल-चिकित्सा का सब से सरल प्रयोग है और साथ ही अत्यन्त ही प्रभावात्मक भी है। इस प्रयोग में किसी भी तापमान का पानी जिस्म पर कपड़े अथवा किसी अन्य उपयुक्त यंत्र द्वारा प्रयोग किया जाता है। लिनेन का कपड़ा ४ से ६ बार तह किया हुआ या इससे भी अधिक का व्यवहार में लाया जाता है। विशेष लाभ के लिए गद्दी को मोमजामा, (आयल क्लाथ) अथवा (रबर शीट) से ढक देना चाहिए। गद्दी को देर तक रखने के लिए तथा आवश्यकतानुसार तापमान प्राप्त करने के लिए यथेष्ट तापमान के पानी से भरे हुए रबर की थैली को गद्दी के ऊपर रखना चाहिए। गद्दी का प्रभाव पानी के तापमान पर निर्भर है।

"बहुत ठंढी पट्टी गांठ अथवा जख्मों के सूजन को दबाने में व्यवहार की जा सकती है। यह तापमान को कम कर देती है। सिर के ऊपर व्यवहार में लाने से सन्निपात के रोगी को आराम करता है। बहुत ठंढा अथवा बर्फ का बैग भोजन करने के आध घंटा पूर्व पेट पर रखने से मलेरिया की कै के लिए अत्यन्त लाभदायक है।" —जे० एफ० कैलाग

खूनी बवासीर में इस पट्टी का स्थानीय प्रयोग लाभदायक है तथा गर्दन की चारों तरफ लपेटने से टांसिल की बीमारी (Tonsilitis) में भी हितकर प्रमाणित हुआ है। रीढ़ की हड्डी के ऊपर के भाग में तथा गर्दन पर ठंढी पट्टी के लगाने से नकसीर तुरन्त ही बन्द हो जाती है। खूनी बवासीर अथवा गर्भाशय से खून बहने में ठंढे पानी की पट्टी दोनों जांघों के बीच में लगाने से तुरन्त ही रुधिर प्रवाह बन्द हो जाता है। पेट ऊपर ठंढी पट्टी कै, उल्टी को रोकती है। सूजाक के कारण फोतों के दर्द को भी यह दूर करती है।

जल का तरारा (Douche) देना

तरारा जल का विशेष प्रयोग है जो कि टोंटी से शरीर के विशिष्ट अंग पर किया जाता है। आजकल जल-चिकित्सा में अनेक प्रकार के यंत्र व्यवहार में लाये जाते हैं, जिससे तरारा आसानी से दिया जा सकता है। ऐसे यंत्रों के अभाव में घर के नलों अथवा साधारण टीन का बर्तन भी, जिसमें रबड़ की नली लगी हो, काम में लाया जा सकता है।

तरारा देने की क्रिया का प्रभाव तापमान, दबाव और पानी की मोटी या पतली धारा पर निर्भर है। तरारा में व्यवहार किये जाने वाले पानी का तापमान ४५ से ७० डिग्री फारन हाइट होता है और गर्म तरारा के लिये १०४ से १२५ अथवा १३० डिग्री का तथा साधारण के लिये

६२ से ६७ डिग्री फारन हाइट। यदि तरारा का इलाज कमजोर तथा अशक्त रोगी पर करना हो तो तरारा कम ऊंचाई से देना चाहिये। यदि ऐसी अवस्था में ठंडा अथवा अति ठंढे पानी का व्यवहार किया जाय तो तरारा बहुत कम समय तक करना उपयुक्त होगा। किसी किसी अवस्था में तरारे का कालम (घेरा) एक बारीक बाल से कदाचित ही अधिक होता है। अन्य अवस्थाओं में टोंटी का नाप आधे इंच घेरे का होता है।

ठंढा तरारा करीब करीब हर एक पुराने रोग में लाभदायक सिद्ध हुआ है। संक्रामक रोग में ठंढा तरारा रामबाण है। गठिया तथा अन्य बात रोगों के लिए अति ठंढे जल के तरारे के स्थान में गरम पानी के तरारे से चिकित्सा शुरू करनी चाहिए।

गरम तरारे के लिये पानी के तापमान को शनैः शनैः परन्तु शीघ्रता से बढ़ा कर सबसे ऊंचे तापमान तक पहुंचना चाहिए। तरारे की अवधि १५ सेकंड से ५ मिनट तक होती है। चूंकि तरारा प्रायः दर्द को आराम करने के लिये दिया जाता है इसलिये अधिक ऊंचाई से देने की आवश्यकता नहीं। जब कि ज्यादा तेज तापमान व्यवहार किया जाता है तो टाटी को बराबर हिलाते रखना चाहिये।

अन्य प्रकार के सेंक और उनके प्रयोग

गर्म जल में निचोड़ हुये कपड़े या गर्म पानी की बोतल के द्वारा या रबड़ के लच्छे से देह की त्वचा में उष्णता का प्रयोग फोमेन्टेशन कहलाता है। फोमेन्टेशन किसी अंग विशेष के वाष्प-स्नान का भी काम देता है। फोमेन्टेशन के लिये सबसे उत्तम पदार्थ मोटी फलालेन या ऊनी कपड़ा है। आवश्यकता तथा अवस्था के अनुसार कपड़ा काफी लम्बा चौड़ा होना चाहिए। फोमेन्टेशन के लिये लगभग आधी बाल्टी उबलता हुआ जल आवश्यक है। जल को उबलता हुआ रखने के लिये बाल्टी या बर्तन को थोड़े से जलते कोयले या अंगीठी पर रख दें। बीमार को आवश्यकता तथा उसकी दशा के अनुसार चाहे लिटा कर डुबों दें या चाहे बैठे रहने दें। कपड़े को उबलते जल में दोनों सिरे पकड़ कर डुबो दें। जब कपड़ा उबलते हुये जल में पूरा तर हो जावे तो जल्दी से दोनों सिरों से कपड़े को ऐंठ दें, जिसमें कि कपड़ा अच्छी तरह उमेठ जाये। तब कपड़े को उस भाग पर रक्खें जहां सेंक देना है। सदैव त्वचा पर सूखा कपड़ा रख कर फोमेन्टेशन दें। जहां सेक देना होता है कभी-कभी वहां कुछ वेसलीन या नारियल का तेल रगड़ देते हैं। बीमारी की हालत के अनुसार फोमेन्टेशन का समय कम या अधिक होता है। प्रयोग के अन्त में थोड़ा ठंढा प्रयोग करना चाहिये।

डा० ए० सी० सेल्मन, एम्० डी० का कहना है कि फोमेन्टेशन लगभग पीड़ा वाली सब व्याधियों में आराम देता है। वह सब प्रकार के लेप व मरहमों से कहीं श्रेष्ठ है। उत्तम लाभ के लिये विशेष कर पीड़ा की दशाओं में फोमेन्टेशन काफी अधिक चौड़े भाग में देना आवश्यक है।

अन्य उष्ण प्रयोगों की तरह फोमेन्टेशन का प्राथमिक परिणाम विशेष या उत्तेजना करने वाला होता है जब बहुत देर तक फोमेन्टेशन किया जाता है तो यह दूसरा अप्रधान अर्थात् शान्तिकारक परिणाम दबता जाता है। डा० जे. एच्. कैलाग 'रैशनल हाइड्रोथिरैपी में' लिखते हैं" जब किसी सूजान को कम करना होता है या स्राव व स्वेद के अवरोध में उत्तेजिता करना हो, नस (स्नायु) या पेशी को उत्तेजित करना हो, किसी विशेष अंग में रक्त बदलना या बढ़ाना हो, रुधिर के विशेष जीवाणु बढ़ाना हो या काम करने की सामर्थ्य जागृत करना हो तो सेंक (फोमेन्टेशन) का प्रयोग करना चाहिए।"

लिवर का सूजन, स्त्री या पुरुष के गुप्तांग की सूजन, रगों और पुट्ठों की सब प्रकार की सूजनयुक्त व्याधियों, आंत उतरने में जो कम न हो, बड़ी रग से दर्द के दाँत की पीड़ा, आधा शीशी तथा कर्ण पीड़ा, पुट्ठों के जोड़ों का जकड़ना सूजाक, कंठ या तालू का फूलना, पथरी की पीड़ायें, ग्रन्थि रोग, नसों का दर्द आदि रोगों पर यह सेंक अत्यन्त गुणकारी होता है। लेखक ने कंठ के अवरोध व कंठ नाली की अन्य व्याधियों में गर्म फोमेन्टेशन तथा उसके पश्चात् शीत प्रयोग का उपयोगक अत्यन्त उपयोगी पाये हैं। सूजन में यह बहुत लाभदायक होता है। लेखक ने फेफड़ों की सूजन और पीड़ा अर्थात् निमोनियां, फेफड़े की अन्य सूजन, वायु-नली की

(शेष ३६ पृष्ठ पर)

जापानी हॉट बॉथ

लेखक—डाक्टर सुरेन्द्रप्रसाद गर्ग, एम० ए०

जल चिकित्सा-शास्त्र-विशारदों ने अनेक प्रकार के स्नानों का विधान किया है। जापानी हॉट बॉथ का भी उन्हीं में महत्वपूर्ण स्थान है। इन पंक्तियों के लेखक ने उक्त स्नान को अत्यधिक उपयोगी एवं अचूक पाया है। इसकी विधि तथा लाभ नीचे लिखे जाते हैं:—

एक गोल (shallow) टब या अन्य बर्तन लीजिये। बर्तन इतना बड़ा हो कि स्नान करने वाला अच्छी तरह बैठ सके। उसके कन्धे भी उसमें समा जायें। पर सिर ऊपर रहे। बर्तन में सुहाता-सुहाता गर्म जल भर कर रोगी को बिठला देना चाहिये। सिर पर ठंडे जल की गीला वस्त्र रखना जरूरी है।

नियम—(१) यह स्नान शुरू में प्रति सप्ताह और दो मास बाद प्रति तीसरे दिन होना चाहिये।

(२) यह स्नान जीर्ण रोगों में बड़ा लाभ पहुंचाता है।

(३) स्नान १५ मिनट से ४५ मिनट तक किया जा सकता है।

(४) स्नान का जल ठण्डा होने पर उसमें से ठण्डा जल को हिलाना-डुलाना न चाहिए। गर्म जल निकाल कर गर्म मिला देना चाहिए।

(५) गर्म जल में शान्त चित्त होकर बैठना और जल हिलने में बेचैनी पैदा करता है।

(६) स्नान के समय जब जब घबराहट या बेचैनी हो तब तब शरीर के ऊपरी भाग को जल से ऊंचा उठाना और सिर पर दो-चार लोटा ठण्डा जल डालना उचित है।

(७) जो व्यक्ति एक साथ ३०-४५ मिनट तक स्नान नहीं ले सकते, उन्हें १०-१५ मिनट जल में बैठ कर उठ जाना चाहिये और १०-१५ मिनट टहल कर फिर जल में बैठना चाहिये। ऐसा करने से नाड़ी अपनी साधारण दशा में आ जाती है और बेचैनी नहीं होती।

(८) स्नान के अन्त में शरीर को ठण्डे जल से स्नान करा के कम्बल लपेट कर लेट जाना चाहिये। इससे अत्यधिक पसीना आता है, और शरीर बड़ा हल्का हो जाता है।

(९) हृदय-रोग वाला को गर्म जल पेड़ू तक रखना चाहिए। किसी भी दशा में हृदय को गर्म जल न छूए।

(१०) बच्चों व वृद्धों के लिए अधिक गर्म जल न लेना चाहिए।

(११) गुर्दों, पेट, बवासीर आदि के रोगों के लिए जल नाभी तक ही रखा जावे।

(१२) गठिया तथा लकवे के रोगियों को उन अंग विशेषों को उसे ४ घण्टों तक गर्म जल में रखना उचित है।

(१३) यह स्नान दुर्बलता अवश्य लाता है, पर शरीर के जीर्ण से जीर्ण रोग को दूर भगाने में अपना सानी नहीं रखता। हमने इसे पीलिया, मियादी ज्वर, पेट के रोगों में बहुत लाभ उठाया है। विशेषतः सरदी में इस स्नान को लेने में बड़ा आनन्द आता है। चिकित्सकों का मत है कि दमा, फोड़ा, बवासीर, खुजली, बहुमूत्र, आदि सभी रोगों में इससे लाभ उठाया जा सकता है। पर हमारी राय में क्षय, स्नायविक रोग आदि में इसे न होना चाहिये। कभी-कभी चिकित्सा की भूलवश रोगी को स्नान के समय गश्त आ जाती है। पर उस समय न घबरा कर रोगी को लिटा देना चाहिए और उसके सिर पर ठण्डा जल डालना चाहिए। रोगी स्वतः ही होश में आ जाता है।

जल-तत्त्व
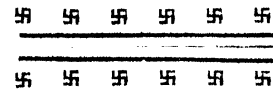
श्री सुरेन्द्रनाथ तिवारी, १४ तुलाराम बाग, प्रयाग

हमारे शरीर में जल काफी तादाद में रहता है। इसमें ६६ प्रतिशत जल है। यह मात्रा कुछ तो जल से जो हम पीते हैं और कुछ भोजन की सामग्री से जो हम खाते हैं कायम रहती है। खाद्य-पदार्थों के बाद हमारा शरीर जल पर ही निर्भर रहता है। इसी कारण अनशन करते हुए भी जल के आश्रय से अतिकाल तक शरीर चलाया जा सकता है।

जल-तत्व क्या है और इसका हमारे शरीर से क्या सम्बन्ध है इस बात को प्रत्येक शरीरधारी को समझ लेने की आवश्यकता है। हम लोग समुचित शिक्षा की कमी के कारण बहुत सी बातें नहीं समझते। मूक पशुवत सांसारिक वस्तुओं का व्यवहार तो हम करते हैं परन्तु समझ के साथ नहीं। हम नहीं समझते कि किसी वस्तु के साथ हमारी कितनी घनिष्टता है। उसका हमारे जीवन के साथ क्या सम्बन्ध है और किस मात्रा में वह हमें क्या लाभ तथा क्या हानि कर सकती है। भोजन को ही उदाहरण के रूप में ले लीजिये। हम इतना ही अनुभव करते हैं कि बिना खाये हमारा जीवन अधिक काल तक नहीं चल सकता। पर यह खाना, जिससे जीवन चलता है, क्या है; क्यों इससे जीवन चलता है! क्या हमारे लिए उपयोगी है । क्या नहीं; कितनी मात्रा से क्या फायदा अथवा क्या नुकसान हो सकता है, इत्यादि बातें न तो हम अच्छी तरह जानते ही हैं और न जानने का प्रयत्न ही करते हैं। केवल पशुओं की भाँति पेट भरना जानते हैं। उसमें भी एक भारी कमी रहती है। पशु वर्ग तो अपने स्वाभाविक ज्ञान (Instiucts) के कारण अपने खाद्याखाद्य पदार्थ को समझ लेता है तथा तदनुसार समुचित मात्रा में ही उसका प्रयोग करता है। परन्तु हम लोग तो जबान के स्वाद के पीछे चलने वाले हैं और इसी कारण यदि खाने की चीजें रुचि कर हुई तो पेट को बेतहाशा भर देते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि जिससे हमें लाभ होना चाहिए उससे उलटे भारी हानि हो जाती है। यह सब हमारे समझने की कमी के कारण होता है और ठीक ऐसी ही बात जल के सम्बन्ध में भी है।

खाद्य-पदार्थों के सम्बन्ध में खाते खाते थोड़ा-बहुत अनुभव हमें हो ही जाता है परन्तु जल के सम्बन्ध से तो हम बिलकुल अनभिज्ञ रहते हैं। प्यास लगने पर पानी पी लेना एक मोटी बात है। पर इसकी भी हम अक्सर अवहेलना कर जाते हैं। शरीर की कोई भीतरी मांग है यह तो हमें मालूम हो जाता है परन्तु वह क्या है, खाने की है या पीने की इसका निर्णय करना कठिन हो जाता है। पीने की यदि माँग हुई और स्वाद के आग्रह की प्रबलता के कारण यदि पानी की जगह खाना पेट में पहुँचाया गया तो हमारी जीवन-शक्ति इस हमारी समझ की कमी के अत्याचार के कारण भीतर ही भीतर जल-भुन कर रह जायगी। वह रोगों के रूप में भीतर ही भीतर कोई विद्रोह भले ही खड़ा कर दे, इसके अतिरिक्त वह हमसे कह ही क्या सकती है? गूंगा इशारे से ही अपनी जरूरत हमसे प्रकट कर सकता है। यह हमारी बुद्धिमानी है कि हम उसको ठीक-ठीक समझ जायं। अस्तु जीवन शक्ति को ठीक अवस्था में रखने के लिए यह परम आवश्यक है कि भोजन की तरह समय पर समुचित मात्रा में जल भी हमारे शरीर में पहुंचना चाहिए। हम ऊपर कह ही चुके हैं कि जल हमारे जीवन के लिए एक उपयोगी पदार्थ है। इसको और अच्छी तरह से समझने के लिए एक इंजन का उदाहरण ले लीजिये। इंजन कोयला और पानी के सहारे चलता है— या यों कहिये कि कोयला और पानी ही उसे चालक-शक्ति रूप जीवन प्रदान करते हैं इन दोनों का प्रयोग यथोचित मात्रा में न होने से इंजन की चाल में बाधा पड़ सकती है। निरा कोयला ही कोयला झोंक देने अथवा पानी ही पानी दे देने से वह चल नहीं सकता। यही बात हमारे शरीर के लिए पानी के सम्बन्ध में समझना चाहिए।

अब यह जल-तत्त्व जो हमारे जीवन का एक अनिवार्य अंग क्या है और इसका दूसारे जीवन से क्या सम्बन्ध

है, इसी पर हमें विचार करना है।

जल-तत्त्व से हमारा मतलब जल से मिलनेवाली उस शक्ति से है जिसके सहारे हमारा जीवन चलता है। जैसे हमारे स्थूल शरीर की रग-रग और रेशे-रेशे में प्राण-शक्ति रहती है वैसे ही अन्य पदार्थों की तरह पानी में भी प्राण-शक्ति होती है : यदि यह प्राण-शक्ति जल में नहाती तो उसके सहारे हमारे शरीर की प्राण-शक्ति कैसे चलती। यह हमारे शरीर को ही नहीं प्रत्युत सृष्टि के सारे इतर वनस्पति तथा प्राणि वर्ग को भी प्राणांश प्रदान करता है। कितनों का तो यही एकमात्र जीवनदाता है। जल तो मछली का एक जीवनाधार है। कितने ऐसे और जीव भी हैं जो जल से ही जीवन पाते हैं और उसी से अपना जीवन चलाते हैं। यही जल में रहने वाली प्राण-शक्ति हमारा जल-तत्त्व है। गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है "रसोऽहमप्सु कौन्तेय" (७ । ८)-हे अर्जुन! मैं जल में इस रूप से रहता हूँ अर्थात् जल में जीवन चलाने वाला जो रस (प्राण) है, वह मैं हूँ। यही मैं विश्वात्मा अथवा विश्वशक्ति (Cosmic Intelli gecne) है।

उपरोक्त बातों से अब स्पष्ट हो जाता है कि जल-तत्व से हमारी बड़ी घनिष्टता है। यह क्यों है, अब हमें इस पर विचार करना है। इसके लिए हमको अपने उद्गम की ओर जाना पड़ेगा। हमारा सृष्टिवाद खुले शब्दों में कहता है कि एक ही सर्वशक्ति-सम्पन्न-सत्ता की महत्ता यह विश्व ब्रह्मांड है। विकासोन्मुख होने पर इसी एक महती अव्यक्त शक्ति से पुरुष (प्राण अथवा चेतना शक्ति) तथा प्रधान (प्रकृति अथवा पदार्थशक्ति की अभिव्यक्ति होती है। इसी प्रधान (प्रकृति) शक्ति से महत् (बुद्धि), इससे अहंकार (Ego), अहंकार से मन तथा मन से पंचभूतों के परिवार की उत्पति होती है।

पंचभूतों में सर्वप्रथम आकाश (Space), आकाश से वायु, वायु, से तेज (प्रकाश), तेज से अप (जल) और जल से पृथ्वी तत्व की उत्पत्ति होती है। इस पृथ्वी तत्त्व से ही समय पाकर मुख्यतः चार प्रकार की सृष्टि उभ्दिज, स्वेदज, अंडज और जरायुज क्रमशः उत्पन्न होती है। अंतिम जरायुज ही हम सबों की उत्पत्ति का कारण है। इस विधान में एक बात बड़े मार्के की है जिस पर सभी बुद्धिमानों को विचार करना चाहिए। वह यह है कि एक ही अव्यक्त (जिसको हम देख नहीं सकते) क्रमशः व्यक्त (स्थूल) होते होते इस वर्तमान विश्व के रूप में होता है और अन्त (लय के समय) में उलटे क्रम से एक दूसरे में लय होते-होते केवल एक वही अव्यक्त शेष रह जाता है।

उपरोक्त विधान से हम देखेंगे कि हमारी अभिव्यक्ति अन्तिम आधार पृथ्वी है। इसी से हम उसे पृथ्वी माता कहते हैं। पृथ्वी जल तत्त्व से उत्पन्न है। दूसरे शब्दों में इसको यों भी कह सकते है कि पृथ्वी तत्त्व के बाद हमारा सबसे नजदीकी तत्त्व जल-तत्त्व ही है। यही हमारी जल-तत्त्व की घनिष्टता है। और इसी कारण हमारे लिए आहार के बाद यह सबसे आवश्यक चीज है। यही कारण है कि प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली में मिट्टी की उपादेयता के बाद जल की उपयोगिता का महत्वपूर्ण स्थान है।

(पृष्ठ ३३ का शेषांश)

सूजन, मूत्राशय की सूजन और दमा में गर्भ फोमेन्टेशन का प्रयोग बहुत लाभकारी देखा है।

रीढ़ के ऊपरी भाग तथा गर्दन से पिछले भाग में सेंक देना और सीने पर शीत प्रयोग करना फेफड़े की कंपकपी को रोकता है।

फोमेन्टेशन देने की तीन विधियां हैं:—(१) गर्म सेंक (२) बारी-बारी से सेंक और (३) प्रावाहिक सेक।

प्रारम्भ ही में गर्म सेंक या फोमेन्टेशन की व्याख्या हो चुकी है।

समान काल का बारी बारी अति उष्ण व अति शीत सेंक देना बारी बारी का सेंक (Atlernate fomentation) कहलाता है। ऊष्ण से आरम्भ कर अन्त में शीत फोमेन्टेशन करना चाहिये।

प्रावाहिक (Revulsiue fomentation) फोमेन्टेशन बारी-बारी सेंक के समान है। भेद केवल इतना है कि शीत प्रयोग सदैव कम समय का होता है। इसके प्रयोग का सब से उत्तम प्रकार यह है कि गरम सेंक ४ से ५ मिनट देना चाहिये और शीत प्रयोग २० से ४० सेकंड तक।

बच्चों की बीमारियाँ

डा० कुलरंजन मुकर्जी, कलकत्ता

बच्चों की बीमारियां भी उसी कारण अथवा अवस्था से उत्पन्न होती हैं जिनसे वयस्कों के बीमरियां होती हैं। सब बीमारियां शरीर प्रणाली में मल अथवा विष के एकत्र होने के कारण उत्पन्न होती हैं। बीमारी चाहें जिस तरह की भी हो, उनकी उत्पत्ति शरीर में इन्हीं दूषित पदार्थों के एकत्र होने के ही कारण होती है। आप को यह सन्देह हो सकता है कि बच्चे के शरीर में मल अथवा विष कहाँ से इकट्ठा हो सकता है। कुछ लोगों का कहना है कि यह विकार उसे अपने माता-पिता से प्राप्त होता है। लेकिन आधुनिक वैज्ञानिक जोर देकर अपनी यह राय जाहिर करते हैं कि किसी भी व्यक्ति को अपने पिता या माता से बीमारियां पैतृक रूप में नहीं प्राप्त होतीं। उसे तो अपने माता-पिता से केवल वह पूर्वावस्था ही विरासत में मिलती है जिससे शरीर में रोग उत्पन्न होता है। यदि बालक को स्वच्छ तथा आरोग्यवर्धक वातावरण में रक्खा जाय, उसका पालन-पोषण हो तो उसे अपने अभिभावकों की बीमारियों से सर्वथा मुक्त रक्खा जा सकता है। लेकिन यह ध्यान रहे कि शरीर की रासायनिक प्रक्रिया (Metadotism) के फलस्वरूप अथवा पाचन क्रिया के बाद शरीर में बच रहने वाले भोजन सड़ाव के कारण शरीर में किंचित उत्पन्न हुआ विष बच्चे के सुकोमल शरीर में गड़बड़ी पैदा कर देने के लिए पर्याप्त सिद्ध होता है। थोड़ा सा भी श्रम अथवा उष्णता उसके शरीर का तापमान १०२ डिगरी तक बढ़ा सकते हैं। इसी प्रकार

सब बीमारियों की जड़ एक ही है—शरीर में विजातीय द्रव्य का संचय। तो फिर एक नव-जात शिशु के, दूध मुँह बच्चे के, शरीर में यह विकार या बिसदृश पदार्थ कहां से आ जाता है? इस प्रश्न का समुचित उत्तर आप को इस लेख में मिलेगा। साथ ही आप यह भी जान सकेंगे कि कुछ विशिष रोग शैशवावथा में ही क्यों होते हैं, और उनके निवारण के सरल उपाय क्या हैं? —सं०]

आवश्यकता से कुछ भी अधिक भोजन करने पर वह वमन (कै) कर देता है, और सड़ी-गली चीज़ों के खाने से उसे पतले दस्त (Diarrhea) होने लगते हैं। वास्तव में बच्चों में रोग की प्रतिरोधक शक्ति बहुत कम होती है और संक्रामक रोगों का उनके शरीर पर असाधारण रूप से प्रभाव पड़ने की सम्भावना रहती है। आंतों में कुछ भी मल इकठा होने अथवा शरीर-प्रणाली में थोड़ा सा भी विकार जमा होने पर उसके शरीर में रोगोत्पत्ति करने वाले जीवाणुओं की वृद्धि होने का ज्यादतर मौका मिल जाता है। यही कारण है, जो कुछ विशिष्ट बीमारियां खास तौर से बाल्यकाल अथवा शैशवावस्था में ही हुआ करती हैं। सच यह है कि रोग की सब से प्रबल सम्भावना जन्म लेने के प्रथम दो वर्ष में दृष्टिगोचर होती हैं।

लेकिन प्रकृति सदैव सतर्क रहती है। वह सदा विभिन्न मार्गों से विकार को शरीर के बाहर फेंक देने तथा रक्षात्मक अवयवों द्वारा नष्ट कर देने के लिए प्रयत्नशील रहा करती है। इस प्रकार जब तक वह शरीर को स्वच्छ और मल-रहित रखने में समर्थ होती है तब तक शरीर में कोई रोग उत्पन्न नहीं हो सकता। लेकिन जब किसी कारण से आमाशय, गुर्दे, त्वचा और फेफड़े अपना कार्य पूरा-पूरा सम्पादन करने में असमर्थ होते हैं तो यह मानी हुई बात है कि शरीर में कुछ न कुछ मल अथवा विकार शरीर के अन्दर रह जाता है। बच्चे का सुकोमल शरीर इस विष

को बहुत अधिक सहन नहीं कर सकता और अक्सर वह इससे छुटकारा पाने के लिए जोरा से प्रयत्न करता है। सभी तीव्र रोग शरीर-मन्दिर को स्वच्छ रखने की इस प्राकृतिक प्रक्रिया के ही फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। लेकिन जब दमनकारी (रोग को दवा देने वाली) औषधियों के प्रयोग किए जाने अथवा किसी अन्य कारण से शरीर-प्रणाली रोग का प्रतिरोध करने की शक्ति खो बैठती है तो वह तीव्र रोग जीर्ण रोग का रूप धारण कर लेता है।

(२)

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रोग वस्तुतः एक ही है—और वह है शरीर में मल अथवा विसदृश पदार्थों का जमाव। और इसलिए इसका इलाज भी एक ही है—शरीर-प्रणाली में संचित मल की सफाई अथवा मल-विसर्जन। जिस प्रकार प्रकृति मल-विसर्जन करने वाले अंगों के द्वारा मल अथवा विसदृश पदार्थों को बाहर फेंक कर हमारे शरीर को स्वस्थ रखती हैं, उसी प्रकार हम भी प्रकृति की इस प्रक्रिया के द्वारा शरीर को शुद्ध तथा मल-रहित रख सकते और समस्त रोगों को दूर कर सकते हैं। प्रत्येक रोग को उन्हीं उपायों से दूर किया जा सकता है जिनसे कि हम अपने स्वास्थ्य को बनाए रखते हैं।

बच्चों की सभी बीमारियों में, जब कि यह विश्वास किया जाता हो कि मल-विसर्जन क्रिया समुचित रीति से नहीं हो रही है—पेट साफ नहीं हो रहा है, तो मल को बाहर निकाल देने के लिए प्रत्येक उपाय करना चाहिए। प्रत्येक छोटे बच्चे के मल-द्वार (गुदा) में पान के पत्ते का डंठल तीन-चौथाई इंच तक प्रवेश किया जा सकता है। इससे मृदु रेचन होगा और मलांत्र (Colon) में रुका हुआ मल बाहर निकल आएगा। अपेक्षाकृत कड़े बच्चों को खालिस शहद का एनिमा दिया जा सकता है। यह प्रायः जल के एनिमा का-सा काम करेगा, अंतर केवल यही होगा कि इससे मलांत्र न धुलेगा। शहद का एनिमा देने के बाद कुछ सेकेन्ड तक गुदा-द्वार को दबा रखना चाहिए। लेकिन खालिस शहद होना निहायत जरुरी है। पुराने तथा सड़े-गल शहद से बच्चे को भारी नुकसान पहुँच सकता है। खालिस शहद न मिल सके तो जल का एनिमा दिया जा सकता है। जुलाब देने से एनिमा देना कहीं अच्छा है। यदि आंतों में सड़ाव होने के लक्षण दिखाई देते हों तो एनिमा के पानी में थोड़ा नीबू का रस भी मिलाया जा सकता है। छोटे बच्चों को एनिमा देने के लिए एक पाइन्ट (लगभग डेढ़ पाव) से अधिक पानी न होना चाहिए। जल का तापमान भी शरीर के तापमान से कुछ अधिक होना चाहिए।

जीर्ण रोगों में बच्चे के आमाशय (Abdomen) और यकृत (liver) की प्रतिदिन कुछ मिनट तक मालिश होनी चाहिए। इससे पित्त के निःसृत होने में सहायता मिलेगी और आँतों में इतनी ताकत आ जायगी जिससे कि वे कम से कम रोजाना दो बार मल को बाहर निकाल दें। इसके अलावा पाचन और समीकरण की शक्ति में भी वृद्धि होगी और इस प्रकार रोगी का शरीर रोग का प्रति-रोध करने में समर्थ हो जायगा। रात के समय पेड़ू पर गीली पट्टी बाँध कर सोना कब्ज या कोष्ठबद्धता का अचूक इलाज है। इसकी विधि यह है कि पेट और पीठ पर लगभग ६ इंच चौड़ा कपड़ा पानी में भिगो कर बाँध दिया जाय और उसके ऊपर सूखे फलालैन की पट्टी बांध दी जाय। बच्चे को कटि-स्नान भी बिना किसी प्रकार की आशंका के दिया जा सकता है। लेकिन कटि-स्नान (हिप बाथ) देने के पहले हमें यह अवश्य देख लेना चाहिए कि बच्चे का शरीर बिलकुल गरम है। और कटि-स्नान के बाद भी शुष्क घर्षण स्नान (सूखी मालिश) से उसके शरीर में सामान्य उष्णता (गरमी) उत्पन्न कर देनी चाहिए। कटि-स्नान के लिये प्रयोग में लाये जाने वाले जल का तापमान भी बहुत कम न होना चाहिए। शरीर के तापमान से कुछ डिगरी कम तापमान का जल बच्चे के लिए अत्यन्त उपयोगी होगा। यह कोई आवश्यक नहीं कि एक ही मामले में इन तमाम विधियों का प्रयोग किया जाय। इनमें से एक या दो विधियां यदि समुचित सावधानी के साथ काम में लाई जायँ तो इनका परिणाम रोगी के लिए बहुत ही सुखद होगा।

आंतों की सफाई हो जाने पर हमें बालक के रोम-कूपों को स्वच्छ कर देने, उन्हें खोल देने और शरीर की साधारण तौर से परिशुद्धि के लिए अपना ध्यान आकृष्ट करना चाहिए। बाल रोगों में इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए

सर्वोत्तम उपाय है 'ट्रंक पैक' (गरदन और कटि के बीच के भाग की पट्टी) का प्रयोग। यह 'ट्रंक पैक' गीले कपड़े पट्टी के ही समान हैं। इसमें दोनों हाथ और पैर बाहर रहते हैं। बच्चे के समूचे शरीर पर पट्टी देना सदा कठिन ही होता है। लेकिन इस पट्टी का प्रयोग बालक के शरीर पर आसानी से और बराबर किया जा सकता है। पट्टी के प्रयोग के समय बालक रोए-चिल्लाये नहीं, इसके लिए उसे बराबर गोद में लिए रहना चाहिए। यद्यपि बच्चे के हाथ और पैर खुले रहते हैं, उनपर पट्टी नहीं बांधी जाती, किन्तु उसके समूचे शरीर को, (गरदन तक) एक शाल से पूरी तौर से ढके रखना चाहिए। बच्चे पर पट्टी का प्रयोग करने के समय यह ध्यान रखना चाहिए कि 'ट्रंक पैक' के लिए जिस कपड़े को काम में लाया जाय वह बहुत पतला हो और अगर शरीर बहुत गरम नहीं है तो इसे खूब निचोड़ कर प्रायः सूखा कर लिया जाय। बच्चे के शरीर को ढकने के लिए कम्बल के बजाय शाल इस्तेमाल किया जाय। इस पैक से भी वही लाभ होता है जो कि गीली पट्टी से होता है। हलका वाष्प-स्नान (स्टीम बाथ) भी बच्चे के लिए लाभदायक होगा। लेकिन बच्चे के लिये स्टीम बाथ के बनिस्बत 'ट्रंक पैक' कहीं अधिक लाभदायक होता है।

हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि बच्चे के पेशाब खूब हो। इसके लिए बच्चे को प्रतिदिन पर्याप्त मात्रा में पानी पिलाना चाहिये। बुखार की हालत में बच्चे को हर घन्टे या आध घन्टे के बाद एक चम्मच पानी, उसमें कुछ बूंद नीबू का रस मिलाकर, पिलाना चाहिए। स्वास्थ्य की अवस्था में भी उसे एक बार से दूसरी बार के भोजन के बीच एक मतबें पानी अवश्य पिलाना चाहिए। लेकिन साधारण भोजन कराने के समय पानी उसे हरगिज न पिलाना चाहिए।

इन सब बिधियों के प्रयोग से बच्चे की शरीर-प्रणाली में एकत्र हुए विष अथवा विकार, जो कि समस्त रोगों के मूल कारण होते हैं, बाहर निकल जायंगे। मगर इसके साथ ही साथ हमें बच्चे के शरीर को नया करने और रोगों का निवारण करने वाले अवयवों की हिफाजत के लिये अवश्य प्रयत्न करना चाहिए। रोग उत्पन्न करने वाला विष इन अंगों को संकुचित बनाए रखता है। जब शरीर का संचित मल अथवा विकार रोगों से शरीर को सुरक्षित रखने वाली प्रणाली को बेकाबू या निस्तेज में कर देता है तो उसके फलस्वरूप शरीर में रोग उत्पन्न होना स्वाभाविक ही होता है। शरीर के समस्त अवयवों को सतेज बनाने के लिये ठण्डे स्नान से बढ़ कर कोई दूसरी विधि नहीं है।

बच्चों की बीमारियों में शीतल जल के सभी प्रकार के स्नानों में स्पंज-बाथ (गीले कपड़े से सारे शरीर को पोंछ देना) सर्वोत्तम है। इस स्नान के पहले सिर, मुख, और गरदन को मामूली तौर से ठंढा कर लेना चाहिए। तब बच्चे के समूचे शरीर को (गरदन पक) ढक देना चाहिए। इसके बाद एक समय में शरीर के केवल एक ही भाग को खोल कर उसे पोछना चाहिए। जल का तापमान सामान्य हो। इसके बाद एक मुलायम तौलिये से उसे पोंछ कर उस भाग को सुखा देना और फिर ढंक देना चाहिए। इसी प्रकार समूचे शरीर का, एक-एक अंग करके, घर्षण-स्नान होना चाहिए। बच्चे को प्रतिदिन कुछ मिनट के लिये कटि-स्नान (हिप बाथ) भी दिया जा सकता है। लेकिन हिप-बाथ देने पर भी समूचे शरीर का घर्षण-स्नान (Spong bath) छोड़ न देना चाहिए। प्रत्येक शीतल स्नान के पूर्व प्रति दिन कम से कम एक बार नियमित रूप से धूप स्नान भी होना चाहिए।

किन्तु बच्चे के उपचार के सम्बन्ध में सदैव बहुत ही सावधानी से काम लेना चाहिए यह हमेशा याद रखना चाहिए कि ठण्डे जल के प्रयोगों की बच्चों में बहुत मामूली ही प्रतिक्रिया होती है। ७ साल तक की अवस्था के बच्चों की त्वचा शीतल जलोपचार के बाद जल्द उष्ण (गरम) नहीं होती। इसलिये बच्चे के उपचार में सामान्य तापमान के जल को ही प्रयोग में लाना उचित होगा। इसके अलावा यह भी ध्यान रखना चाहिए शीतल जल का एकबारगी प्रयोग करके बच्चे को घबड़ा न दिया जाय। इसका प्रयोग क्रम-क्रम से ही होना चाहिए। प्रत्येक ठण्डे स्नान का क्रमिक प्रयोग उत्तम होगा। इसकी विधि यह है कि यदि बच्चे को ठण्डा स्नान कराना हो तो पहले सामान्य तापमान के जल (Tipid

water) का प्रयोग किया जाय और बाद में स्नान देने के समय उसमें ऊपर से ठण्ढा पानी डाल दिया जाय। इस प्रकार स्नान के पानी का तापमान घटाया जा सकता है। इसके अलावा यह भी आवश्यक है कि आरम्भ में ठण्ढे पानी का स्नान बहुत थोड़ी देर के लिए हो और स्नान के समय को प्रतिदिन क्रम क्रम से बढ़ाया जाय।

बच्चे का भोजन

बच्चे का भोजन भी बड़ा महत्वपूर्ण है। बच्चे का भोजन इस प्रकार का होना चाहिए जिससे कि उसके शरीर का निर्माण शुद्ध से शुद्ध तत्वों से हो और इसके साथ ही साथ शरीर के मल अथवा विकार का परिमार्जन तथा बहिष्करण भी हो जाया करे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये बच्चे का आहार सुपच, अनुत्तेजक, मुख्यतः क्षारमय (Alakaline) तथा खाद्योजों (Vitamins) और खनिज लवणों (mineral salts से परिपूर्ण होना चाहिए। इस दृष्टि से दूध, फल और शाकी-भाजी बच्चे के आहार के रूप में सर्वोत्तम है। माता के दूध में वे सभी तत्व विद्यमान रहते हैं जो शिशु के लिए आवश्यक होते हैं और साथ ही उस दूध में कुछ हद तक रोग-निवारण शक्ति भी मौजूद रहती है। यदि कारणवश कोई बच्चा अपनी माता का दूध पीने से वंचित हो जाय तो उसके लिये दूध पिलाने वाली दाई रख लेनी चाहिए और दाई न मिलने पर ही दूध पिलाने के कृतिम साधनों का उपयोग करना चाहिए। यह तो प्रायः सभी जानते हैं कि बच्चे के लिए माता के दूध के अभाव की पूर्ति गाय के दूध से ही हो सकती है।

बच्चा अपनी माता का दूध पीता हो या कृत्रिम साधनों (बोतल आदि) के द्वारा किन्तु यह आवश्यक है कि तीसरे महीने से उसे दूध के साथ साथ थोड़ा फलों का रस भी पिलाना चाहिए। नारंगी, टमाटर, अंगूर, और सेब का रस प्रतिदिन ३ से ६ बार तक दिया जा सकता है। पांचवें महीने से उसे चुकन्दर, गाजर, पालक तथा अन्य हरी-ताजी शाक भाजियों का शोरबा (सूप) देना चाहिए और क्रमशः उसे फल और शाक भाजियां भी देनी चाहिए। ज्वर की हालत में छोटे बच्चों को माता का दूध पिलाना चाहिए। अपेक्षाकृत बड़े बच्चों को दूध, मक्खन निकाला हुआ दूध और 'माल्ट' के सहित 'बार्ली वाटर' आहार के रूप में विशेष रूप से देना चाहिए। लेकिन चीनी का प्रयोग किसी भी हालत में न करना चाहिए। बुखार रहने की अवस्था में छोटे-छोटे बच्चों में आंतों की गड़बड़ी पैदा होने की अधिक संभावना रहती है। अगर बच्चों को चीनी या शक्कर न दिया जाय या बहुत कम दिया जाय तो अपचन की कोई सम्भावना न हो सकेगी।

लेकिन अगर कभी बुखार के साथ साथ या स्वतंत्र रूप से पतले दस्त (Diarrhea) आने लगें तो सभी प्रकार का भोजन १२ से २४ घन्टे तक के लिए बन्द कर देना चाहिए। बार-बार उपवास कराने की या लम्बे अर्से तक आवश्यकता से कम भोजन कराने के बनिस्बत एक बार इस प्रकार का उपवास करा देना अच्छा है। तीव्र डायरिया की हालत में, चाहे वह किसी भी प्रकार हो, दूध, फल, और शाक-भाजियां देना फौरन बन्द कर देना चाहिए और जब तक खतरे की स्थिति टल न जाय तब तक सिर्फ फाड़ा हुआ दूध का पानी ही बच्चे को देना चाहिए। स्तनपायी बच्चों को लम्बे अर्से तक उपवास कराने के बाद केवल माता का दूध ही पीने को देना चाहिए।

जीर्ण रोगों में उपचार आरम्भ करने पर पहले कुछ दिनों तक बच्चे को आधे भोजन पर रखना चाहिए, उसके बाद भोजन का परिमाण क्रमशः बढ़ाया जाय। प्राकृतिक चिकित्सा में कोई दवा देने की आवश्यकता नहीं, लेकिन इस प्रकार का पचन शुद्ध (Aseptic) आहार शरीर में दवा का-सा काम करता है।

फादर नीप—उनकी चिकित्सा-पद्धति

श्री पुरुषोत्तमदास मोदी

प्राकृतिक चिकित्सकों में फादर नीप का स्थान बड़ा ही महत्वपूर्ण रहा है। वे एक प्रसिद्ध जल-चिकित्सक थे। उन्होंने जल-चिकित्सा द्वारा स्वयं नव जीवन प्राप्त किया और दूसरों को मरने से बचाया। यहां संक्षेप में हम उनके जीवन का परिचय देंगे और उनकी चिकित्सा पद्धति का वर्णन करेंगे जो सर्वथा जलोपचार है।

फादर नीप का जन्म १७ मई सन् १८२४ में एक बुनकर परिवार में बवेरिया के स्टेफन स्वायड नामक गांव में हुआ था। बचपन से ही इनकी इच्छा पादरी बनने की थी और बुद्धि भी उनकी प्रखर थी। लेकिन गरीबी के कारण इनकी शिक्षा का उचित प्रबंध न हो सका और इस लिए अपनी आत्मा का हनन कर इन्हें बुनकरी का पुश्तैनी धंधा अपनाना पड़ा। लेकिन आगे चलकर ये एक रोमन कैथलिक चर्च के पादरी भी होगये।

इक्कीस वर्ष की अवस्था में इन्हों ने अपने पाकेट में मुसाफिरी का पास डाला और घर के निकल पड़े। इनके मानस-पट पर तो अंकित था पादिरी बनने के लिए अध्ययन करने की उत्कट अभिलाषा। बुनकर तो था इनका वंश मात्र इसलिए किसी ऐसे सज्जन की शागिर्दी ढूढ़ने में लग गये जो इनको अध्ययन के मार्ग पर ला सके। इसी समय रेवरेंड चैपलेन मर्कले नाम के एक सज्जन से भेंट हो गयी। उन्हों ने दो वर्ष तक इन्हें बड़ी मिहनत से पढ़ाया और दूसरा वर्ष बीतते ही इन्हें हाई स्कूल में भरती होने योग्य बना दिया। हाई स्कूल की पाँच वर्षों की कठिन पढ़ाई ने इनको कमजोर कर दिया और इससे इनका स्वास्थ्य गिर गया। तब इनके पिता इन्हें प्रसिद्ध डाक्टरा के पास ले गये लेकिन कोई लाभ न हुआ। उस समय फादर नीप के मकान मालिक ने नीप के पिता से कहा था—बुनकर। मुझे उम्मीद नहीं यह विद्यार्थी फिर घर लौटेगा।"

ऐसे समय सौ-भाग्य-बश फादर नीप को एक ऐसी पुस्तक मिल गई जिसमें जल-चिकित्सा की चर्चा थी। उसके लेखक थे डाक्टर एस० हान। न जाने क्यों उसके दिल ने उसे आजमाने को प्रेरित किया और ज्यों ज्यों लाभ होता गया, उत्साह भी बढ़ता गया। इस तरह उन्होंने पूर्ण सफलता प्राप्त की और खोई हुई जिन्दगी को फिर से हासिल की। जीवन-प्राप्ति की इस नई आशा ने उनके मृत शरीर में बिजली दौड़ायी और उनके भग्न हृदय में उत्साह का प्रकाश फैल गया। फादर नीप के लिए वह पुस्तक अंधे की लाठी साबित हुई। इन्हीं के रोग के रोगी ने इन्हें लाभ होते देख इन्हीं की तरह चिकित्सा शुरू कर दी और दोनों में पहले स्वास्थ्य लाभ करने की होड़ सी लग गई। फादर नीप ने तब से पादरी का काम आरंभ किया और तीस वर्षों तक करते रहे।

यह है संक्षेप में फादर नीप की जीवन-कहानी। अब उनके जलोपचार अथवा चिकित्सा-पद्धति की ओर दृष्टिपात कीजिए। आस्ट्रि साइलीशिया के ग्राहसबर्ज निवासी विसेंट प्रेसनिज के ठंडे जल के प्रयोगों पर इनका सबसे अधिक विश्वास था। ये वोरिशोफेन नामक स्थान में चिकित्सा चलाते थे। इनकी भी चिकित्सा के साधन प्रकृति के उपादन जल वायु, धूप एवं भोजन-सुधार थे। यद्यपि बहुता ने इनकी इस पद्धति का विरोध किया लेकिन इनकी चिकित्सा से प्राप्त लाभ में उस विरोध को क्षण भर में धराशायी कर देने की जबर्दस्त शक्ति थी।

गरीब क्या अमीर दोनों को इन्हों ने पादरी जीवन के गंभीर एवं मधुरता पूर्ण शब्दों में राय की और उन्होंने स्वास्थ्य लाभ किया। इनकी सफलता का सबसे बड़ा कारण इनके गुण और मृदु व्यवहार भी हैं।

नीप का विश्वास था कि रक्त में दूषित द्रव्य के पहुंचने से अथवा शरीर में रक्त के स्वाभाविक प्रवाह में किसी प्रकार बाधा पड़ने से रोग उत्पन्न होते है और वे सभी रोग जलोपचार द्वारा दूर किये जा सकते हैं। उनके जलोपचार में जल का प्रयोग, पट्टी गरम कपड़े और बिना गरम कपड़े के बन्धन के साथ भाप-स्नान और फुहारे का प्रयोग था। उनका कहना है कि ठंडा जल गरम जल

से अत्यधिक लाभ दायक है। उनके जलोपचार की सब से बड़ी विशेषता तो यह है कि उनका प्रयोग बहुत थोड़े समय तक चलता था। फुहारे के साथ इनका पहला नियम था—ठंडा और जरा देर।

अब फादर नीप डाक्टर नीप हो गये। उनके पास तरह तरह के रोगी आने लगे। वे सभी आश्चर्य में डूब इनके जलोपचार एवं व्यवहार को देख और स्वास्थ्य लाभ कर चले जाते थे। उनका सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह होता था कि फादर नीप बिना किसी आले आदि के प्रयोग के वे रोगी के रोग को जान लेते थे क्यों कि उनकी दृष्टि इतनी तीव्र थी और देखते देखते इतनी अनुभव शील हो गई थीं कि उनको रोग जानने में कोई देर न लगती थी। फिर उनका तो विश्वास ही था कि सभी रोग रक्त में दूषित द्रव्य पहुंचने से अथवा शरीर में रक्त के स्वाभाविक प्रवाह में किसी प्रकार बाधा पड़ने से ही रोग उत्पन्न होते हैं। उनके पास बहुत तरह के रोगी आते थे। किसी दुबले और पीले रोगी को देखकर वे तुरन्त इस निष्कर्ष पर पहुंचते थे कि रोगी का रक्त बहुत घटिया तरह का और खराब है एवं रोगी के शरीर को आवश्यक गर्मी नहीं मिलती। ऐसे रोगी के लिये वे उसकी भूख बढ़ाने और तीव्र रक्त संचालन के लिए शरीर को विभिन्न अंगों को धोने और नहलाने की राय देते थे। पट्टी या विशेष स्नान उनकी दृष्टि में ऐसे रोगी के लिये व्यर्थ थे। ऐसे रोगी के शरीर की गरमी पर उनका ध्यान विशेष रहता था। यदि रोगी के शरीर की गरमी बहुत ही कम हुई तो उन अंगों पर जिनपर ठंडे पानी का प्रयोग करना होता था पहले उसे भाप आदि के द्वारा गरम कर लेते थे। फल यह होता था कि कुछ ही दिनों में रोगी की भूख बढ़ जाती थी और साथ ही रक्त का परिमाण और संचालन की गति भी पहले से अधिक तीव्र हो जाती थी जिससे शरीर के सारे अवयव अत्यधिक क्रियाशील हो जाते थे।

मोटे आदमी की चिकित्सा उन्हें बड़ी सावधानी पूर्वक करनी पड़ती थी। क्यों कि उनके शरीर में चर्बी की अधिकता के कारण उनका हृदय भी कुछ न कुछ कमजोर हो ही जाता है। ऐसे रोगियों के लिए वे मल निकालने वाले अंगों में उनकी क्रिया एवं गति बढ़ाने के लिए शक्ति लाते थे। उस समय के और सभी डाक्टर हृदय-रोग में जल प्रयोग के विरुद्ध थे। लेकिन फादर नीप के राय उन सब के विपरीत थी। वे हृदय रोग के रोगियों को घुटने, जाँघ या पीठ धोने की राय देते थे जिससे रक्त कमजोर हृदय से हटकर शरीर के निचले भागों की ओर गतिमान हो जाय। इससे शरीर के सभी अङ्ग समान रूप से गर्म हो जाते थे। फलतः रोगी की जीवन शक्ति भी बढ़ती जाती थी जिससे आगे चलकर ऊपरी भाग और सारे शरीर का स्नान कराना सम्भव हो जाता था।

कितने ही रोगी किसी न किसी अंश में स्नायु दौर्बल्य से पीड़ित होते—उन सबको वे पहले कमरे में टहलने और धूप होने पर घास पर टहलने की राय देते थे जिससे पैरों में रक्त का संचालन सजग हो जाय और आगे के जल के कठिन प्रयोगों में सुविधा हो। इन स्नायु सम्बन्धी रोगों में कभी कभी दर्द या ऐंठन पैदा होती है। इनसे घबड़ाने की जरूरत नहीं। ये तो रोग निवारक उभाड़ हैं जिनसे गरम जल के प्रयोग से बड़ी आसानी से राहत पाई जा सकती है। कभी कभी तो ये उभाड़ शरीर की मल निष्कासन की क्रियाओं के तीव्र या रुक जाने के रूप में प्रगट होते हैं। यह रोगी के निश्चय रूप से स्वस्थ हो जाने की सूचना है। क्योंकि जीर्ण रोगों में यदि ये उपद्रव न हों तो समझना चाहिए कि रोगी के स्वस्थ होने में संदेह है। कोई भी पुरानी चीज मिटने के पहले कुछ न कुछ हलचल तो मचाती ही है। उसी तरह ये रोगों के उभाड़ भी हैं। फादर नीप के चिकित्सा-क्रम को चलाने की यही रीति है।

फादर नीप की चिकित्सा-पद्धति के प्रधान नियम इस प्रकार हैं—प्रयोग जितने ही समय के लिए होगा वह उतना ही सफल होगा। पानी जितना ही अधिक ठंडा हो प्रयोग उतने ही कम समय तक किया जाय। क्योंकि जल के ठंडक के अनुसार ही शरीर पर उसकी प्रतिक्रिया भी कम और बेशी होती है। लेकिन ठंडे पानी का प्रयोग करते समय इस बात का ध्यान अवश्य रहे कि रोगी के शरीर में उचित मात्रा में गरमी है या नहीं। न हो तो पहले गर्म पानी का प्रयोग करने के बाद ठंडे पानी का प्रयोग किया जाय।

जल प्रयोग के बाद उसे सुखाने की जरूरत नहीं। तुरन्त हलके कपड़े पहन कर कसरत करने लग जाना चाहिए और फिर उसे धीरे धीरे कम करते हुए बन्द करना चाहिए। यदि रोगी बहुत कमजोर हो और कसरत न कर सके तो उसे ठंडे जल के प्रयोग के तुरन्त बाद बिस्तर में लिटाकर कंबल आदि से ढक देना चाहिए।

शरीर को स्वस्थ एवं रोग-मुक्त रखने का सबसे बड़ा साधन शरीर को कठोर एवं सहनशील बनाना है। फादर नीप का सबसे बड़ा और प्रथम यही सिद्धान्त है जिस पर उनका सारा जलोपचार निर्भर है।

आज की पीढ़ी ने, जिसने मनुष्य के ऐशो-आराम के लिए बड़े बड़े आविष्कार किये हैं और सभ्य बनने का दावा करते हैं, शरीर की आवश्यक कठोरता में कमी कर दी है और शरीर में हर प्रकार के रोगों को बढ़ने-पनपने के लिए विषैली खाद उत्पन्न कर ली है। ऋतु में जरा-सा परिवर्तन हुआ नहीं कि सर्दी या जुकाम हो गया। ठंडी जगह में से आकर तुरन्त गरम कमरे में गये नहीं कि उनका गला बैठ गया और आवाज भारी पड़ गई।

गर्मियों में खस की टट्टी से बाहर निकले नहीं कि लू लग गई। ऐसी तो हो गई है आज की पीढ़ी। इतना ही नहीं बड़े आदमियों के घरानों के स्त्री पुरुषों के हाथ इतने नाजुक होते हैं कि उनमें जरा से काम से फफोले पड़ जाते हैं। "देखियेगा कहीं आपके कमर लचक न जाय" यह भी तो उसी कोमलता को प्रगट करता है जो आज की पीढ़ी ने घोल घोल कर पी रखी है। इन सबको देखने से यह पता चलता है कि लोगों के शरीर के अंग-प्रत्यंग में रोग सोये से रहते हैं, और उन्हें जरा भी जगाने वाली चीज मिली कि वे बाहर निकल आये। उनके शरीर के नाजुक होने के साथ साथ उनके दिल भी नाजुक और मुर्दा हो गये हैं। ऐसे लोगों को देखकर यह कल्पना करना कठिन है कि पहले मनुष्य नंगे बदन रहता था, धूप, वायु जल सब में स्वच्छन्दता पूर्वक विचरता था, हर मौसम में रोज नहीं नहाता था, इतने पर भी पूर्ण स्वस्थ एवं शक्तिवान होता था और बड़े बड़े जानवरों को मारता था।

हां, तो यदि हमें अपने शरीर को कठोर और सहन शील बनाना है तो इसे बचपन से ही शुरू करें। पेड़ जब पौधे के रूप में होते हैं उन्हें जिधर को मोड़ दिया जाता है उधर ही को मुड़ जाते हैं। इस दृष्टि को सामने रखकर फादर नीप जल के अपने प्रत्येक प्रयोग के साथ शरीर के अंग प्रत्यंग और त्वचा को कठोर बनाने के लिए कुछ बहुत सीधे सादे और नितांत निरापद उपाय बताते थे। उनमें से कुछ उपायों का हम विस्तृत रूप से वर्णन करेंगे।

१—नंगे पांव टहलना।

२—भीगी घास पर टहलना।

३—गीले पत्थरों पर टहलना।

४—तुरन्त की गिरी बरफ पर टहलना।

५—ठंडे पानी में टहलना।

६—हाथ-पैर को ठंडे पानी से धोना।

७—सारे शरीर पर या केवल पैरों पर पानी डालना।

शरीर को दृढ़ बनाने की इन सरल विधियों को देख कर कितने लोग फादर नीप पर हंसेंगे और उनकी बातों को मूर्खतापूर्ण कहेंगे। लेकिन ऐसा करना गलत होगा। इस बात से डरना कि इन प्रयोगों से सर्दी जुकाम, गले का दर्द और गठिया आदि हो जायंगे सो गलत होगा। इन विधियों में ऐसे नाजुक शहरी स्त्री-पुरुषों का भी ध्यान रक्खा गया है जिन्होंने अपना जीवन अत्यंत अप्राकृतिक बना लिया है, जिनके शरीर को ताजी हवा एवं सूर्य-किरणों का स्पर्श भी नहीं होता और उनके पैरों का स्पर्श धरती माता की कोमल धूल से नहीं होता। जिस पर धरती माता के कोमल एवं दृढ़ करों के स्पर्श नहीं हुए उसको हम अभागा ही कहेंगे। बड़े बड़े शहरों विशेषतः अमेरिका और विलायत में स्त्री-पुरुषों को जन्म से मृत्यु पर्यन्त धरती माता का स्पर्श नहीं होने पाता।

बच्चे ने जन्म लिया नहीं कि नर्स ने अपने हाथों में लोक लिया। एक वर्ष तक पलने में झूलते रहे या मां की गोद में। जरा बड़े हुए तो पैरों में मोजे और जूते डाल दिये गये और शरीर को मोटे कपड़ों से ढंक दिया गया। हमेशा उनके पैरों में चप्पल रहे। सोते वक्त उतारा और उठते ही पैरों में चप्पल डाल ली। नहाने गये तो बेटिंग स्लीपर पहने हैं वहां भी धरती माता का स्पर्श नहीं। मरे तो लोहे की संदूक में रखकर धरती माता की छाती में गाड़ दिए गये। लेकिन जीवित रहते इन्होंने यह न सोचा कि जिस माता

की गोद में अंत में हमको जाना है उससे पहले ही सम्पर्क क्या न रखें।

पहले पहल फर्श पर दिन के किसी समय टहल कर शुरू करें और फिर धीरे धीरे सबेरे प्रातः कालीन धूप में नंगे पांव मैदान में टहलने की आदत डालें। इस प्रयोग के शुरू करने के बाद ही पता चल जायगा कि पैरों में रक्त की गति बढ़ गई है, ताजी हवा, प्रकाश और गरमी, जिनसे वे अब तक वंचित रहे हैं, उन्हें लाभ पहुंचा रहा है और उनकी मुर्दा जिन्दगी में जान आ रही है। उन्हें जल्द ही इस बात का पता चल जायगा कि जिनके पाँव हमेशा ठंडे रहते हैं उनके लिए नंगे पैर टहलने से बढ़कर कोई दूसरा पुरअसर इलाज नहीं है। लेकिन इस बात को देखकर दुःख होता है कि आज भी बड़े बड़े प्राकृतिक चिकित्सक अपने आरोग्य मंदिरों में इसको विशेष महत्व नहीं देते।

जमीन पर नंगे पांव टहलने के बनिस्बत ओस से भीगी हुई या पानी से तर घास पर टहलना अधिक लाभदायक है। जिनके पैरों में बेवाइयां फट जाती हैं उनके लिए ओस से भीगी घास पर टहलना बहुत ही लाभदायक है। जिनकी आँखें कमजोर हैं उन्हें भी ओस से भीगी घास पर टहलना चाहिए। इससे खून आंखों की ओर दौड़ता है और उनको ताजगी प्रदान करता है। जिनके सिर में खून इकट्ठा हो जाता है, सिर दर्द करता रहता है, अथवा जिनके गले में किसी प्रकार का रोग हो गया है, यदि वे इन दो में से किसी उपाय का सुविधानुसार प्रयोग करें तो फादर नीप के कथनानुसार उन्हें उससे प्राप्त लाभ की प्रशंसा करने के लिए मुश्किल से शब्द मिलेंगे। इस प्रकार पन्द्रह मिनट टहलना काफी होगा। लेकिन यह रोगी को टहलने की भूख को इतना जागृत कर देती है कि इनकी इच्छा इससे दूने समय तक टहलने के लिए हो जाती है।

पहाड़ पर रहने वाले लोग तुरन्त की गिरी हुई ताजी बर्फ का बहुत बढ़िया प्रयोग कर सकते हैं। तुरन्त की गिरी हुई बर्फ पर एक या दो मिनट दौड़ें। पैर गरमी से जलने लगेंगे और सारा रक्त पैर की ओर खिंच आवेगा। बच्चों को बर्फ पर खेलने में कितना मजा आता है इसको तो आपने देखा ही होगा। इससे उनको कभी भी सर्दी या जुकाम नहीं होता। पैर की बेवाई फटने और दांत में दर्द होने पर भी बर्फ पर दौड़ना एक बढ़िया इलाज है।

पिंडली भर गहरे पानी में टहलना भी शरीर को दृढ़ बनाने का श्रेष्ठ साधन है। सारे शरीर पर तो इसका असर होता ही है लेकिन मसाने पर इसका विशेष प्रभाव होता है। बहुत देर के रुके हुए पेशाब और गुर्दे के अनेक रोगों में भी यह क्रिया बहुत ही लाभदायक साबित हुई है।

पाचन-प्रणाली पर भी इस क्रिया का विशेष प्रभाव पड़ता है। इससे अधोवायु शान्त होती है, छाती का भारीपन दूर होता है और श्वास की गति भी ठीक होती है। पहले पहल इस क्रिया को एक मिनट से शुरू करें फिर उसे धीरे धीरे पांच छः मिनट तक बढ़ा लेना चाहिए। पानी जितना ही अधिक ठंडा होगा लाभ भी उतना ही अधिक होगा। कमजोर रोगी पहले साधारण ठंडे पानी में इस क्रिया को शुरू कर सकते हैं लेकिन आगे चल कर उन्हें भी धीरे धीरे पानी की ठंडक बढ़ानी चाहिए। इसके बाद पानी से निकल कर हाथों को कंधों तक डुबोया भी जा सकता है। किसी रोग में तो इन दोनों क्रियाओं को साथ करने की जरूरत होती है। इसके लिये टब में खड़े होकर हाथों को टेबुल या और किसी ऊंचे स्थान पर रखे हुए पानी से भरे बर्तन में रखना चाहिए।

घुटनों तक पैरों पर पानी डालने की तो बहुत लोगों की आदत है विशेषतः देहात में रहने वालों को और यह शरीर को दृढ़ बनाने की उत्तम विधि भी है। बहुत ठंडी जगह के रहने वालों को तो इसे नित्य न करके हर तीसरे-चौथे करना चाहिए। जिनके पैर घुटनों तक ठंडे रहते हैं उनके लिए तो यह बहुत ही लाभदायक है। इस क्रिया का मुख्य उद्देश्य है खाली धमनियों में रक्त भरना और ऊर्ध्व भाग की ओर के व्यर्थ जमे रक्त को नीचे की ओर खींचना।

शरीर को दृढ़ बनाने की ये क्रियाएं करनी तो बराबर चाहिए लेकिन जाड़ों में इनका समय कम कर देना चाहिए। रक्ताभाव और स्नायु दौर्बल्य से पीड़ित रोगियों के लिए

(शेष पृष्ट ५० पर)

स्नान से लाभ और उसके प्रकार

श्री महेन्द्रकुमार 'मानव', एम० ए०

बाथ रूम के दरवाजे पर थाप पड़ी। मैं भीतर था। बाहर से मित्र के शब्द स्पष्ट कान में नहीं पड़ रहे थे। शायद कह रहा था—"कितने घण्टे से नहा रहे हो। अब तो निकलो दूसरों की कुछ चिन्ता किया करो। मुझे तो नहाने में पांच मिनट भी नहीं लगते। तुम बाथरूम में न जाने क्या किया करते हो!" मैंने इतना तो अच्छी तरह समझ लिया कि खतरे की घण्टी बज गई। मैंने भीतर से उत्तर दिया—'बस दस मिनट और फिर आप शौक से नहाइये।' मित्र बाहर खड़े झुंझलाते रहे लेकिन स्नान पूरा किए बगैर कैसे निकल आऊं क्योंकि अर्द्ध स्नान अस्नान के बराबर है। प्रयाग के ५ वर्ष के छात्र जीवन में मेरे साथ यही बात रही। साथियों की शिकायत थी कि मुझको बाथरूम में बड़ी देर लगती है। बम्बई में तो इस शिकायत ने उग्र रूप धारण कर लिया है क्योंकि हमारे कमरे में आठ विद्यार्थी हैं और इस साम्यवाद के युग में पूंजीवादी तरीके उनको पसन्द नहीं। इसलिए सब ने मिलकर बाथ रूम के समय को भी विभक्त कर लिया है। भाग्य से आधा घण्टे का समय मेरे हिस्से में भी पड़ गया है।

भारत के प्राचीन ऋषियों ने स्नान की महत्ता को समझा था और इसीलिये उन्होंने स्नान पर इतना जोर दिया है। गंगा-स्नान की महिमा से तो मुक्ति तक मिलती है। भारत में लाखों ऐसे तीर्थ स्थान हैं जहां स्नानादि का विधान किया है। यह जरूर है कि इन सब क्रिया-काण्डों को धर्म की चादर उढ़ा दी गई है जिससे कि धर्म-भीरु जनता उन क्रियाओं को करना अपना कर्तव्य समझती रहे। प्रत्येक व्रतोद्यापन, पूजन विधान पर्व-यात्रादि में स्नान का पहले विधान किया गया है। आज उसी आर्य देश के लोग अरब की संस्कृति के संसर्ग से जुमा के जुमा नहाने लग गए हैं। स्नान का कोई महत्व ही नहीं रह गया। लोग तीर्थों में जाकर डुबकी मारने में स्वधर्म की संप्राप्ति समझने लगे चाहे उस डुबकी से उनका सिर तक न भीगे। घरों में स्त्रियों ने एक लोटा पानी डाल कर स्नान विधि को संपूर्ण करने का नया तरीका निकाला। व्यापारी लोगों को भी अपनी कार्य-व्यस्तता के कारण और दूसरी ओर धर्म के भूत के भय के कारण दो चक्कियों के बीच अपने को पीसना पड़ा और उनका स्नान भी स्त्रियों के स्नान से कोई अच्छी दशा में नहीं है। वाह री धर्म की विडम्बना! पता नहीं क्यों भारत में भविष्य को भुलाकर केवल भवत् की भावना का भूत सवार हो गया है। धनी से धनी आदमी भी एक खुली जगह के खुले मकान में कुछ अधिक खर्च करके रहना पसन्द नहीं करेगा वह शहर के बीच गन्दी गलियों की दूषित वायु को सेवन करना अधिक पसन्द करेगा। लेकिन ज़रा सी बीमारी हुई कि डाक्टर-वैद्यों को सर्वस्व दान करने के लिए तैयार हो जायगा। उस समय उसे रुपये पैसे का मोह नहीं सताएगा लेकिन मकान के किराए के सम्बन्ध में पूरी कंजूसी से काम लेगा। यही हाल स्नान का है। रोज नहाने में कुछ अधिक समय देना पसन्द नहीं करेगा लेकिन बीमार पड़ने पर साल के साल नष्ट करने में उसे दुःख नहीं होगा!

कुछ दिन पहले मैं मारवाड़ गया था। वहां देखा कि वह के स्त्री पुरुष २-२, ३-३ महीने स्नान नहीं करते। स्त्रियों के हाथों पर मैल की तह जमी रहती है और उन्हीं हाथों से वे घर का सब काम करती रहती हैं। माना कि वहां पानी की कमी है लेकिन लोगों को यह समझ लेना चाहिये कि जिस तरह पानी पीना जरूरी है उसी तरह पानी से स्नान करना भी जरूरी है।

पाठकों से व्यक्तिगत विवेचना के लिये क्षमा मांगते हुए मैं निम्न लिखित पंक्तियाँ लिखना चाहता हूँ।

मेरी तीन बार स्नान करने की आदत है। पहली बार तो जाकर सिर्फ सिर से लोटे ढालता हूँ फिर गीले शरीर में साबुन लगाता हूँ तत्पश्चात् शरीर को बिना मले ही दूसरी बार पानी डालकर साबुन को धो डालता हूँ। साबुन को धोने

के बाद मुख्य स्नान शुरू होता है। इस बार शरीर के अंगों पर थोड़ा थोड़ा पानी लगाकर उन उन अंगों को मलता हूँ और मैल की बातियां छूट कर गिरने लगती हैं और तीसरी बार, अन्तिम स्नान कर लेता हूँ तथा एक मोटे तौलिया से देह पोंछ लेता हूँ। अक्सर मैं नहाने के बाद शरीर धूप में ही सुखा लिया करता हूँ। बहुत से लोग साबुन लगा कर शरीर पर दो चार हाथ फेर कर नहा लेते हैं उससे न तो साबुन ही अच्छी तरह छूटता है और न मैल ही निकलती है। स्नान करने पर मुझे मालूम होने लगता है जैसे मैंने बहुत व्यायाम कर लिया है कोई कड़ा परिश्रम करके निकला हूँ। और मेरी राय में तो स्नान ही सर्वोत्तम व्यायाम है, अगर उसको उस दृष्टि से देखा जाय। स्नान के बाद तुरन्त ही क्षुधा सताने लगती है। इसका कारण शायद यह है कि ठण्डे पानी से स्नान करने से शरीर की बंटी हुई गर्मी भीतर एक जगह जमा हो जाती है और उदराग्नि के रूप में परिणत हो जाती है।

नहाने के बाद एक नई चेतना, एक नई स्फूर्ति का अनुभव होने लगता है। सब कामों में दिलचस्पी महसूस होने लगती है। ताजगी से बदन भर जाता है। जिस दिन नहीं नहाता हूँ उस दिन भोजन की ओर विशेष रुचि नहीं रहती। शरीर पर मुर्दनी सी छाई रहती है। तबियत भारी हो जाती है। सिर दुखने लगता है। उत्साह मारा जाता है। करीब करीब सभी का यही अनुभव है। हां, कुछ लोग न नहाने के ही आदी हो जाते हैं और मुर्दनी के बीच जीते जीते उनको उसके अस्तित्व का भी पता नहीं लगता।

स्नान के सम्बन्ध में मुझसे जो भूलें हुई हैं उनको भी पाठकों की सावधानी के लिए लिखे देता हूँ। जाड़े के दिन थे। मैं सुबह ५ बजे उठकर टट्टी दातुन से फरागत होकर एक पैरिया पर स्थित हनुमान जी के मन्दिर जाता। वहाँ पर कुछ व्यायाम करता और दौड़ते दौड़ते घर आकर कुंए पर स्नान करता। कुछ दिन तो यह क्रम चला लेकिन एक दिन ऐसी ठण्ड लगी कि महीनों पलंग पर पड़ा रहना पड़ा। इसलिए व्यायाम करने के बाद, भोजन करने के बाद और कुवेला में स्नान न करने का ध्यान रखना चाहिए।

दूसरे जब मैं प्रयाग में शुरू शुरू में आया था मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं था और मैं कमजोर भी बहुत हो गया था लेकिन तब भी पौन घंटे तक नहाता रहता था। उतना पानी तो मैं ओढ़ नहीं पाता था परिणाम यह होता था कि नहाने के बाद तबियत मुरझाने लगती थी। दिन भर थकान महसूस होती रहती थी। पलंग पर पड़े रहने की तबियत होती थ किसी काम में जी नहीं लगता था। इसलिए अपनी शक्ति पर भी ध्यान रखना चाहिए। उसके बाहर काम करने से भी हानि होने की संभावना रहती है।

हमारे यहाँ रोगी को जल और वायु से बचाने की कोशिश की जाती है। कमरे की सब खिड़कियाँ बन्द कर दी जाती हैं जिससे न तो स्वच्छ वायु ही मिलती है और न प्रकाश ही आता है। परन्तु मेरे नगर में एक अमेरिकन डाक्टर हल थीं। उनको मैंने न्यूमोनिया के रोगियों तक को नहलाते देखा है। इसलिए स्वच्छता का सदैव ध्यान रखना चाहिए। यह बात समझ लेना चाहिए कि स्वच्छता और शृंगार में उतना ही अन्तर है जितना कि Necessity आवश्यकता और Luxury (विलासित) में। शरीर को स्वच्छ रखने में आधा घण्टा खर्च करने के माने यह नहीं होता कि हम वह समय शृंगार करने में खर्च कर रहे हैं। साधारणतः स्त्रियाँ शृंगार प्रिय होती हैं लेकिन मैंने ऐसी बहुत सी सीधी बहुओं को भी देखा है जो शरीर धोने में अगर १५ मिनट खर्च करें तो उनको सास की घुड़कियाँ सहनी पड़ती हैं। 'किसके लिए देह चमका रही है ? डायन !' जब हमारी जननियाँ ही अपने कर्तव्य को भूल गईं तो उनकी सन्तान को क्या दोष दिया जाय ?

आज भारतवासी अपने प्राचीन ऋषियों की शिक्षा को भूल गए हैं और बाद के वैराग्य के आन्दोलन के प्रभाव में आकर वे अपने शरीर के प्रति कर्तव्य को भी भूल गए हैं। मैं तो समझता हूँ कि आज उन धर्म-ग्रन्थों की जरूरत नहीं है जिनमें शरीर के प्रति उपेक्षा करना सिखाया गया है, जिनमें लिखा है शरीर को धोना भी नहीं चाहिए अघोरी बना रहना चाहिए। शरीर तो मल-गृह है, उसकी कभी परवाह नहीं करना चाहिए। यह योग नहीं है न वैराग्य, केवल ढोंग है। जिस साधु का शरीर स्वच्छ नहीं है उसका मन क्या निर्मल होगा ? मन शुद्ध रखने के लिए शरीर को शुद्ध रखना आवश्यक है। देह साफ तो दिल साफ वाले सिद्धान्त को मानने वाला हूँ मैं। (शेष पृष्ठ ४८ पर)

ठंडे पानी की पट्टी की उपयोगिता

श्री हीरालाल (आरोग्य मन्दिर, गोरखपुर)

ज्ञानवश हम लोग बहुत सी उपयोगी चीजों से दूर रहते हैं यद्यपि उनको करने पर वे बहुत ही उपयोगी तथा आवश्यक सिद्ध होती हैं।

हमारे देश में प्रतिवर्ष दवा, लोशन, मरहम, टिकिया आदि पर हजारों रुपया खर्च होता है लेकिन स्वास्थ्य की दृष्टि से उनका तनिक भी महत्व नहीं है। हमारे लिए सबसे सीधा बिना पैसे का और उत्तम उपचार है 'पानी'; जिसे हम पश्चिमी सभ्यता के चक्कर में पड़कर छोड़े हुए हैं। पानी से भीतरी बाहरी दोनों प्रकार की सफाई होती है।

अपने घाव को साफ रखने और मिटाने के लिए जंगली जानवर जल में स्नान करते हैं। घायल हिरन बहते हुए झरनों में राहत पाने के लिए घंटों खड़ा रहता है। इसी प्रकार मनुष्य के भी बड़े बड़े भयंकर घाव और अन्य रोग नष्ट हो सकते हैं। लेकिन जल की महिमा न जानने के कारण उसे इस पर विश्वास ही नहीं होता। वह सोचता है कि जल जैसी मामूली, बिना कौड़ी की चीज कीमती दवाओं के मुकाबिले में क्या काम करेगी?

अमेरिका के एक बहुत बड़े प्राकृतिक चिकित्सक का कहना है—

सब रोगों की कोई भी एक रामबाण दवा नहीं हो सकती, पर यदि कोई उपाय सभी रोगों में लाभ कर सकता है तो वह है जल का उचित प्रयोग। सचमुच यदि उचित रीति से ठंडे पानी का प्रयोग किया जाय तो इससे बढ़कर कई दूसरा उपचार नहीं है।

पानी की उपचार-शक्ति बहुत ही तीव्र, उपयोगी और अद्भुत है जिसका वर्तमान समय में, जब दवा मुश्किल से मिलती है, उपयोग खूब होना चाहिए। प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास बताता है कि इस चिकित्सा के प्रवर्तक वही लोग हुए हैं जो अन्य सब चिकित्सा प्रणालियों से निराश होकर प्रकृति की शरण में आये। उन्होंने अपना स्वास्थ्य सुधारने के साथ साथ इस चिकित्सा के विशेषज्ञ होकर जीवन से निराश हजारों व्यक्तियों को लाभ पहुँचाया। इसी संजीवनी प्राकृतिक चिकित्सा का एक दृढ़ आधार पानी है।

जल चिकित्सा का ही एक बहुत ही उपयोगी अंग ठंडी पट्टी भी है। वास्तव में ठंडी पट्टी का प्रयोग पूरे शरीर तथा प्रत्येक अंग पर अलग-अलग आवश्यकतानुसार किया जा सकता है। ठंडी पट्टी की विधि यह है कि कोई कपड़ा ठंडे पानी से भिगो कर निचोड़ दीजिये, और जिस स्थान पर रखना हो वहां रख कर किसी ऊनी कपड़े को उस पर तीन चार बार लपेट दीजिए।

बहुत सोच समझकर इसका प्रयोग करने से यह बहुत ही उपयोगी सिद्ध होता है लेकिन लापरवाही अथवा बिना सोचे समझे प्रयोग करने से लाभ के बदले हानि होने की सम्भावना भी रहती है।

पट्टी के प्रयोग से रक्त-शिरायें संकुचित होती हैं और थोड़े समय के लिए खून अन्दर की ओर चला जाता है। किंतु ज्यों ही शीतल जलका स्पर्श त्वचा से होता है तुरन्त स्नायु मस्तिष्क को टेलीफोन करती हैं, शरीर पर शीतल वार हुआ है। मस्तिष्क तुरन्त उस स्थान पर खून की धारा में जाता है। सम्भव है, संकुचित शिराओं को ठेल कर रक्त शीघ्रता से वहां प्रवेश नहीं कर पाता किन्तु धीरे धीरे रक्त फैलकर सारी शिराओं को नये खून से भर देता उस समय संकुचित शिरायें पहले की अपेक्षा अधिक फैल जाती है। नीले रक्त हीन चमड़े पर गुलाबी आभा झलकने लगती है, ठंडा चमड़ा उत्पन्न हो आता है और रोम कूप खुल जाते हैं। यह प्रभाव काफी समय तक रहता है। उपचार शुरू करने के पहले यह जान लेना परमावश्यक है कि रोग ग्रस्त स्थान पर शुद्ध रक्त की कमी है अथवा नहीं। और साथ ही इस ओर ध्यान देना चाहिये कि उस स्थान का सीधा सबंध किस विशेष स्थान से है; जैसे पेशाब की शिकायत होने से गुर्दे; पाखाने से पेट, और श्वास खराबी आने से फेफड़े में दोष मालूम होता है।

कमर की पट्टी ऊपर बतायी हुई विधि से कमर के चारों ओर नौ इंच की चौड़ाई में लपेट कर ऊपर से तीन-चार पर्त ऊनी कपड़े लपेट देना चाहिए ताकि सांस लेते समय गिरने की संभावना रहे। सोते समय यह पट्टी लेनी चाहिए और रात भर रहने देनी चाहिए। एक बार इस्तेमाल की हुई पट्टी को खूब साफ करके ही पुनः इस्तेमाल करना चाहिए। इस पट्टी से पाचन-क्रिया के ठीक हो ने में बहुत ही मदद मिलती है। इस गुण के कारण इस पट्टी का बहुत ही महत्व है क्योंकि आजकल अधिकांश लोगों को पाचन सम्बन्धी शिकायत रहती है। पाचन-क्रिया के खराब होने के कारण ही भोजन का रस औ र रक्त ठीक नहीं बन पाता और मनुष्य सूखता चला जाता है जिससे अंत में तपेदिक से भयंकर रोगों का शिकार होना पड़ता है। अतः अपच से होने वाले रोगों से बचने के लिए यह बहुत ही आवश्यक है। तबियत ढीली होने पर कमर से पट्टी लेना नहीं भूलना चाहिए। रोगी को जब तक इस पट्टी के लगाने से जाड़ा न मालूम हो तब तक किसी प्रकार की हानि की संभावना नहीं है। पहली रात के प्रयोग से ही इतना लाभ जरूर होग कि सबेरे पेट खूब साफ़ होगा।

इसी प्रकार फेफड़े, हृदय की खराबी मालूम होने पर सीना-पट्टी, गले में खराबी गले की पट्टी और स्नायविक दुर्बलता होने पर शरीर अथवा रीढ़ की पट्टी लेनी चाहिए।

कब्ज, सर्दी, इनफ्लुएंजा, जलन, अनिद्रा; ज्वर, दमा हैजा आदि में यह बिजली की तरह लाभ करती है।

हृदय रोग, कैंसर, मधुमेह ऐसे भयानक रोगों में पट्टी किसी अनुभवी चिकित्सक की देख-रेख में ही लेनी चाहिए।

जिस स्थान पर पट्टी दी जाती है वहां अन्य स्थानों की अपेक्षा रक्त संचार में तीव्रता आ जाती है। उदाहरणार्थ गुर्दे में खराबी आने पर उस स्थान पर पट्टी देने से वहां रक्त संचार में तेजी आ जायगी और गुर्दे की बीमारी दूर हो जायगी।

कुछ ही दिन पहले की बात है। एक सज्जन को दिन भर में सैकड़ों दस्त हुए। कै और मिचली भी साथ थी तथा पेशाब बिल्कुल बंद था ७-८ बार पेट पर ठंडी पट्टी देते ही सारी शिकायत दूर हो गयी और वे दो दिन में ही बिल्कुल चंगे हो गये। डाक्टरों ने तो 'कालरा' कहकर उनके घरवालों को बड़ी ही परेशानी में डाल रखा था।

यकृत, प्लीहा, और पाचन-क्रिया में इसी के द्वारा अपने कार्य संपादन में बड़ी मदद मिलती है।

आशा है पाठक इस उपयोगी एवं हर समय और हर जगह मिलने वाली पट्टी से अवश्य ही लाभ उठायेंगे।

(पृष्ट ४६ से आगे)

आज संक्रान्ति है, लाखों नरनारी आज गंगा में डुबकी लगाने जाते हैं लेकिन वे यह नहीं जानते कि इस डुबकी लगाने का क्या रहस्य है ? क्यों आज के दिन स्नान करने को इतना महत्व दिया गया है। आज से सूर्यदेव दक्षिण पथ को छोड़कर उत्तर पथ की ओर मुड़ने लगते हैं। संसार का शीत-मृत ग्रीष्मामृत में परिणत होने लगता है। एक प्रकार से लोगों को निर्भय होकर नहाने की छूट दी जाती है।

घर में नहाने की अपेक्षा किसी बहती नदी, स्वच्छ सरोवर, कुदरती झरने या उफनाते समुद्र में नहाने का अगर योग मिले तो अधिक अच्छा है। दुर्भाग्यवश बहुत से भारतवासी समुद्र-स्नान से वंचित रहते हैं और जो उसके किनारे रहते हैं वे भी उस प्राकृतिक दे उसे लाभ नहीं उठाते। समुद्र, नदी, तालाब में तैरने से भी स्वास्थ्य पर बहुत अच्छा असर पड़ता है और नियम से तैरने वाले बहुत कम बीमार होते देखे गये हैं। आध घण्टे, पौन घण्टे पानी के अन्दर खड़े रहने से भी शरीर की बहुत-सी व्याधियाँ दूर हो जाती हैं। भारत में किसी समय जल-क्रीड़ा बहुत प्रचलित थी लेकिन आज वह प्रथा उठ सी गई है। समुद्रा में नहाने से तो खास कर कोई चर्म-रोग होने ही नहीं पाते। खुजली, दाद, आदि चर्मरोगों की समुद्र स्नान तो अचूक दवा है।,

प्राकृतिक स्नान या टब के स्नान के विषय में अक्टूबर ४५ के 'जीवन सखा' में एडोल्फ जुस्ट का लेख प्रकाशित हुआ है लोगों को उसे देखना चाहिए।

धूप-स्नान भी स्वास्थ्य के लिए विशेष गुणकारी है। सौभाग्यवश भारत में धूप स्नान है भी बहुत सुलभ। एक कम्बल ओढ़ कर धूप में लेट रहिए। पसीने को भीवर पोंछते रहिए। उसके बाद एक बन्द कमरे में जाकर अच्छी तरह शीतल जल से स्नान कर लीजिए। हवा का बचाव करना चाहिए।

अन्दरूनी सफाई

श्री विश्वम्भरनाथ द्विवेदी, एन० डी०, डी० वाई०

[शारीरिक स्वास्थ्य, आन्तरिक एवं बाह्य स्वच्छता के लिए बताई गई विधियों में, यौगिक क्रियाओं का महत्व बहुत अधिक है। कुछ यौगिक क्रियाएं तो ऐसी हैं जिनका स्थान कोई भी प्रचलित आधुनिक विधि ग्रहण नहीं कर सकती। अभ्यासी लेखक ने इस लेख में कतिपय एनिमा के अलावा योगिक क्रियाओं का, जो अन्दरूनी सफाई के लिए विशेष महत्व पूर्ण हैं, बड़ी सरल भाषा में सुन्दर ढंग से वर्णन किया है। लेख बहुत उपयोगी है। —सं०]

अन्दरूनी सफाई से मेरा मतलब है शरीर के भीतरी अंगों की सफाई। बाह्य सफाई के तो अन्यायान्य साधन हैं, लोग प्रायः इसी ओर विशेष ध्यान भी दिया करते हैं। किंतु वे यह नहीं जानते कि बाहरी सफाई बिना अन्दरूनी सफाई के बेकार सी चीज है। भीतरी कल पुर्जें साफ रहने से बाहरी अंग भी साफ रहता है और शरीर निरोग एवं सौंदर्यमय बना रहता है।

अन्दरूनी सफाई के लिए बाजारों में डाक्टरों के पास अनेक प्रकार की दवाइयाँ रहती हैं। लोग इनका प्रयोग करते हैं। क्षणिक आराम भी पाते हैं परन्तु स्थाई लाभ और सुख से कोसों दूर हो जाते हैं। इन गरम जुलाब वाली गोलियों, उत्तेजक दवाइयों से उनके शरीर के भीतरी अंग ढीले एवं कमजोर हो जाते हैं। फिर वे जिन्दगी भर एक डाक्टर से दूसरे डाक्टर के पास, एक वैद्य के पास से दूसरे वैद्य के पास भटकते रहते हैं। अन्त में अपने भाग्य को दोषी ठहराते हुए मन मार कर बैठ रहते हैं, किं कर्तव्य विमूढ़ और जीवन से निराश हो जाते हैं। कभी कभी तो आत्म घात करते हुए भी सुना जाता है।

मसल मशहूर है कि 'अपने हाथ अपने अंग फोड़े, दोषी ठहराए भवानी को'। यह कितनी युक्ति संगत बात है। हम अपने कर्मों पर तो ध्यान नहीं देते कि हमने अपने शरीर के साथ क्या नाजायज हरकत की। इसका परिणाम क्या होगा, इसकी ओर तनिक भी आंख उठाकर देखना पसन्द नहीं किया। मनुष्य कुछ खोकर ही सीखता है। जहाँ कर्म की प्रधानता है वहां प्रायश्चित की भी प्रधानता है। बुरे कर्मों का भी प्रतिकार है, ऐसा शास्त्र बताता है। उन जीवन से निराश व्यक्तियों के लिए जीवन सुखमय और उनका संसार सुनहला संसार बनाने की क्रिया एवं प्रतिकार भी है, अगर वे संलग्न होकर वैसा करें। सच्चा प्रायश्चित ही उनके अच्छे स्वास्थ्य का द्योतक है। आगे मैं यह बताने जा रहा हूं कि ऐसे लोगों का प्रायश्चित क्या है ?

शरीर का निर्माण तथा पोषण करने में जिन पंच भौतिक तत्वों की जरूरत पड़ती है उनमें एक जल भी है। जल अपना एक खास स्थान रखता है। दुनिया की कोई भी जान- दार चीज पानी से परे नहीं। सभी में सैकड़ा पीछे कुछ

अंश इसका रहता है। जब इसकी महानता इस प्रकार सिद्ध हो चुकी तब क्या कारण है कि अपने शरीर को शुद्ध करने में उसका कुछ भी हाथ न हो। जब हम जल से बाह्य सफाई की विविध कमियों को पूरी करते हैं और उसमें सफल भी होते हैं, तो क्या कारण है कि भीतरी सफाई में वह सहायक न हो ? उचित ढंग से काम लेने से जब बेजान मशीन आश्चर्यजनक काम कर जाती है, तब अगर पानी को शरीर के भीतरी भाग में उचित ढंग से काम लें तो क्या वह अपना काम करने से मुकर जायगा ? मैं यहाँ यह बताऊंगा कि जल शरीर के भीतरी अंगों की सफाई किन तरीकों से कर सकता है। इन विधियों को कार्य रूप में परिणित करने से हर कोई सुखमय जीवन व्यतीत करेगा और निराश जीवन सारमय बन जायगा, इसमें शक नहीं।

एनिमा

एनिमा की उपयोगिता और यन्त्र—एनिमा के यंत्र कई प्रकार के हैं और इनसे कई ढंगो से आँत में पानी चढ़ाया जा सकता है। इस तरह पानी चढ़ाकर आँत को धोना आंत की, पेट की, सफाई का सर्वोत्तम साधन है। इसके दो तीन फ़ायदे हैं। (अ) बिना किसी प्रकार की उत्तेजना और जलन के आंत की सफाई हो जाती है। (ब) जल के प्रयोग से स्नायु-शक्ति बढ़ती है, जिससे उसकी काम करने की शक्ति भी बढ़ती है। चिकित्सक यह अच्छी तरह जानते हैं कि पानी के प्रयोग से स्नायु-शक्ति भी बढ़ती है। इसी कारण वह अपनी चिकित्सा में जल के प्रयोग को महत्वपूर्ण बताते हैं।

एनिमा के यंत्र सवा रुपये से लेकर दो हजार रुपये तक में मिलते हैं। पर मेरा विचार है कि सर्व साधारण के लिये सवा या डेढ़ रुपये वाला यंत्र, जो दीवाल से कील के सहारे लटका दिया जाता है (इसका दाम अब छः रुपए और दस रुपए तक हो गया है)। इसमें रबड़ की एक नली लगी रहती है। उसके भाग में टोंटीदार नेजुल लगा रहता है। इसी नेजुल को गुदा-मार्ग में रखकर पानी चढ़ाया जाता है। यह अत्यन्त सरल और लाभदायक है। दूसरा यंत्र ऐसा भी होता है, जिसमें बर्तन नहीं होता। वह रबर की एक नली भर रहती है। जिसके बीच में एक पोली (खोखली) गेंद सी रहती है। इस नली के एक सिरे को गुदा-मार्ग में रखते हैं और दूसरे सिरे को लोटे में। गेंद को बार-बार दबाने से पानी ऊपर चढ़ता है। पहला यंत्र ज्यादा अच्छा है।

एक ही यंत्र सभी लोगों के काम का हो सकता है। उसी यंत्र से छः महीने के बच्चे से लेकर १०० साल के वयोवृद्ध मनुष्य तक को एनिमा दिया जा सकता है। कुछ लोगों की धारणा है कि एनिमा के प्रयोग से आदत पड़ जाती है फिर बिना एनिमा के पाखाना होता ही नहीं। बात किन्हीं अंशों तक ठीक भी है। ज्यादा पानी प्रतिदिन चढ़ाने

(४४ पृष्ठ से आगे)

अच्छा तो यह होगा कि वे इस प्रयोग को जाड़े में शुरू न करके गर्मियों में इस क्रिया को शुरू करें। उनके जाड़े में इस क्रिया को शुरू करने से हानि की संभावना है। ये क्रियायें यों तो सभी उम्र के स्त्री पुरुष दोनों के लिए उपयोगी हैं लेकिन बच्चों के लिए विशेष लाभदायक है।

पैरों का टंडा रहना, लाल बुखार, मोतीझरा और हाफा डाफा—सरीखे भयंकर रोग इन क्रियाओं से शीघ्र अच्छे होते हैं। अतः रोगी और निरोग सभी के लिये ये क्रिया उपयोगी हैं और शरीर को दृढ़ बनाने के लिए इन सब में से एक या दो विधियां नित्य नियमित रूप से करनी चाहिए। बहुत थोड़े समय तक करते ही आपको इसके लाभ का पता चल जायगा।

× × ×

इन आश्चर्यजनक क्रियाओं का आविष्कारक बवेरिया का साधु अपनी अल्प अवस्था में ही अनजान में मूत्राशय पर फोड़ा हो जाने के कारण ७ जून १८६७ को हजारों स्त्री पुरुषों को शोकातुर कर चल बसा जिन्हें इनसे जीवन-दान मिला था।

कितनी ही जगह आज भी नीप-जल-चिकित्सा मंदिर स्थापित हैं। लेकिन नीप के कथनानुसार सब के सब उनका नाम तो बर्तते हैं लेकिन आगे चला सकने की किसी में योग्यता नहीं है।

से आंतें ढीली पड़ जाती है परन्तु यदि पाव भर या आधा सेर पानी प्रतिदिन चढ़ावे तो ऐसी धारणा निर्मूल हो जाती है। पाव भर या आधा सेर पानी से जब एनिमा लिया जाता है तब ऐसे एनिमा को 'टानिक एनिमा' कहते हैं। इससे शक्ति शरीर के अन्दर आती है और आदत नहीं पड़ती।

पानी का अन्दाज

पानी का परिमाण अलबत्ता अलग होगा। छः महीने के बच्चे के पेट में दो छटांक से पाव भर तक पानी चढ़ा सकते हैं। एक वर्ष से लेकर ६ वर्ष तक के बच्चे के पेट में पाव भर से लेकर आधा सेर तक पानी चढ़ाते हैं। छः वर्ष से लेकर १२ वर्ष तक के बच्चे को आधा सेर से लेकर १ सेर तक पानी चढ़ाते हैं। उससे बड़े अर्थात् १२ वर्ष से लेकर ज्यादा उम्र वालों को १ सेर से लेकर २ सेर तक पानी चढ़ा सकते हैं। २५-३० वर्ष वालों के पेट में ढाई सेर तक पानी चढ़ाया जा सकता है। पानी की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए।

एनिमा के पानी में क्या मिलाया जाय ?

कुछ डाक्टर एनिमा के पानी में रेंड़ी का तेल, साबुन की झाग, ग्लीसरीन इत्यादि डालते हैं। उनका यह कहना है कि इन चीजों के मिलाने से आंत बहुत अच्छी तरह साफ हो जाती है। लेकिन इस पर विचार कर देखिए— सिर्फ साबुन मिलाने की ही बात को लीजिए। यह प्रतिदिन का अनुभव है कि बदन में लगा हुआ साबुन आप ही आप नहीं छूटता। उसे कई बार पानी से धोने की जरूरत पड़ती है। यह आसानी से समझा जा सकता है कि आंत में लगा हुआ साबुन एक ही बार में क्योंकर साफ हो जायगा। दूसरे पदार्थ भी आंत में अनावश्यक उत्तेजना पैदा करते हैं। इस उत्तेजना से धीरे-धीरे आंतें कमजोर हो जाती हैं।

एनिमा का प्रयोग

एनिमा के लिए जितना भी पानी तैयार करना है उसको जरा गरम कर लें। शरीर के ताप के बराबर गर्मी होना आवश्यक है।

एनिमा के बर्तन को अच्छी तरह साफ करें और रबर की नली इत्यादि को भी अच्छी तरह गरम पानी से साफ कर लें। तैयार जल को एनिमा के बर्तन में डाल दें। बहुत अच्छा हो अगर एक नींबू का रस निचोड़ कर एनिमा के पानी में कपड़े के सहारे छान लिया जाये। अब एनिमा के बर्तन को जिस जगह या तख्त पर लेट कर एनिमा लेना है, उससे चार फुट की ऊंचाई पर दीवार से कील के द्वारा लटका दें। बेंच या तख्त के नीचे पैताने की ओर दो दो ईंट लगा सकते हैं। अब जिसको एनिमा देना हो उसको इसी बेंच पर चित लिटा दें। कहने की जरूरत नहीं कि सिर कुछ नीचा होगा और पैर की ओर ऊंचा। पैरों को मोड़ रखना चाहिए। अब रबर की नली के अग्र-भाग को खोल दें जिससे कुछ पानी निकल जाने से अन्दर की हवा निकल जाय। फिर उसको बन्द कर उसमें थोड़ा वेसलीन या घी मलकर गुदा-मार्ग के अन्दर लगभग दो इंच तक प्रवेश करा दें और पानी को आंतों में चढ़ने दें। कभी कभी तो पानी बड़ी आसानी से आंत में चढ़ जाता है पर कभी-कभी कुछ कठिनाई भी होती है। कभी जरा सा पानी चढ़ने के बाद पेट में दर्द शुरू हो जाता है और ऐसा मालूम होता है कि अब पानी नहीं रोका जा सकेगा। इस हालत में नली के अग्रभाग को थोड़ी देर के लिए बन्द कर देना चाहिए जिससे पानी चढ़ना बन्द हो जाय, कुछ ही देर में पेट का दर्द बन्द हो जायगा। दर्द बन्द होने पर फिर पानी को आंत में चढ़ने देना चाहिए। इसी तरह धीरे धीरे जितना पानी चढ़ाना हो आंत में चढ़ने दीजिए। पानी को आंत में इसी अवस्था में कुछ देर तक रोक रखना चाहिए। अब पेट की हल्की मालिश करें। इसके बाद टट्टी जाना चाहिए। पहले पानी रोकना कठिन होगा। अभ्यास से १०-१५ मिनट तक पानी रोका जा सकता है। पानी रोक रखने से मल फूल कर बाहर निकल आता है और एनिमा की आदत भी नहीं पड़ती है। पानी चढ़ाने के बाद तुरन्त ही पाखाने जाने से मल बिलकुल ही नहीं निकलता और एनिमा की आदत पड़ने की सम्भावना रहती है। पर आदत तभी पड़ सकती है जब कि तीन चार महीने लगातार एनिमा लिया जाय। बताई गई विधि के अनुसार एनिमा लेने से पेट की सफाई अच्छी तरह हो जायगी

और आदत भी नहीं पड़ेगी। यदि बेंच या तख्त न हो तो जमीन पर दरी, कम्बल या चटाई बिछाकर मरीज को उसी पर चित लिटाकर उसकी कमर के नीचे तकिया रख सकते हैं, जिससे उसका सिर कुछ नीचा हो जाय।

एनिमा स्वयं भी लिया जा सकता है। यदि किसी कारण चित न लेटा जा सके तो दाहिनी करवट लेट कर भी एनिमा ले सकते हैं। पर चित लेटना और सिर को कुछ नीचा करना ज्यादा अच्छा है।

एनिमा के प्रयोग के बारे में हिदायतें

(१) एनिमा वैसे हर रोज नहीं लेना चाहिए, पर उपवास में या केवल फलों के रस पी कर या फल खा कर रहने के दिनों में हर रोज एनिमा लेना चाहिए। पूरे उपवास में तीन चार दिनों तक दोनों वक्त एनिमा लेना चाहिए।

(२) जिसकी आंत में बहुत दिनों के विकार सूखकर चिमट गए हैं, उसे पहले दो तीन दिनों तक एनिमा लेने से मल नहीं निकलता। ऐसी हालत में एनिमा लेना बन्द नहीं करना चाहिए।

(३) तीव्र (Acute) रोगों में उपवास के साथ एनिमा का प्रयोग जरूरी है। एक ही दो दिन के उपवास और एनिमा के प्रयोग से ६० प्रतिशत से ज्यादा रोग दूर हो जाते हैं।

(४) पुराने (chronic) रोगों में तीन चार सप्ताह के फलाहार-शाकाहार और बीच-बीच के दो तीन दिन के उपवास के साथ साथ एनिमा के नियमित प्रयोग से ७५ प्रतिशत पुराने रोग आसानी से जाते रहेंगे।

(५) एनिमा लेने के आध घन्टे तक लेट कर आराम करना चाहिए।

(६) एनिमा लेने के बाद भरसक एक घंटे तक कुछ खाना नहीं चाहिए।

(७) साधारणतः तन्दुरुस्ती को बनाए रखने या उन्नत करने के लिए प्रति वर्ष या छः माह बाद तीन दिन का उपवास और एनिमा का प्रयोग बहुत लाभदायक है। इन दिनों के बाद चार पांच दिन तक केवल फल और पत्तीदार भाजियों को खाकर रहना बहुत अच्छा होगा। ऐसा करने वाले बहुत दिनों तक सुखी रहकर जीवन-व्यतीत करेंगे।

बस्तिकर्म

पश्चिमी शिक्षा के मतानुयायी अथवा शिक्षा-व्यसनी डाक्टर लोग भी 'बस्तिकर्म' को मानते हैं। परन्तु वे लोग बस्तिकर्म को 'एनिमा' या डूश से सम्बोधित करते हैं। उस पश्चिमी पद्धति से बस्तिकर्म के लिए रबर, ट्यूब, काँच का या लोहे का बर्तन तथा टोटी आदि अनेक साधनों की जरूरत पड़ती है। परन्तु हमारे आर्य ऋषि मुनियों ने हजारों वर्षों से पहले सिद्ध किया हुआ 'बस्ति कर्म' थोड़े से साधन, किंचित् परिश्रम और बिना मूल्य से किया जाता है।

बस्ति कर्म के लिए पूर्व तैयारी

बस्ति कर्म के लिये नौलि-कर्म सिद्ध होना चाहिए। छः अंगुल लम्बी बांस की अथवा लकड़ी की नली चाहिए, (कहने का मतलब यह कि पतली अंगुली उस छेद में आसानी से आ-जा सके) गाय का घी अथवा तेल, तालाब या बर्तन में ठंडा पानी या साधारण गरम जल। नदी का तट विशेष उपयोगी होगा।

बस्ति कर्म का आरम्भ

बस्ति कर्म दो प्रकार से किया जाता है। तीन या चार दिन पवन बस्ति करने के पश्चात् जल बस्ति कर्म किया जाता है। प्रथम खड़े होने दोनों घुटनों पर दोनों हाथों का पंजा रक्खे और 'वाम नौलि' तथा 'दक्षिण नौलि' को घुमावे। तत्पश्चात् मध्यम नौलि को घुमावे। इस प्रकार १ मिनट तक नौलि करने के पश्चात् बाँस की नली के दो अंगुल स्थान पर गाय का घी या तेल लगाकर गुदा में दो अंगुल नली को प्रवेश करे और मध्यम नौलि को ऊपर नीचे तथा चारो ओर घुमावे। नौलि ऊपर नीचे ले जाने के समय में जो पवन उदर में आवे तो चारों ओर घुमाने की जरूरत नहीं। मध्यम नौलि जब उदर के मध्य में ठीक प्रकार से दिखाई देवे, तब पवन उदर में प्रवेश करेगा और जब नौलि को नीचे की ओर और वाम नौलि न उठावे तब पवन उदर से बाहर निकल जायगा। इस कर्म को पवन बस्ति कर्म कहते हैं।

पवन बस्ति सिद्ध होने का प्रमाण

मेद शरीर तथा वायु शरीर वाले को, पित्त प्रधान

शरीर वाले से अधिक समय लगता है। अर्थात् पित्त प्रधान शरीर वाले को तीन चार दिन में सिद्ध हो तो वायु तथा कफ प्रधान प्रधान शरीर वाले को छः से आठ दिन लग सकते हैं। प्रतिदिन प्रातः काल टट्टी (मल-विसर्जन) होने के बाद दो से तीन मिनट पर्यन्त पवन बस्ति करें। जब पवन नलिका द्वारा प्रवेश करते समय तथा बाहर निकलते समय 'सी सोटी' के समान शब्द होने लगे तब समझना चाहिए कि पवन बस्ति कर्म सिद्ध हो गया।

जल बस्ति कर्म

पवन बस्ति कर्म सिद्ध होने के अनन्तर तालाब या नदी में जाकर कमर तक पानी में खड़े होकर नौलि को एक मिनट तक घुमाने के पश्चात् घी या तेल लगाई हुई नलिका के दो अंगुल भाग को गुदा में प्रवेश कर मध्यम नौलि को ऊपर की ओर फिर नीचे की ओर ले जाना तथा ले आना चाहिए। जब नौलि ऊपर नीचे आवेगी तब पानी पेट में आ जायगा और नौलि नीचे की तरफ जायगी और उदर से गुदा-द्वार से मल बाहर निकल जायगा। जिनको पानी उदर में थोड़ी देर रखना है उन्हें चाहिए कि वे पानी उदर में प्रवेश करते ही नलिका को बाहर निकाल दें। नलिका निकालने के पश्चात् दो या तीन मिनट नौलि कर्म कर पानी को निकाल देना चाहिए। नदी, तालाब आदि साधन न हों तो किसी ऊंचे बर्तन को रखकर बस्ति कर्म करना चाहिये। स्थान इतना ऊंचा हो कि खड़े होकर बस्ति कर्म करने पर नितम्ब जल की सतह से स्पर्श करता हुआ रहे।

नौलि कर्म के समय जब पानी पेट में चला जाय तब जल बस्ति कर्म सिद्ध हुआ समझें। पेट में जल के पहुँचते ही नलिका को गुदा द्वार से बाहर निकाल देना चाहिए। नहीं तो बारम्बार जल उदर में प्रवेश करता रहेगा और बाहर निकलता रहेगा। ऐसा होने से जिस शिकायत को दूर करने के लिए बस्ति कर्म शुरू किया है इसके करने पर भी वह शिकायत दूर न हो सकेगी। बस्ति कर्म सिद्ध होने के पश्चात् प्रातः काल दो से तीन बार पानी उदर में से कख कख कर निकालना चाहिए। मल विसर्जन की इच्छा हो तो पहले मल त्याग करें फिर बस्ति कर्म करें।

धात्विन्द्रियातः करण प्रसादे
दधाच्च कान्ति दहनं प्रदीप्तिम्
अशेषदोषोपचयं निहन्या
दभ्यस्यमाने जलबस्ति कर्म ॥

सप्त धातुओं, पंच कर्मेन्द्रियों मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार प्रसन्न विशुद्ध बनता है। जठराग्नि अत्यन्त उद्दीप्त होती है। मुख पर सात्विक कान्ति छा जाती है। त्रिधातु की अत्यन्त वृद्धि तथा न्यूनता दोनों को नष्ट करके साम्य रूप में कर देता है।

कास, संग्रहणी, श्वास रोग, गर्भवती स्त्री, भगन्दर, सन्निपात, गुदा में शोथ, आन्त्र व्रण आदि रोग वाले को बस्ति कर्म नहीं करना चाहिए।

बारह वर्ष से सौ बरस तक की आयु वाले आबाल वृद्ध स्त्री पुरुष कर सकते हैं, परन्तु उपरोक्त बीमारी वालों को सिर्फ मनाही है।

जल धौति कर्म

योग एक विशुद्ध रहस्यमय शास्त्र है जिसका आधार केवल निजी अनुभव व विज्ञान है। अष्टांग योग द्वारा सशक्त शरीर, पवित्र मन तथा आत्म-दर्शन आसानी से प्राप्त होने की बात प्राचीन काल से लोग मानते चले आ रहे हैं। तर्क तथा अभ्यास दोनों के बल पर योगाभ्यास के लाभ प्रत्यक्ष उठा सकते हैं। वर्तमान समय में नियमपूर्वक सप्रेम शास्त्रीय विधि के अनुशीलन से लाभ उठाया जा सकता है।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि, ये अष्टांग योग के आठ हिस्से हैं। आसन यम व नियम से शरीर संशोधन की दृष्टि से षट् कर्म किए जाते हैं जिनमें पहला स्थान धौति कर्म और नेति कर्म का है। यह जल और वस्त्र दोनों से ही किया जाता है। यहां पर हम दोना की व्याख्या जल से ही करने की करेंगे।

पानी को स्वच्छ साफ बर्तन में रखकर, उसमें थोड़ा नमक मिलाकर आग पर गरम करने के लिए रख दीजिए। जब उसकी गरमाहट शरीर के ताप के बराबर हो जाय तब उसे छान कर अलग गिलास या लोटे में रख लें। यह तो जल तैयार हो गया। अब नीम के पेड़ के पास जाइए और पेड़ से नीम की पत्ती लगी एक टहनी तोड़ लाइए। फिर एक एक सीक में सिर्फ सिरे पर लगी दो पत्तियों को तोड़कर शेष पत्तियों को साफ कर दीजिए। इसी प्रकार चार-पांच

सीकें बनाकर रख लें। एक छोटा सा आसन बैठने के लिए हो तो उत्तम होगा।

तैयार किया हुआ योग जल, जो आपने रख छोड़ा है, पीना शुरू कीजिए। धीरे धीरे २ सेर या २।। सेर तक पी डालना चाहिए। पानी की मात्रा धीरे धीरे बढ़ाई जाय तो अच्छा ही होगा। अब आप सीकों को उठाइये और आगे की ओर झुक कर बैठ जाइए फिर सीकों को मुंह के अन्दर हलक या कण्ठ में डालिए और धीरे धीरे सहलाइये। ऐसा करने से कै मालुम होगी और पिया हुआ पानी पेट की गन्दगी के साथ बाहर आ जायगा। इसी क्रम से सब पानी पेट से बाहर निकाल देना चाहिए। हो सकता है, सीकें ठीक से काम न करें तो नाखून रहित अंगुली से सहारा ले सकते हैं। यदि इससे भी आप की समस्या हल न तो घबड़ाना नहीं चाहिए, पेट का पानी पचकर पेशाब और पाखाना के रूप में बाहर आ जायगा।

जल का पान इत्मिनान से और ठीक से करना चाहिए। इधर उधर के विचार अगर मस्तिष्क में चक्कर न लगाएं तो अच्छा। जिन सामानों का प्रयोग किया जाय वह स्वच्छ रहे तो ज्यादा अच्छा होगा। सीकों की फुरेहरी बनाने में ध्यान रहे कि उसमें किसी प्रकार की फैंच या कांटे वगैरह रहें वरना लाभ के बजाय हानि की सम्भावना अधिक रहेगी। यह मनुष्य को अपनी शक्ति के अनुसार ही करना चाहिए।

जल नेति कर्म

प्रातः काल दन्त धावन के पश्चात् जो स्वर चलता हो उसी नासिका रंध्र से किसी साफ बर्तन में रखे हुए योग जल को खींचें। पानी खींचते समय दूसरी नाक बंद कर लेनी चाहिए। इससे जल खींचने में कोई अड़चन न पड़ेगी। शायद कुछ दिनों तक सिर के पिछले भाग में गुदगुदाहट व सनसनाहट हो पर कुछ दिनों के अभ्यास से यह बात दूर हो जाती है। इसके बाद दूसरी नाक से पानी खींचना चाहिये। पर ध्यान रहे खींचा हुआ पानी पी नहीं लेना चाहिये बल्कि मुंह से निकाल देना चाहिए। ऐसा करने से लाभ अधिक होगा।

जल नेति से नेत्रों की जलन भाग जाती है। मस्तिष्क की अनावश्यक गर्मी दूर हो जाती है। प्यास की शिद्दत कम हो जाती है। दृष्टि शक्ति बढ़ती है। मस्तिष्क शुद्ध हो जाता है। जुकाम हमेशा बने रहने का अचूक इलाज है।

कपाल शोधनी चैव, दिव्य दृष्टि प्रदायिनी।
गत्रूर्ध्वगातरोगौघं, नेतिराशुनिहन्ति च ॥

नेत्र, मस्तिष्क को शुद्ध करती है, दिव्य दृष्टि देती है। कन्ध, भुजा और सिर के सन्धि के ऊपरी हिस्सों के रोगों को शीघ्र नष्ट करती है।

पाण्डु, कमल, अम्लपित, पित्त ज्वर, नासिका में विशेष दाह पित प्रकोप में उत्पन्न रोग समूह में नेति कर्म नहीं करना चाहिये।

शंख प्रक्षालन क्रिया

तैयारी में पहले योग जल शरीर-तापमान का करीब २।। सेर स्वच्छ बर्तन में रख लेना चाहिये। साथ में गिलास का रहना जरूरी होगा।

जितना पानी एक बार में पिया जा सके पी लेना चाहिये। फिर कसरत करना चाहिये ताकि वह पिया हुआ पानी पच जाय और शीघ्र ही गुदा-द्वार से बाहर हो जाय।

कसरत नं० १ :—सीधे खड़े होकर हाथों को ऊपर नीचे करना चाहिये। साथ ही पंजे भी उठाये जायेंगे। इसी क्रम से तीन चार बार करना चाहिये।

कसरत नं० २ :—सीधे खड़े हो जाइये। फिर घुटनों को आगे की ओर मोड़ कर थोड़ा झुक जाइए। अब दोनों हाथों को पीछे की ओर ले जाकर रानों को बीच कर एक दूसरे को पकड़ लीजिए। अब पेट पर ज़ोर देते हुये उठने की कोशिश कीजिए। फिर छोड़ कर अपनी असली हालत में आ जाइये। इसी क्रम को चार पांच बार करें।

यदि अब तक पिया हुआ पानी पच गया तो थोड़ा सा पानी एक गिलास में रख कर और पी लेना चाहिए। फिर कसरत शुरू करना चाहिए।

कसरत नं० ३—सीधे खड़े हो जाइए। अब बारी-बारी से पैरों को मोड़कर छाती के पास लाइए और दोनों हाथों से पकड़ कर दबाइए। एक के बाद दूसरा दूसरे के बाद पहला पैर बद- लते रहना चाहिए। इसी क्रम से तीन-चार बार करना चाहिए।

(शेष पृष्ट ५६ पर)

आयुर्वेद में जल का स्थान

[श्री महेन्द्र नाथ पांडेय आयुर्वेद-विशारद, एन०डी०डी०बाई]

वेदों में एक मन्त्र आता है—

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम् ।' इसका अर्थ है जल में औषधि है। उक्त मन्त्र से यह निश्चय होता है कि वेद के समय में भी लोग जल के गुण से परिचित थे। जल को अमृत समझते थे। जल के औषधि गुण से परिचित थे। वेदों में यह खास बात है कि हर एक बात उसमें सूत्र रूप में बताई गई है। उसका विस्तार करना उसके ज्ञाताओं का काम है।

वेद का ही उपांग आयुर्वेद है। जिस प्रकार वेद अनादि है उसी प्रकार आयुर्वेद का ज्ञान भी अनादि है। विशेष विशेष कालों में उसके विशेष विशेष ज्ञाता हो गये हैं और उन्होंने उस ज्ञान को जनता में फैलाने का प्रयत्न किया है। इसीलिए एक ही विषय पर अनेक आचार्यों के अनेक मत और अनेक अनुभव मिलते हैं। हम उन सब अनुभवों को सत्य मानते हैं। हम चाहते हैं वे सब अनुभव एक साथ मिला दिये जायं। उन विषयों पर जो नये अनुभव प्राप्त हों उनको भी उनके साथ मिलाने का प्रयत्न करना चाहिए। आयुर्वेद से हमें इस बात का पता निश्चित रूप से लग जाता है कि जिस विषय पर हम अनुभव करना चाहते हैं उस पर हमारे पूर्वज, हमारे पूर्व के चिकित्सक, कितना विचार कर चुके हैं। कितना अनुभव हमारे लिए छोड़ चुके हैं, जो अनुभव आयुर्वेद में सुरक्षित हैं।

जल का उपयोग नहाने धोने, कपड़ा साफ करने और भोजन पचाने आदि के काम में तो होता ही है। आयुर्वेदीय अधिकांश औषधियां-क्वाथ और अरिष्ट—बनाने में जल का खूब ही प्रयोग होता है। इसके अलावा अकेला जल भी औषधि रूप में व्यवहृत होता है!

बहुत से प्राकृतिक चिकित्सक यह समझते हैं कि जल चिकित्सा पश्चिम की उपज है। हमारी राय उनसे भिन्न है। हम यह मानते हैं कि आज से ३-४ सौ वर्ष पूर्व योरोप वालों ने जल का प्रयोग सीखा है। हमारे भारतवर्ष में न जाने कब से जल का प्रयोग औषधि रूप में हो रहा है। हां, यह बात अवश्य है कि भिन्न भिन्न देशों में विकास का क्रम एक तरह का नहीं होता।

लुई कुने के बहुत पहले योरोप में जल-चिकित्सा का जन्म हो चुका था, किन्तु उसका व्यापक प्रचार और प्रचुर प्रयोग लुई कुने ने ही किया। उन्होंने 'न्यू साइंस आफ हीलिंग' (नवीन चिकित्सा-विज्ञान) नामक पुस्तक लिख कर इस दिशा में प्रमुख कार्य किया है। लुइ कुने केवल ठंडे जल का ही प्रयोग अपनी चिकित्सा में करते थे। वही उन्होंने अपनी पुस्तक में भी लिखा। भारतवर्ष में जो प्राकृतिक चिकित्सक लुई कुने की प्रणाली के पक्षपाती हैं वे आज भी ठंडे ही जल का प्रयोग करते हैं, उसी को उचित समझते हैं।

लुई कुने साहब की प्रणाली अधूरी साबित हुई और अमेरिका आदि देशों में इस दिशा में नये प्रयत्न आरम्भ हुए। अमेरिका के सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक डा० केलाग ने 'रैशनल हाइड्रोपैथी' (विवेकात्मक जल-चिकित्सा) नामक पुस्तक लिखकर इस दिशा में विशेष उल्लेखनीय कार्य किया। उन्होंने उष्ण जल का भी प्रयोग किया। उन्होंने डिग्रियों में नाप नाप कर जल का प्रयोग किया और अपनी पुस्तक में उनका उल्लेख किया है।

आयुर्वेद में जो जल-चिकित्सा मिलती है वह एकांगी नहीं है। गरम और ठंडे दोनों तरह के जलों का प्रयोग मिलता है। हम वैद्य लोग दोनों तरह जल को औषधि रूप में काम में लाते हैं। यह क्रम विवेकपूर्ण भी है। हां, प्राचीन काल में कोई ऐसा यंत्र सम्भवतः नहीं था जिसके द्वारा पानी की गर्मी डिग्रियों में नापी जाती। यही कारण है कि चिकित्सक को ठंडे और गरम जल के प्रयोग के लिए अपनी बुद्धि का उपयोग करना पड़ता है कि कहाँ कितना ठंडा या कितना गरम जल काम में लाया जाय। प्राचीन काल में उस प्रकार की कोई नाप नहीं निश्चित हो सकी जैसी कि केलाग साहब ने की है।

घाव अच्छा करने के लिए जल का प्रयोग बहुत प्राचीन काल से भारतवर्ष में होता आ रहा है। गाय-बैलो के पांव में एक प्रकार का घाव हो जाया करता है उसे

'खांगना' कहते हैं। प्रत्येक किसान इस बात को जानता है और समय पर काम में लाता है कि पशु को जल में बाँध रखने से बढ़ कर उस घाव को अच्छा करने के लिए कोई उपाय नहीं है। सिट्स बाथ शिश्न स्नान के नाम से प्रसिद्ध है। शिश्न शब्द से ही 'सिट्स' शब्द निकला हुआ जान पड़ता है। इस स्नान के गुणदायक प्रभाव से लोग इतने प्रभावित हो चुके थे कि दिन भर में कई बार यह स्नान किया करते थे। इसके गुणों पर मुग्ध होकर ही इसे धार्मिक रूप दिया गया था और लोग प्रत्येक बार लघुशंका करने के बाद इन्द्रिय को धोया करते थे।

आयुर्वेद में एक अवगाहन क्रिया का वर्णन आया है। इसकी पूरी विधि हमने अपनी पुस्तक 'तपेदिक' में लिखा है। अवगाहन का शब्दार्थ होता है स्नान। यह अवगाहन पुराने रोगों को दूर करता है, बन्द नसों को शुद्ध करके खोलता है, नसों के भीतर के विकार को दूर करता है। अवगाहन के बाद मालिश का विधान है। इस अवगाहन क्रिया के ही अन्तर्गत कटि-स्नान और 'होल बाडी पैक' या 'चेस्ट पैक' को समझना चाहिए। इसके अतिरिक्त फोड़े फुंसी, घाव, जखम, दर्द आदि पर स्थानिक पट्टियों का प्रचार बहुत प्राचीन काल से है। जिन पद्धतियों और विधियों का प्रचार देश में है उन सब को आयुर्वेदीय विधि ही समझनी चाहिए, क्योंकि आयुर्वेद के अतिरिक्त ऐसी कोई अन्य विधि नहीं है जो देश के रक्त में घर कर सकी हो।

अवगाहन के लिए किसी पात्र मिट्टी, लकड़ी या धातु की कोष्टी—में गरम जल या ठंडा जल या दूध अथवा किसी औषधि का काढ़ा भर उसी में बैठते या लेटते हैं। चिकित्सक जिस तरह बतावे वैसे करना पड़ता है। इसी को अवगाहन कहते हैं।

किन किन रोगों में ठंडे जल का प्रयोग होता है और किन में गरम जल का, इसकी एक सूची हमें आयुर्वेदीय ग्रन्थों में मिलती है। परन्तु अवगाहन-क्रिया किन किन रोगों में कराई जाय इसकी सूची हमें आयुर्वेदीय ग्रन्थों में नहीं मिली। इसके दो कारण हो सकते हैं। पहला कारण यह हो सकता है कि चिकित्सक अपनी बुद्धि के अनुसार जहां उचित समझे वहां अवगाहन करावे। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि जिस प्रकार यज्ञ के विधान और योगिक क्रियाओं के विधान अलग अलग शास्त्रों में मिलते हैं, इन क्रियाओं में से बहुत सी रोग-शान्ति के लिये आयुर्वेदीय चिकित्सा में व्यवहृत होती हैं परन्तु उनका विस्तृत वर्णन आयुर्वेदीय ग्रन्थों में नहीं मिलता। इसी तरह सम्भव है अवगाहन क्रिया और जल-चिकित्सा के सम्बन्ध में अलग शास्त्र रहे हों और समय के प्रभाव से नष्ट हो गये हों।

अब तो जल चिकित्सा के बारे में ही भारतीय चिकित्सकों द्वारा अनेक प्रयोग हो चुके हैं। आयुर्वेद के विशेषज्ञों द्वारा यह चिकित्सा अपनाई जानी चाहिए और आयुर्वेद के इस खोये हुए अंग की पूर्ति करनी चाहिए।

(५४ पृष्ट से आगे)

कसरत नं० ४—पैरों में फासिला करते हुए सीधे खड़े हो जाइए। अब हाथों को कन्धों की सीध में ऊपर उठाइए फिर सिर लगा हुआ हाथ झुक कर पैरों के अंगूठों को छूना चाहिए। ध्यान रहे पैर के घुटने मुड़ेंगे नहीं। इसी क्रम से चार-पाँच बार करना चाहिए।

अब भी अगर पानी की थोड़ी बहुत गुंजाइश रह गई हो तो एक गिलास पानी और पी लेना चाहिए। कसरत शुरू करने पर एक जगह खड़े होकर कसरत नहीं करना बल्कि शीघ्रता के साथ चार-पाँच बार तेजी से चलकर करना ज्यादा अच्छा होगा। इसी बीच अगर पाखाना मालूम हो जाय तो टट्टी से निवृत हो लेना चाहिए। यदि टट्टी साफ नहीं होती अथवा देर में लगती है अथवा नहीं भी लगती तो घबराना नहीं चाहिए। पानी किसी न किसी रूप में बाहर निकल ही जायगा।

पेट की समस्त बीमारियों को दूर करने के लिए यह राम बाण है। इससे कब्ज, मंदाग्नि, पेचिश, अपच आदि जैसी बीमारियां तो चुटकी बजाते भगती हैं।

गजकरणी क्रिया

तैयार किया योग जल पी लेना चाहिए फिर धीरे से रबर का एक पतला ट्यूब मुंह के द्वारा पेट के कुछ भाग तक पास कर दीजिए। पेट से पानी धीरे धीरे उस ट्यूब के द्वारा बाहर आ जायगा और पेट का विजातीय द्रव्य बाहर निकल जायगा। इसके करने में आसानी होगी। शेष बातें पिछली क्रियाओं की ही तरह हैं।

इन क्रियाओं के साथ समुचित आहार का प्रयोग विशेष लाभकारी साबित होगा।

संक्रामक रोग तथा वैज्ञानिक जलोपचार

पृष्ठ ३३ का शेषांश

चाल हो जाता है और तब यह लसीका ग्रंथियों (Lympheties) के मार्ग से शीघ्रता के साथ फैलने लगता है।

शरीर के अन्य भागों की अपेक्षा चेहरे पर इसका अधिक असर पड़ता है। सूजन इतनी भयानक होती है कि आदमी का चेहरा पहचाना तक नहीं जा सकता। शरीर का तापमान बढ़कर १०४ और १०५ तक पहुंच सकता है। अगर इस अवस्था में समुचित रीति से कोई उपचार न हो तो वे रोगवाही कीटाणु बहुत उत्पात मचा सकते हैं और तब बहुत सी विषमताएं उत्पन्न हो सकती हैं। ऐसी अवस्था में रोगी को हृद्रोग, निमोनिया, अंत्रावरक झिल्लियों का प्रदाह (Peritonitis), गर्दनतोड़ बुखार (Meningitis) हो सकते हैं।

चिकित्सा—रोगी की चिकित्सा उपवास से आरम्भ की जाय और उसे केवल जल पीने को दिया जाय। लेकिन जल का परिमाण ८ पौण्ड (लगभग ४ सेर) से कम होना चाहिए। जितनी बार पेशाब हो उसका रेकार्ड रक्खा जाय। २४ घन्टे में होने वाले पेशाब की मात्रा ६४ औंस से कम होनी चाहिए। रोगी को प्रतिदिन भीगे तौलिये से स्नान और एनिमा (Douch) २ बार दिया जाय। पेड़ू पर दिन में ३ बार मिट्टी की ठंडी पट्टी और बुखार १०२ डिगरी से बढ़ने पर गीली चादर की पट्टी (Wet sheet pack) दी जाय। इस प्रकार तापमान को १०१ डिगरी या १०० डिगरी पर ला दिया जाय। लेकिन १०० डिगरी से कम नहीं।

जल में ताप का शोषण करने की विशेष क्षमता होती है। अतः शरीर के तापमान को २ या ३ डिगरी कम कर देने के लिए भी ठंडे पानी का एनिमा दिया जा सकता है। लेकिन इन समस्त प्रयोगों के बीच रोगी पर कोई श्रम नहीं पड़ना चाहिये। सभी प्रयोग बहुत आहिस्ते से करना चाहिए।

एनिमा तथा घर्षण-स्नान (Sponge Bath) का प्रभाव

जल पर रहते हुए उपवास आरंभ करते ही रोगी के शरीर के तन्तु विष तथा दूषित पदार्थ का बहिष्करण करने लगते हैं। यह दूषित अथवा विसदृश पदार्थ रक्त-नलिका में आता है और उसके अनन्तर यह ४ मल-विसर्जक (Eleminatory) अंगों—फेफड़े (Lungs) गुर्दे (Kidney) आँत (Intestine) और त्वचा (Skin) में पहुंचता है। इस प्रकार शरीर के भीतर से मल गैस तथा वाष्प-रूप में फेफड़ों से बाहर निकल जायगा। लवण गंधक (Sulphur) सोडियम फास्फेट (Sodium phosphate) जल और असाधारण अवस्था में पिक्रो टाक्सिन (picrotoxin), नीकोटीन (Nicotine), कैम्फर (Camphor) अमोनिया (Amonia) आदि बाकी ३ मल-विसर्जक अंगों द्वारा शरीर से बाहर निकल जाते हैं। त्वचा के ऊपर से इन सब विसदृश पदार्थों को साफ कर देने, रोम कूपों को साफ रखने और इस प्रकार त्वचा तथा रोम-कूपों को अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय बनाने का कार्य स्पंज-बाथ (Sponge-bath) अर्थात् भीगे तौलिये का स्नान करता है।

निराहार तथा रसाहार पर रहने के दिनों में साफ पखाना नहीं होता और इसके साथ ही साथ बड़ी आँत (Colon) में और भी अधिक विषाक्त पदार्थ अथवा मल आकर इकट्ठा हो जाता है। यदि एनिमा न लिया जाय तो इन विषाक्त पदार्थों का आँतें पुनः शोषण कर जायंगी और समूचे शरीर में जहर फैल जायगा। इसलिए आँतों से इस मल को बाहर निकाल देने के लिए एनिमा लेना निहायत जरूरी है।

जल का आन्तरिक प्रभाव

हम यह बता चुके हैं कि शरीर में एकत्र हुआ विषाक्त पदार्थ रक्त-संचालन-प्रणाली (Circulation) द्वारा खींच लिया जायगा और उसका कुछ अंश विसर्जन के लिए फेफड़ों में पहुंचा दिया जायगा। यदि पर्याप्त मात्रा में जल शरीर के अन्दर पहुंचेगा तो विषाक्त पदार्थों का जमाव कम होगा और गुर्दों को सक्रियतापूर्वक कार्य करने में सहायता मिलेगी और इससे रक्त-संचालन भी समुचित रीति से होने लगेगा और हृदय भी उत्तम अवस्था में

रहेगा। लेकिन अगर जल की मात्रा अपर्याप्त है तो यह जहर रक्त में रह जायगा, इससे गुर्दे को नुकसान पहुंचेगा और तब आगे चल कर हृदय तथा श्वास-प्रणाली को भी क्षति पहुँचेगी और रोगी के प्राण संकट में पड़ जायेंगे।

पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग

पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग सभी प्रकार के प्रदाह की अवस्थाओं में, विशेषतः आमाशय की झिल्लियों (Abdominal viscera) के प्रदाह में, नितान्त आवश्यक है। इससे आमाशयिक रक्त-संचरण (Abdominal Circulation) में वृद्धि होती है। मिट्टी में शोषण-शक्ति (power of absorption) भी होती है। अतः यह विषाक्त द्रव्य का शोषण कर लेती है। इसी प्रकार स्ट्रेप्टो कोकाई कीटाणु जनित सभी रोगों में इस उपचार-विधि से काम लिया जा सकता है, जिसका परिणाम बहुत उत्तम होगा।

आंत्रिक ज्वर (Enteric fever)

यह लक्षण टायफायड के कीटाणुओं (B. Tiphosus) पैरा टायफायड (ए० बी० सी०) के कीटाणुओं तथा संक्रामक ज्वर (B. Coly) के कीटाणुओं की दूषित क्रियाशीलता के फलस्वरूप प्रकट होता है। इन सभी रोगों का उपचार बहुत आसान है, यदि यह आरम्भ में ही समुचित रीति से किया जाय, अन्यथा रोग के गम्भीर रूप धारण कर लेने की बराबर सम्भावना रहती है जिसके फलस्वरूप रोगी का प्राणान्त तक हो सकता है।

निदान—आंत्रिक ज्वर कई प्रकार के होते हैं जिनमें ज्वर का क्रमिक आक्रमण (Cradual onset), अविराम ज्वर (conlinued pyrexia), असाधारण पतले दस्त, पेट का फूल जाना, शरीर पर लाल चकत्ते पड़ जाना, (Rose rash), [illegible] का बढ़ जाना आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

इन अवस्थाओं में यदि रोगी का समुचित रीति से उपचार न किया गया तो उसकी अवस्था विकट हो सकती है और तब उसे ब्रांको-निमोनिया (Brancho-pnemonia), लोबर निमोनिया (Lober pnemonia) ब्रोंकाइटिस (Bronchitis) रक्त-संचय (Congestion), गलकोष-प्रवाह (pharnyngitis) आदि हो सकते हैं।

लेकिन अब तक जिन-जिन रोगियों पर नैसर्गिक विधियों का प्रयोग किया गया है उनमें से किसी को भी इस प्रकार की किसी विषम अवस्था का सामना नहीं करना पड़ा और वे बिलकुल अच्छे हो गए।

चिकित्सा—उबाल कर ठंडा किया हुआ पानी रोगी को खूब पिलाया जाय, प्रतिदिन प्रायः ६ पौंड (लगभग ३ सेर) तक। दिन में दो बार एनिमा और घर्षण-स्नान (Spong Bath) दिया जाय। पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी (जो हर पाँच से १० मिनट बाद बदल दी जाय। १०२ डिगरी से अधिक बुखार होने पर गीली चादर की पट्टी (Wet sheet pack) भी दी जाय जिससे तापमान १०१ डिगरी पर आ जाय। रोगी को कमरे में न रखकर बरामदे में ही रखें, जहां पर वायु का संचार अच्छी तरह होता रहे। अगर गरमी के दिन हों तो रात में रोगी को बाहर मैदान में सुलावें।

आहार—नारंगी या मोसम्बी के रस और नीबू के रस के सिवाय रोगी को और कुछ न दिया जाय। ऊपर बताए गए उपचार-क्रम को तब तक जारी रक्खें, जब तक रोग के लक्षण दूर न हो जायं। अगर रोगी का इस विधि से उपचार किया जाय तो खतरे की कोई गुंजाइश नहीं हो सकती और उसे पूर्ण नीरोग हो जाना निश्चित है। सेवाग्राम आश्रम में इसी विधि से इस तरह के समस्त रोगियों का उपचार किया गया और मैं यह कह सकता हूँ कि सभी मामलों में इस उपचार-क्रम का परिणाम अत्यन्त आश्चर्यजनक एवं उत्साहवर्धक हुआ है।

सभी प्रकार के आंत्रिक ज्वर (Enteric fever) में, टाइफस के केस में भी, उपचार की विधि एक ही है। टाइफस के उपचार के सम्बन्ध में मैं यहाँ पर अपना एक निजी अनुभव दे देना चाहता हूँ, जो मुझे सेवाग्राम में श्रीमती किशोर लाल के उपचार के समय, जो गत नवम्बर मास में टाइफस से पीड़ित हो रही थीं, प्राप्त हुआ।

बीमारी के प्रथम सप्ताह में उन्हें कुछ आराम भी मालूम हुआ लेकिन उसके बाद एकाएक उनके शरीर में विष फैलने के लक्षण प्रकट होने लगे और उनकी अवस्था बहुत चिन्ताजनक हो गयी। उन्हें सीबा ज़ोल, (ciba-

zol), उन्हें एम० बी० ६९३ (M. B. 693), सल्फा गुइनाडिन (Sulpha guanidine) आदि सभी गंधक (Sulpher) से तैयार की गई दवाएं सोडा बाई कार्ब (Soda bicarb) तथा अन्य क्षारीय सम्मिश्रणों (Mixtures) के साथ दी गयी थीं।

अन्त में उनकी अवस्था बहुत चिन्ताजनक हो जाने पर दवाएं बन्द कर दी गयीं और उनका पूर्ण रूप से नैसर्गिक उपचार आरम्भ हुआ। उनका उपचार क्रम वही रक्खा गया जैसा कि मैं ऊपर बता चुका हूँ और इसी से वे पूर्ण स्वस्थ हो गयीं। इसी प्रकार ४ अन्य रोगियों का भी सफलतापूर्वक उपचार किया गया था।

१९४४ में टाइफस के एक रोगी का भी इसी नैसर्गिक उपचार पद्धति से इलाज किया गया। आरम्भ में उस रोगी ने भी डाक्टरों की दवाइयां खायी थीं और उसकी भी अवस्था बहुत गम्भीर तथा चिन्ताजनक बन गयी थी। लेकिन ज्यों ही उस रोगी को प्रकृति की शरण में ला दिया गया, उसकी हालत सुधरने लगी और वह क्रमशः पूर्ण नीरोग हो गया।

(B. Coliबी०) कोलाई कीटाणु-जन्य रोग

इस रोग विशेष का जल चिकित्सा पद्धति से बड़ी आसानी के साथ इलाज किया जा सकता है। सेवाग्राम में श्री प्यारेलाल की बीमारी के समय बापू जी ने जो प्रयोग किए थे और उससे मुझे जो निजी अनुभव प्राप्त हुआ उसका उल्लेख मैं यहाँ पर कर देना चाहता हूँ।

एक बार श्री प्यारेलाल सेवाग्राम आश्रम में संक्रामक ज्वर (B. Coli) कीटाणुओं के संक्रमण से पीड़ित हो रहे थे और बापू जी की निगरानी में उनका उपचार हो रहा था। उनके उपचार का मुख्य क्रम था आहार के रूप में फलों का रस, न्यूट्रल बाथ। एनिमा, और स्पंज बाथ का क्रम भी नियमित रूप से चल रहा था। इस उपचार क्रम से कुछ ही दिनों में वह पूर्ण स्वस्थ हो गए थे। न्यूट्रल बाथ के सम्बन्ध में यह ध्यान रहे कि जल का तापमान शरीर के तापमान से एक डिगरी कम होना चाहिए।

शरीर-प्रणाली से विषाक्त पदार्थों का शोषण तथा बहिष्कार करने के अलावा जलोपचार का एक विशेषगुण यह है कि यह शरीर-प्रणाली को अपने अन्दर एक प्रकार का विष-प्रतिरोधक (Antitoxin) द्रव्य तैयार करने में सहायक होता है। इस प्रकार इस जहर का प्रतिकार करने के लिए रोगी को बाहर से कोई खास दवा (Auto-vaccine) खिलाने की जरूरत नहीं रहती। इस रोग विशेष में एलोपैथ लोग आमतौर से आटो वैक्सीन रोगी को खिलाते हैं, लेकिन इसका प्रभाव नगण्य ही होता है।

मैंने स्वयं इस रोग विशेष से पीड़ित होने वाले रोगी का कुछ फेर-बदल के सहित जल-चिकित्सा पद्धति के अनुसार उपचार किया है और इसका परिणाम आश्चर्यजनक हुआ है।

जिन अन्य रोगियों पर मैंने जलोपचार की विधियों का प्रयोग किया है उनमें से कुछ मूत्र-ग्रंथि का प्रदाह (Nephritis) तथा मूत्राशय का प्रदाह (Cystitis) के रोगी थे। इन रोगों के उपचार के सम्बन्ध में मैं यह बता देना चाहता हूँ कि इस तरह के रोगियों को जलोपचार के साथ-साथ क्षारीय (Alkaline) आहार पर रखने की आवश्यकता होती है, अर्थात् उनके आहार में आमूल परिवर्तन कर देना आवश्यक होता है।

गले की झिल्लियों का प्रदाह (Diptheria)

इस रोग विशेष पर जलोपचार की विधियों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है। अन्तर दे-दे कर गरम और ठंडी पट्टी, बुखार को काबू में रखने के लिए गीली चादर की पट्टी (Wet sheet pack) स्थानिक वाष्प-स्नान (Local steam bath) घर्षण स्नान (Sponge bath) और एनिमा के साथ-साथ वैज्ञानिक आहार, मुख्यतः फलों तथा शाक-भाजियों के रस, पर रोगी को यदि रक्खा जाय तो शरीर प्रणाली की रोग-निवारक शक्ति में वृद्धि होगी, मल का समुचित रीति से विसर्जन होगा और वह शीघ्र आरोग्य लाभ कर लेगा।

लेकिन इस रोग के सम्बन्ध में सावधान रहने की जरूरत है, क्योंकि इस रोग के कीटाणु विशेष रूप से जहर फैलाने वाले (Exotoxic) होते हैं और इनकी क्रियाशीलता बहुत उग्र होती है। अतः चिकित्सक का

प्रत्येक कार्य बड़ी सावधानी के साथ और सुनिश्चित होना चाहिए अन्यथा रोगी के प्राणान्त हो सकते हैं।

हैजा (Cholra)

हैजा एक बहुत ही तीव्र तथा संघातिक रोग है। डा० कोडरिन (Dr. Kodrin) ने १८८३ में मिस्र में यह अन्वेषण किया था कि यह रोग 'कामा बैसिली', (हैजे का कीटाणु विशेष) की वृद्धि के फलस्वरूप होता है।

लक्षण—हैजा होने पर चावल के धोवन की तरह बहुत अधिक पतले दस्त और कै होते हैं। रोगी के शरीर में दर्द के साथ ऐंठन होने लगती है, रोगी की शक्ति शीघ्रतापूर्वक क्षीण होती जाती है और रक्त से जलीय अंश का शोषण (Dehydration) होने तथा विसदृश पदार्थों की वृद्धि होने के कारण रोगी की शीघ्र मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा—इस रोग का एलोपैथिक उपचार भी जल-चिकित्सा पर आधारित है अर्थात् इसमें डाक्टर लोग वैज्ञानिक रीति से परिशुद्ध किए हुए जल (Distilled water) को लवण के घोल में मिला कर या तो खाल के अन्दर या नसों के रास्ते पानी चढ़ाते हैं। कुछ अवस्थाओं में इन दोनों विधियों से वे काम लेते हैं और रोगी को नींबू का रस या प्याज का रस पिलाते हैं। जल का यह प्रयोग जल-चिकित्सा

(आगे पृष्ठ ६२ पर)

जल-चिकित्सा का सिद्धान्त

(१६ पृष्ठ से आगे)

सब भयानक रोग इसी प्रकार होते हैं। किंतु जब हम बार-बार प्रकृति की इस सफाई की क्रिया को दवा अथवा किसी अन्य भांति से दबा देते हैं या किसी अन्य किसी कारण से जब शक्ति इतनी कम हो जाती है कि शरीर सुधारने के किसी प्रयत्न में सफल नहीं हो पाता तब रोग की अवस्था भीषण स्वरूप धारण कर लेती है। अस्तु जितने रोग हैं वे सब शरीर की एक ही अवस्था के विभिन्न स्वरूप हैं।

जिस प्रकार रोग एक ही होता है उसी प्रकार उसका उपचार भी एक ही होता है। शरीर में गंदगी और विष का एकत्रित हो जाना ही रोग का मूल कारण हुआ करता है तब ऐसी स्थिति में उसका क्या उपचार चाहिए? विधिपूर्वक शरीर की गंदगी और विष की सफाई करना ही उपचार है। अपने को स्वस्थ रखने के लिए हम सदा औषधियों का प्रयोग नहीं करते। प्रकृति शरीर के विषाक्त पदार्थों को मल-मूत्र, स्वेद और श्वास द्वारा बाहर निकाल दिया करती है और इस प्रकार हमें रोगमुक्त रखती है। जब हम बीमार होते हैं तो हम अपने सब रोगों का उपचार कर सकते हैं। जल-चिकित्सा में जिसे बहुधा प्राकृतिक चिकित्सा के नाम से भी पुकारते हैं, टब-स्नान-वाष्प-स्नान, गीले कपड़े की पट्टी (Wet sheet pack) द्वारा, जलपान प्राणायाम, फलाहार और दुग्धाहार को तथा अन्य उपायों को प्रयोग में लाते हैं।

हम अभी ऊपर कह चुके हैं कि यह शरीर आत्मा चालित एक यंत्र है। इसमें यथासंभव अच्छा करने और रक्षा करने के सभी साधन मौजूद हैं। हमारे रक्त में जो, एक प्रकार के सफेद कीड़े होते हैं, वे बीमारी के कीड़ों को, जो रक्त में किसी प्रकार प्रविष्ट हो जाते हैं, मार डालते हैं। लीवर सदा रक्त को साफ करने के काम में लगा रहता है हमारे शरीर में इस प्रकार का प्रबंध रहता है जिससे शरीर के विभिन्न रसों का अनुपात ठीक रहे। रक्त में क्षारीय रस के पर्याप्त मात्रा में होने से किसी बीमारी का भय नहीं रहता। जब प्रकृति का यह रक्षात्मक साधन शरीर में विषाक्त पदार्थों के जमा हो जाने से टूट जाता है तभी हमें बीमारी हो सकती है। प्राकृतिक प्रयोग जैसे वाष्प-स्नान एवं गीली पट्टी (Wet sheet pack), जो शरीर के विषों को दूर करने के प्रयोग में लाये जाते हैं, रक्त को भी शुद्ध करते हैं और उसे तथा शरीर के अन्य रक्षात्मक तंतुओं को मजबूत बना कर हमें स्वस्थ तथा रोग मुक्त रखते हैं। शरीर के स्वस्थ और रोगों को अच्छा करने के लिए आज कल शीतल जल से स्नान, वायु स्नान और गर्म तथा ठंढी पट्टी का क्रमिक प्रयोग इत्यादि को प्रयोग में लाया जाता है।

इस प्रकार जब शरीर स्वच्छ और शक्तिशाली हो जाता है तो हमें कोई रोग नहीं होता।

सौर जल-चिकित्सा (Chromo-Hydro-pathy)

श्री श्रीकृष्ण शर्मा, बी० ए०, एन० डी० डी० वाई

'The water saw its master's face and tblushed'—Byron

'जल निधि ने अपने नियन्ता की ओर दृष्टिपात किया और वह पानी-पानी हो गया !'—बायरन

जल का सब से प्रधान गुण है ग्रहण शीलता—उसका जिस पदार्थ से सम्मेल होता है, उसका वह गुण ग्रहण कर लेता है। इसे विविध रूपों में प्रयोग में लाए जा सकने के कारण भी इसका महत्व एवं उपयोगिता प्रकृति के अन्य तत्वों से अधिक बढ़ गयी है। सूर्य-रश्मियों के सम्मेल से यह हमारे लिए कितना जीवनदायक बन जाता है, इसकी जानकारी आपको इस लेख से प्राप्त होगी। लेखक ने जिस ढंग से अपने विषय का निरूपण एवं प्रतिपादन किया है, वह बहुत ही प्रभावोत्पादक एवं हृदय-ग्राही है।—सं०]
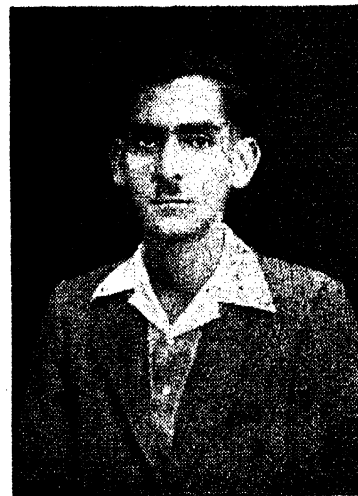
गवान भास्कर की जीवनदायिनी स्वर्णिम रश्मियों का हमारे स्वास्थ्य, आरोग्य एवं जीवन पर कितना गहरा प्रभाव पड़ता है, यह बात अब कहने की नहीं रही, यह तो अब विज्ञान की कसौटी पर कसी जा कर निर्विवाद सिद्ध हो हो चुकी है। आधुनिक विज्ञान की गंभीर, विश्लेषणात्मक तथा पारदर्शी आंखों ने जब रहस्य के परदे को चीर कर तथ्य का अवगाहन किया तो हृदयाकर्षक इन्द्रधनुषी परिधान से सुसज्जित होकर नर्तन करती हुई रवि-रश्मियां इतने सुन्दर रूप में दिखायी पड़ीं कि संसार की विस्मय-विस्फारित नेत्रों में चकाचौंध भर उठा—वह विस्मित, आश्चर्य-चकित बन बैठा ! सप्त रंगों के मधुमय जीवन गान ने बहरे कानों में भी अपनी नैसर्गिक संगीत-लहरियां भर दीं, अंधों को भी उस दिव्य ज्योति का आभास मिला—जीवन का तिमिरावरण हट गया, 'सत्यं', शिवं सुन्दरं' के दर्शन हुए। इन रहस्यमय संदेशवाहिकाओं ने इस धरातल पर जहाँ-जहां प्रवेश किया, एक क्रान्ति सी मचती गयी, सोते हुए संसार को एक नयी आशा, एक नये सन्देश और एक नयी सृष्टि का प्रादुर्भाव होता दिखाई दिया !

यह सूर्य की ही महिमा है जो उसकी सुनहरी किरणें सागर से वारि-बिन्दु खींचकर अमृत-वर्षा करती हैं और ग्रीष्मताप से झुलसी हुई वसुन्धरा पर अपनी रंगीनियों की माया बिखेर देती हैं। कल-कल नाद करता हुआ निर्झर, लबालब भरे जलाशय, लहराते हुए शस्यश्यामल खेत, रंग-बिरंगे फल-फूल, सभी समवेत स्वर से सूर्य की ही गौरव-गरिमा का गान करते हैं। जगत का संचालन करता हुआ वह विश्वात्मा—सूर्य—अपनी जगह पर अटल और स्थिर है। किन्तु जल चन्द्रमा की भांति शीतल और चंचल। रवि-रश्मियां सूक्ष्म हैं, तो जल स्थूल। दोनों की असमानता या विपरीतता (Contrast) ही दोनों के मेल या सम्पर्क की हेतु है। दोनों का संगम या समागम अनिवार्य है।

जल यद्यपि सूक्ष्म तत्त्व नहीं, किन्तु वह स्वतः सूक्ष्म शक्तियों का वाहक अवश्य है। विद्युत, चुम्बक, प्रकाश अथवा वायु के अतिरिक्त प्राण-शक्ति धारण करने की क्षमता जल में विद्यमान है। साधारण जल को कुछ समय के लिए अगर सूर्य के प्रकाश में रख दिया जाय तो उसमें चुम्बक शक्ति का संचार हो जायगा, जो दुर्बल, शक्ति-क्षीण, रोग-पीड़ित व्यक्तियों के लिए अमृत-तुल्य है। जल को गरम करने से उसमें निहित वायु का अंश कम हो जाता है और अगर उसी जल को दो बर्तनों में उलट-पुलट कर रख दिया जाय तो वायु का संचार (विशेषतः ओषजन—आक्सीजन—का संचार) हो उठने से वह अधिक गुणकारी तथा स्वादिष्ट बन जाता है। विद्युत्-शक्ति के सम्बन्ध में पाठकों को शायद डा० नेहरू के आश्चर्यजनक प्रयोग याद होंगे। वह प्याज की जड़ों अथवा विद्युत्-धारा के प्रवाह से जल को औषधिगुण से समायुक्त कर देते थे। प्राण-चिकित्सकों का भी यही कहना है कि जल में प्राण-शक्ति का संचार किया जा सकता है और इस प्रकार से तैयार किया गया सप्राण जल अनेक प्रकार के रोगों का उन्मूलन करके रोगी को नया जीवनदान दे सकता है।

प्रकाश-शक्ति के अंतर्गत रंग-शक्तियों से भी जल को संचारित किया जा सकता है। रंगों की सहायता से जल को अत्यन्त गुणकारी तथा उसके प्रभाव को स्थायी बनाया जा सकता है। उदाहरण के लिए दो दृष्टान्त लीजिए। सुबह उठने पर कार्य-शिथिल आमाशय अथवा कोष्ठ को सतेज एवं क्रियाशील बनाने के लिए गरम जल का प्रयोग किया जाता है। हमको लाभ अवश्य होता है, परन्तु हमारे लिए प्रति दिन करना आवश्यक होता है। कारण यह कि इसका प्रभाव स्थायी नहीं होता। किन्तु यदि पीले रंग की बोतल में तैयार किया हुआ जल अल्प मात्रा में ही एक दिन, और जीर्ण रोग की अवस्था में कुछ और समय तक, प्रयोग किया जाय तो कोष्ठ इतने सक्रिय एवं सतेज हो जाते हैं कि लम्बे समय तक के लिए उनसे फुरसत मिल जाती है।

इसी प्रकार प्रदाह युक्त आमाशय को शान्त करने के लिए बार बार ठंडे जल के प्रयोग को दुहराने के बजाय यदि केवल दो-तीन बार नीली बोतल का पानी दे दिया जाय तो यह तकलीफ बिलकुल जाती रहेगी। इन दोनों अवस्थाओं में रंग के द्वारा जल में विशिष्ट शक्ति का संचार हो जाता है जो अपना अलग-अलग महत्व रखती है।

(पृष्ठ ६० से आगे)

का प्रमुख अंग है, पर हां एलोपैथ-डाक्टरों का दृष्टि, कोण प्राकृतिक चिकित्सा पद्धित से भिन्न अवश्य है। मेरी राय में इस रोग का जल-चिकित्सा पद्धति के अनुसार बड़ी सफलतापूर्वक इलाज किया जा सकता है। जैसे—गरम स्नान, पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग तथा घर्षण-स्नान का प्रयोग। इन सारी विधियों को तब तक जारी रखना चाहिए जब तक रोगी की अवस्था सामान्य न हो जाय। मिट्टी की पट्टी देने के बाद शुष्क-घर्षण स्नान (Dry friction bath) तथा कटि-स्नान (Hip bath) भी देना चाहिए।

गरम स्नान के बीच रोगी की छाती तथा हाथ, पैर कम्बल से अच्छी तरह ढक कर रखना चाहिए।

आहार—रोगी को सिर्फ नींबू का रस और प्याज का रस देना चाहिए। जितना रस हो उसमें उतना ही पानी मिला दिया जाय और उसे रोगी को पिलाया जाय।

रोगी की अवस्था सामान्य हो जाने पर उसे न्यूट्रल बाथ (Neutral Bath) देना आवश्यक है। इस विधि से प्राकृतिक चिकित्सकों ने हैजे के रोगियों का सफलतापूर्वक उपचार किया है।

१६४५ में मध्यप्रान्त में डा० सुशीला नायर के नेतृत्व में जो हैजा निवारण आन्दोलन में कैम्प खोला गया था उसमें मुझे जब भी ऐसे रोग मिले जिनके गुर्दों ने समस्त एलोपैथिक दवाइयों के प्रयोग करने पर भी अपना काम करना बन्द कर दिया तो मैंने उन पर जल-चिकित्सा का प्रयोग किया। आरम्भ में मैंने जल-चिकित्सा के प्रयोग सेवाग्राम के निकट के एक गांव में संयोगवशात् किया था, उसके अनन्तर मध्यप्रांत में तो मैंने जल-चिकित्सा का प्रयोग बहुतेरे, रोगियों पर किया जिसका परिणाम बहुत ही आश्चर्य-जनक रीति से सन्तोष प्रद हुआ।

आखिर रंग भी तो प्रकाश का ही एक अंश है। जल के विविध शक्तियों से प्रभावित होने का कारण है उसकी निगुणता [Neutrality]—यह न गर्म है, न ठंडा। इसका कोई स्वतंत्र रूप, रंग या स्वाद नहीं। यह शीघ्र ही दूसरे की विशेषता अपने में खींच लेता है। इसलिए सूर्य-रश्मि चिकित्सा में जल का महत्वपूर्ण स्थान है। यह सूर्य की संयुक्त शक्ति के अतिरिक्त पृथक-पृथक शक्तियों को भी धारण कर सकता है। सूर्य के दृश्य किरण-चित्र के सात रंगों में से किसी भी रंग को पारदर्शक माध्यम के द्वारा जल में सम्पुटित किया जा सकता है। कहने का मतलब यह है कि लाल रंग के शीशे के द्वारा सूर्य की केवल लाल रंग की प्रकाश-लहरियाँ ही छन सकती हैं, शेष छः रंगों की लहरियों का शोषण हो जाता है।

यों तो जल के बदले तेल, मिश्री, और नमक को भी सूर्य भावित (Charge) किया जा सकता है, परन्तु जल तैयार करने में चार विशेष सुविधाएं हैं जो अन्य पदार्थों में नहीं पाई जातीं। पहली बात तो यह कि जल सर्व-व्यापक होने के कारण बिना किसी प्रकार की कठिनाई के मिल सकता है। हमारे भारत में ऐसे लाखों निर्धन व्यक्ति हैं जिन्हें तेल और मिश्री मिलना भी दूभर होता है। उनके लिए तो जल तो एक दैवी वरदान के रूप में है। जल सभी के लिए समान रूप से सुलभ है। दूसरे यह कि अन्य पदार्थों की अपेक्षा जल कम समय में तैयार होते हैं। मिश्री या तेल ३० दिन से ६० दिन में सूर्य-भावित होते हैं जल केवल ४ से ६ या ८ घन्टे में तैयार हो जाता है। तीसरे, जल का प्रयोग आन्तरिक और वाह्य दोनों रूपों में हो सकता है। जल पीने के लिए भी दिया जा सकता है और पट्टी या पैक (pack) के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। चौथे जल में कोई स्थल विशिष्टांश (physical residue) नहीं होता जो शरीर में जाकर किसी प्रकार की हानि पहुंचा सके। मिश्री की शर्करा नाजुक अवस्था में अल्प मात्रा में दिए जाने पर भी रोगी को हानि पहुँचा सकती है परन्तु जल के प्रयोग के सम्बन्ध में इस तरह की कोई आशंका नहीं की जा सकती।

जल तैयार करने की विधि—जल को सूर्य के रंगीन प्रकाश में रखने से वह विशेष गुणकारी हो जाता है। यह गुण सूर्य-रश्मि के किसी विशिष्ट रंग की लहरियों (Vibrations) के जल में समाविष्ट हो जाने के फल-स्वरूप उत्पन्न होता है। जिस प्रकार ग्रामोफोन के रेकार्ड में नाद-कम्पन अंकित हो उठते हैं ठीक उसी प्रकार जल में भी रंग लहरियाँ प्रविष्ट हो जाती हैं। इस प्रकार से तैयार किए गए जल को रंग के अनुसार नीला, हरा या लाल जल कहते हैं।

जिस रंग का जल तैयार करना हो उसी रंग की बोतल खूब साफ कर लेनी चाहिए। अगर हो सके तो शीशे के काग लगाने चाहिए अन्यथा बाजारों में बिकने वाला साधारण काग से भी काम चलाया जा सकता है। शुद्ध ठंडे जल को उस बोतल में तीन-चौथाई भाग तक भर कर काग कस कर लगा देना चाहिए। इसके लिए वर्षा का जल श्रेष्ठ होता है, क्यों कि वह स्वच्छ होने के अतिरिक्त दीर्घकाल तक खराब नहीं होता। उसके अभाव में नदी या कुएं का जल भी प्रयोग में लाया जा सकता है। इस जल को छान या उबाल कर साफ कर लेना चाहिए। शहरों में नल का पानी ही ठीक होगा। बोतल को सदैव किसी काठ के टुकड़े पर रखना चाहिए।

सूर्य-प्रकाश में ४ से ६ घन्टे तक रखने से वह जल तैयार हो जाता है। सूर्य की रोशनी में जल देर तक रखने से अधिक गुणकारी होता है। नीली बोतल में तैयार किया गया जल पीली या लाल बोतल में तैयार किए जल की अपेक्षा अधिक दिनों तक उपयोगी बना रहता है। नीली बोतल का जल दो सप्ताह तक काम में आ सकता है परन्तु लाल या पीली बोतल का जल चार या पाँच दिन बाद बदल देना अच्छा है।

लाल और बैगनी रंग की बोतलें बहुत कम मिलती हैं। परन्तु उनके अभाव में अगर उस रंग का काँच (Glass-sheet) मिल जाय तो किसी शीशे या चीनी मिट्टी के बर्तन के ऊपर उस कांच को रख कर वही गुण प्राप्त किया जा सकता है जो इस रंग की बोतल का होता है। अगर यह भी प्राप्त न हो तो उसी रंग का सिलोफाइन (Cellophine) कागज, जो बोतलों के ऊपर लपेटा जाता है, काम में लाया जा सकता है।

उपरोक्त रीति से तैयार जल की एक या दो औंस खूराक एक व्यक्ति के लिए पर्याप्त होती है। यह रोग अथवा रोगी की

अवस्थानुसार दिन में ३, ४ या ६ बार तक दिया जा सकता है। परन्तु समय कम रहने पर उसी अनुपात से जल की मात्रा भी कम कर देनी चाहिए। बच्चों, बूढ़ों तथा अशक्त रोगियों के लिए एक चम्मच जल काफी है। तीव्र रोगों में हमें इसे कई बार देना चाहिए और इसे तब तक जारी रखना चाहिए जब तक कि रोग के लक्षण शान्त न हो जायँ।

विविध प्रकार के जल : उनके गुण तथा उपयोग

नील गगनांगन में विहार करने वाला सूर्य केवल गरमी ही नहीं बरसाता, उन शीतल किरणों को भी बिखेरता है जिनका अप्रत्यक्ष अनुभव किसी वृक्ष की हरी पत्तियों की सुखद छाया में ही कर सकते हैं। हरी पत्तियों में रवि की वे प्रखर किरणें अपनी उष्णता तिरोहित कर हरी-नीली प्रकाश-लहरियों का सुखद वितान तान देती हैं। क्लान्त पथिक इस शीतल छाया के लिए भ्रमवश तरु-पल्लव के ही प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है। वह भूल जाता है कि उसे यह शीतल वृक्ष की लहलहाती हुइ पत्तियाँ नहीं, सूर्य की वे शीतल रश्मियाँ ही प्रदान कर रही थीं!

वैज्ञानिक प्रयोगों एवं विश्लेषणों से यह प्रकट हुआ है कि इन्द्र धनुष के सात रंगों में से तीन रंग शीतल, तीन उष्ण और उनके बीच में हरा रंग तटस्थ है—न गर्म, न ठंडा। किरण-चित्र के एक ओर तो बैंगनी, नीला और गहरा नीला रंग शीतल गुणकारक और दूसरे वर्ग के रंग उष्ण प्रकृति के हैं।

व्यावहारिक प्रयोग में केवल ५ रंग मुख्य माने गए हैं, जिनका चिकित्सा की दृष्टि से उपयोग होता है। बैंगनी और लाल रंग केवल प्रकाश के ही रूप में बहुधा प्रयोग में लाए जाते हैं, जल के रूप में बहुत कम। कारण यह कि इन दो रंगों की बोतलें बहुत कम मिलती हैं। मैंने स्वयं बैंगनी रंग की बोतल अब तक नहीं देखी है।

नीले बोतल में तैयार किये गए जल में नीले रंग के सभी गुण आ जाते हैं। नीला जल भी नीले रंग की तरह शीतल और कीटाणनाशक है। डा० बैबिट (Babbit) ने नील रंग के इस अद्भुत एवं रहस्यमय गुण पर विशेष रूप से जोर दिया है। उष्ण-प्रधान देशों के लिए तो वरदान के रूप में है। उष्ण-प्रधान देशों में ही संक्रामक रोगों का बहुधा प्रकोप होता है, क्योंकि गर्मी के ही कारण रोगाणु (Micro organism) अनगिनती संख्या में उत्पन्न होते हैं। तापमान के शीघ्र-परिवर्तन से उद्वेग-क्रिया प्रचण्ड हो उठती है, जिसके कारण हैजा, मलेरिया, प्लेग जैसी महामारी का प्रकोप अधिक होता है। हमारे देश में अगर इन बीमारियों के प्रकोप के दिनों में नीले रंग का प्रयोग जल के रूप में किया जाय तो इससे रोग-संतप्त जनता का कल्याण होने के साथ धन के अपव्यय से बहुत अधिक रक्षा भी हो सकती है।

श्री ज्वाला प्रसाद ने ग्रीष्म ऋतु में हैजे और लू से बचाव के लिए नीले जल को एक महौषधि बताया है। कुत्तों को अगर नीला जल दिया जाय तो उनके पागल होने की सम्भावना ही न रहे। चिकित्सा के निवारणात्मक पहलू (Preventive side) की दृष्टि से नीले जल को बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

नीले जल का आन्तरिक प्रयोग हैजा, संग्रहणी, पेचिश ज्वर, पीलिया इत्यादि में होता है। ज्वर की दशा में बहुत सावधान से जल देना चाहिए। ज्वर को कभी दबाने की चेष्टा न करनी चाहिए। केवल तीव्र लक्षणों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। प्यास, कै और दस्त की अवस्था में जरूरत से ज्यादा जल की मात्रा देना ठीक नहीं। नीले जल का वाह्य प्रयोग हर प्रकार के जख्म, चोट, वेदना (दांत, सिर दर्द इत्यादि) में किया जाता है। जहरीले जानवरों के काटने पर भी यह धोने और गीली पट्टी बांधने के काम आता है। यह दर्द और जलन को शीघ्र दूर कर देता है और खून बन्द करने में भी सहायक है।

हलका नीला रंग गर्मी को शीघ्र कम कर देता है। क्योंकि इसमें शीतलता अधिक होती है। परन्तु जब फेफड़े के रोग जैसे खांसी, कास, दमा इत्यादि या आँख, कान, जैसे नाजुक अवयवों के रोगों में भी इसका प्रयोग होता है तो वह इतनी शीतलता सहन नहीं कर सकते। उनको थोड़ी उष्णता की भी आवश्यकता होती है। जहां ज्वर और खाँसी दोनों उपस्थित हों वहां हलका नीला रंग हानि भी कर सकता है। ऐसी अवस्थाओं में गहरा नीला (Indigo) रंग गुणकारी सिद्ध होता है। गहरे नीले में लाल रंग की हलकी छवि रहती है जो अत्यधिक शीतलता को कम कर देती है।

सूखी खाँसी पर गहरे नीले जल का सफल प्रयोग कर के मैंने देखा है। जुकाम के दब जाने से या किसी गर्म दवा के कारण अगर कफ सूख गया हो तो यह जल शीघ्र ही कफ को ढीला कर के बाहर फेंक देता है। यह प्रभाव के गीली पट्टी (Wet pack) के समान होता है।

इसका आन्तरिक प्रयोग फेफड़े के सभी रोगों पर किया जा सकता है। प्रारम्भिक दमा, कूकरखांसी, पसली चलना, निमोनिया और क्षय रोगों में भी इसका प्रयोग हितकारी होता है मन्दाग्नि, जिसमें पित्त का प्रयोग विशेष होता है, इस जल के पीने से शान्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त आंख, कान और नाक की बीमारियों में—जैसे आँख का जाला, बहरापन, नाक से खून गिरना इत्यादि — यह प्रयोग किया जाता है। नक्सीर फूटने पर जल को सुड़कना चाहिए और जल में कपड़ा तर कर के दोनों आँखों के बीच रखना चाहिए।

बैंगनी, नीला और गहरा नीला उच्चकोटि के रंग है। इनका केन्द्र सूक्ष्म जगत में है। आकाश से इनकी वर्षा होती है। जब हम हरे रंग पर आते हैं तो हमें स्थूल जगत का भान होने लगता है। हरा प्रकृति का रंग है। यह अधिक परिचित सा रंग हमें संतुलित शक्ति और नैसर्गिक शान्ति का संदेश देता है।

हरा रंग न गर्म है ठंडा फिर भी शांतिदायक है। इसका प्रभाव रक्तचाप पर विशेष रूप से पड़ता है गिरे हुये रक्तचाप (Low blood pressure) में गहरे हरे रंग का प्रकाश हृदय पर तीस मिनट तक डालना चाहिये। दोपहर में खाना खाने के बाद घंटे घंटे पर आधी आधी छटांक हरा जल पीना चाहिए। रक्तचाप के बढ़ने पर हलके हरे रंग का प्रकाश देना चाहिए और खाने में हरे सलाद की मात्रा खूब होनी चाहिये।

हरे रंग से चर्म रोग भी अच्छे हो जाते है। फोड़े फुन्सी पर भी सफल प्रयोग किया जा सकता है। यहां तक कि कैन्सर (cancer) पर भी यह रंग प्रकाश और जल के रूप में लाभ दिखाता है, मगर बहुत बढ़ न गया हो। इसका आन्तरिक प्रयोग सिर दर्द, जुकाम और इनफलुएंजा पर भी लाभकारी होता है इसके साथ हरा प्रकाश भी डालना चाहिए।

लाल, पीला तथा नारंगी रंग के गुण एवं प्रभाव

अब हम सूर्य के किरण चित्र के दूसरी ओर ध्यान देंगे। यह पीले रंग से लेकर लाल रंग तक फैला हुआ है। बीच में नारंगी रंग शोभायमान है। यह सब रंग उष्ण और उत्तेजक हैं।

पीला रंग स्नायुओं को उत्तेजित करता है। शरीर की शुद्धि के लिये यह अनिवार्य है क्योंकि इसका रेचक प्रभाव यकृत और कोष्ठ पर पड़ता है। जिस व्यक्ति में इस रंग की कमी होती है वह पेट की गड़बड़ी, अजीर्ण, कब्ज, वायु विकार, मधुमेह, बवासीर, इक्जीमा, कुष्ट आदि व्याधियों से पीड़ित हो सकता है।

मधुमेह में पीला जल पीना और पीला प्रकाश सूर्य-चक्र पर डालना चाहिए। इससे कब्ज अलग रहेगा और शुद्ध रक्त शरीर में लगेगा। परन्तु यह चिकित्सा से क्रम दो महीने तक चलाना चाहिए।

बवासीर भी पीले जल के अतिरिक्त प्रयोग से ठीक हो सकती है परन्तु खूनी बवासीर में पीला रंग नहीं पीना चाहिए। बादी बवासीर में पीला और खूनी में नीला जल देना उचित है। कब्ज में पीला जल के अतिरिक्त पीला प्रकाश नाभि पर डालना चाहिए। आधे घंटे सुबह और शाम यह प्रकाश देना चाहिए. पीले रंग का कुष्ट में भी प्रयोग होता है और इसकी विधि 'जीवन' सखा में निकल चुकी है।

इसके बाद नारंगी रंग के गुण पर विचार करना है। यह पीला और लाल रंग के सम्मेल से बना है। अतः यह स्नायु उत्तेजक पीले रंग के अतिरिक्त रक्त-उत्तेजत लाल रंग के गुण से युक्त है। स्नायु और रक्त दोनों के उत्तेजित करने के कारण यह जीर्ण रोगों में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। पुराना दमा, कफ ज्वर, गीली खाँसी, गठिया और अन्य जीर्ण वात व्याधियों में यह अपना प्रभाव दिखाता है। इनके अतिरिक्त यह गुर्दे की बीमारियों, पथरी और आँत उतरने में भी प्रयोग किया जाता है।

पुराने दमा में नारंगी जल के अतिरिक्त नारंगी प्रकाश भी सीने और गले पर डालना चाहिए। यह जल पेट भी साफ करता है इसलिए दमे में विशेष लाभदायक है।

गीली खांसी में भी यह कफ का बनना रोक देता है और संचित कफ को बाहर निकाल देता है।

गठिया में नारंगी जल के अतिरिक्त नारंगी या लाल प्रकाश भी जोड़ों पर डालना चाहिये जिससे रक्त-संचालन अच्छी तरह होने लगे।

लाल शीशी में तैयार पानी पीने के काम बहुत कम आता है। इसका प्रयोग बाह्य रूप में मालिश के काम आता है। लकवा या फालिज में लाल पानी से मालिश करना बहुत उपयोगी होता है।

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट हो गया होगा कि विविधि प्रकार के तीव्र और जीर्ण रोगों में सूर्य की सतरंगी किरणों से तैयार जल से कितना लाभ हो सकता है। शरीर में जल सर्वत्र व्याप्त है। यह शीघ्र ही शरीर में फैल जाता है और जहां भी अमुक रंग की आवश्यकता होती है वहां शीघ्र ही पहुंचा देता है। उदाहरण के लिये मलेरिया ज्वर को लीजिये। अगर हम केवल नीला जल देंगे तो ज्वर तो कम हो जायगा परन्तु आंतों में संचित मल न निकल पायगा। अगर हम एक-चौथाई भाग पीला जल भी तीन चौथाई नीले जल में मिला देंगे तो कोष्ठ पीला रंग अपनी ओर खींच लेगा और रक्त नीला रंग शोषण कर लेगा, जिसके फल-स्वरूप पेट भी साफ हो जायगा और रक्त की अत्यधिक गर्मी शांत हो जायगी और मलेरिया के कीटाणु भी मर जायेंगे। शरीर के जिस भाग में जिस रंग की कमी होती है वह जल के द्वारा वहीं पहुँच जाता है, अगर उस रंग को शरीर के अन्दर पहुँचा दिया जाय।

इस में कोई सन्देह नहीं कि सूर्य की शक्ति से जल की आरोग्य-शक्ति और प्रखर हो जाती है और उसके प्रभाव को कोमल सुरक्षित और स्थायी बना देती है। यह जल की रंग-शक्ति धारण करने की क्षमता का स्पष्ट प्रमाण है जो दिना दिन परिपक्व होता जा रहा है और भविष्य में एक नई चिकित्सा-प्रणाली अर्थात् जल—सूर्य—चिकित्सा की ओर शुभ संकेत कर रहा है।
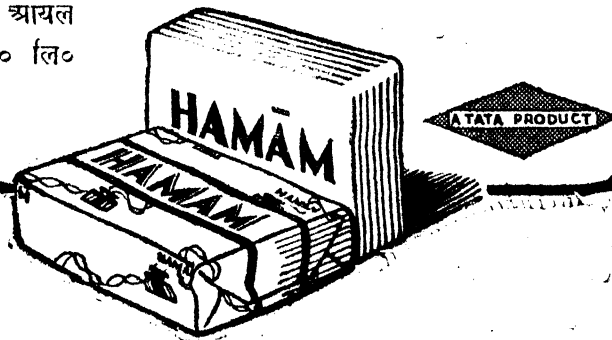
जल ही अमृत है !

प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र, एम० ए०, डी लिट्०, डी० डी०

डा० रामचरण महेन्द्र हरबर्ट कालेज कोटा, (राजपूताना) के प्रोफेसर हैं। अंग्रेजी साहित्य के आचार्य होने के अतिरिक्त आप मनोविज्ञान के भी पंडित हैं। मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य सम्बन्धी अबतक अपनी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

आपकी एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आप जिस विषय पर भी लिखना चाहते हैं उसे अपने गंभीर अनुभव विस्तृत अध्ययन, एवं असाधाधारण प्रतिभा से अत्यन्त प्रभावोत्पादक तथा उपादेय बना देते हैं। प्रस्तुत लेख आपकी इसी विशेषता का परिचायक है।—सं०]

जिस व्यक्ति ने जल की रोग निवारण शक्ति को मालूम किया, वह वास्तव में बड़ा भाग्यशाली था। उसने मानव समाज का जो उपकार किया, उसके हम चिर ऋणी रहेंगे। अति प्राचीन काल में यह महत्वपूर्ण दिन आया होगा। क्योंकि जल के रोग निवारक गुणों का उल्लेख हमें ऋगवेद में उपलब्ध है। आर्यों ने जल की स्तुति करते हुए निर्देश किया है—"आपो हिष्टा-मयोभुवः। तान ऊर्जे दधातन। महेरणायचक्षसे।" अर्थात् "हे जल! तुम स्वास्थ्य के कारण हो, वस्तुतः हमें गया है कि—

आप इद्वा उ भेषजोरापो अभीव चातनी ः।

आपस्सर्वस्य भेषजोस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥

कहा ऐसा बल दो कि हम सत्य जान पावें दूसरी जगह

अर्थात् जल वह औषधि है, जो रोगों को भगाता है। वह समस्त रोगों के निमित्त औषधि के रूप में है। तुम्हारे समस्त रोगों को भी वह दूर करे।'

रोगों का निवारण करने के लिए हम किस किस प्रकार जल का प्रयोग कर सकते हैं? प्रधान विधियां तीन प्रकार की हैं—पानी पीकर रोग निवारण, स्नान शुद्धि द्वारा तथा पानी की गीली पट्टी बांधना। सर्वप्रथम हम पानी पीने के विषय को लेंगे। पानी कब्ज नाश की सर्वोत्तम औषधि है। कम पानी पीने से पेट का दूषित पदार्थ जम कर सड़ता है। उसे निकलने के लिए उसका कुछ गीला रहना अनिवार्य है। प्रातःकाल उठते ही थोड़ा सा जल पी लेने से शरीर में तरावट रहती है। उपः पान कब्ज की रामबाण औषधि है। उठते ही आध सेर जल पीजिए। फिर, थोड़ा सा टहलिये। कब्ज जड़ से चला जायगा। हजारों व्यक्तियों को इस से लाभ हुआ है। अपच में, भोजन के डेढ़ घन्टे पश्चात् गरम पानी पीने से अग्नि दीप्त होती है और उदर-शूल दूर हो जाता है। सरदी, प्रतिश्याय आदि में भी गरम जल पीने से अत्यधिक लाभ होता है। लोग चाय को बड़ा गुणकारी मान कर गर्म गर्म पीते हैं। वास्तव में, लाभ गर्म पानी का होता है, पेशाब के अवयव धुल जाते हैं और कुछ तरावट भी आती है। गले की जलन तथा अति भोजन के कारण पेट की जलन में कुछ कुछ समय पश्चात् एक एक चम्मच ठंडा जल पीना चाहिए। में रंग बिरंगी बोतलों में जल भर कर रखने से ऐसा आश्चर्य-जनक जल तैयार होता है कि उससे प्रायः सभी रोग शान्त जा सकते हैं। चेहरे का रंग लाल रखने के लिए, स्फूर्ति-

दायक एवं तरोताजा दीखने के लिए कम से कम तीन सेर जल दिन में अवश्य पान करना चाहिए।

यदि मनुष्य के शरीर में चलते फिरते रक्त की तरलता नष्ट हो जाय या न्यून हो जाय, तो हम कदापि नहीं जीवित रह सकते। रुधिर की यह तरलता जल से ही कायम रह सकती है। जल का मुख्य कार्य शरीर के रक्त की शुद्धि करना है। स्नान से आप शरीर को बाहर से धोते हैं, पानी पीकर आप अपने शरीर में चिर संचित विषों को धोकर दूर कर देते हैं। जल गुर्दे, मूत्राशय आदि के संचालन का कार्य आसान कर देता है। अनेक व्यक्ति यदि जलोपचार करें, यथेष्ट मात्रा में जल का प्रयोग प्रारम्भ कर दें तो गठिया से बच सकते हैं। प्रमेह, वीर्यपात, मूत्र नली की जलन यथेष्ट जल के प्रयोग से दूर हो जाते हैं। अत्यधिक परिश्रम के कारण गहरे रंगदार लाल पीला पेशाब उतरना जल की न्यूनता का ही द्योतक है। जल का अधिकांश भाग तो पसीने आदि के रूप में बहिर्गत हो जाता है, थोड़ा सा भाग ही गुर्दों को धो पाता है। अतः यदि परिश्रम करते समय थोड़ा थोड़ा जल घंटे घंटे भर बाद पीने का क्रम रक्खें तो तरोताजगी बनी रह सकती है। बहुत से व्यक्तियों को अजीर्ण अथवा नजला प्रायः आवश्यकता से कम मात्रा में जल पीने के कारण ही होता है।

अमेरिका के सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुत बरनर मैकफैडन ने अपनी 'आहारशास्त्र' नामक पुस्तक में सविस्तार जलोपचार का विवेचन किया है। इस पुस्तक में आपने निर्देश किया है कि यदि अधिक प्यास लगी हो तो गुनगुना अर्थात् थोड़ा गरम पानी पीना उत्तम है। यदि सम्भव हो और किसी प्रकार आदत पड़ जाय तो जल को सम्पूर्ण भोजन करने के पश्चात् ही काम में लावे। मैकफैडन साहब एक स्थान पर कहते हैं कि स्वाभाविक प्यास भोजन के एक डेढ़ घंटे पश्चात् प्रतीत होगी। उस समय जल अवश्य पीना चाहिए। यदि पाचन शक्ति निर्बल हो, यह अग्नि-मांद्य [illegible] गरम जल का प्रयोग करना उत्तम रहेगा। इससे पाचन-शक्ति उद्दीप्त होगी।

पानी कब पिएँ ?

इस प्रश्न का उत्तर प्रत्येक व्यक्ति के लिए पृथक् पृथक् है। बच्चे, वृद्ध, स्त्रियों, नवयुवक सब के लिए हम कोई एक नियम निश्चित नहीं कर सकते। हाँ, यह तो निर्विवाद है कि जब तृषा हो तभी जल-पान किया जावे। प्यास को यथासंभव मारा न जाय। अनेक व्यक्तियों को यह भ्रान्ति सी है कि भोजन के साथ जल का प्रयोग हानि कारक है। उससे पाचक रस निर्बल पड़ जाते हैं और अपच होता है। यह सब व्यर्थ है। भोजन के समय भी यदि थोड़े से जल का प्रयोग कर लिया जाय तो हानि नहीं। हाँ, यदि यकायक बहुत सा ठंडा जल भोजन के समय पी लिया जाय तो पेट की आन्तरिक अग्नि मंद हो जायगी तथा पाचन में अवरोध अवश्यम्भावी है।

हम कितना पानी पिएँ, यह प्रत्येक लिए पृथक् पृथक् है। युवक को, जो कठोर परिश्रम का शारीरिक कार्य करता है, पढ़ने लिखने का कार्य करने वाले क्लर्क, अध्यापक दूकानदार इत्यादि से अपेक्षाकृत अधिक परिमाण में जल की आवश्यकता प्रतीत होती है। फिर, परिस्थितियों तथा मौसम के अनुसार भी परिमाण में परिवर्तन होना आवश्यक है। गर्मी में अधिक प्यास प्रतीत होती है। सर्वोत्तम नियम यही है कि जब जितनी प्यास लगे, तभी अविलम्ब उसे शान्त कर लिया जाय, व्यर्थ दबा न दिया जाय। अन्यथा कब्ज फौरन हो जायगा। आवश्यकता से अधिक जल का प्रयोग भी हानिकारक है। इससे शुद्धि के अवयवों पर व्यर्थ का बोझ पड़ता है। आजकल अनेक लोगों को सोडावाटर, चाय, शरबत इत्यादि की झूठी तृषा प्रतीत होती है। यह लाभ के बजाय हानि पहुँचाने वाली झूठी प्यास है। अतः इससे सावधान रहें।

जल के विविध स्नान

लूईकूने साहब ने जल को इतना अधिक महत्व स्नान के कारण ही प्रदान किया है। लूईकूने साहब की सम्पूर्ण चिकित्सा प्रणाली केवल स्नानों पर ही अवलंबित है। लूईकूने का मूल सिद्धान्त रोगों की एक रूप है। उनके मत में रोग एक ही हैं, जो नाना रूपों में प्रस्फुटित होते हैं। शरीर के विभिन्न अवयवों में पेट मुख्य है अतः सब से

अधिक अत्याचार उसी बेचारे पर होते हैं। आवश्यकता से अधिक भोजन के कारण बहुत सा बोझ उस पर लाद दिया जाता है। फलतः विजातीय द्रव्य एकत्रित होने लगते हैं। ये विजातीय द्रव्य रोगों का बाना पहिन कर प्रकट होते हैं। इन विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालने के लिए लुईकुने साहब ने दो प्रकार के स्नानों का आविष्कार किया है—उदर स्नान तथा मेहन-स्नान। इनसे अस्वाभाविक गर्मी भी दूर होती है। बहुधा ये चिर संचित विजातीय द्रव्य देर तक जमे रहते हैं। वस्तुतः शीघ्र आरोग्य के लिए उन्हें स्नानों द्वारा ढीला करते हैं। तत्पश्चात् उस कूड़े करकट में गति (Motion) उत्पन्न होती है। ढीला करने के लिए लुईकुने साहब के वाष्प स्नान तथा सूर्य-स्नान की व्यवस्था की है।

उदर स्नान के लिए एक टब में कुएँ का ताज़ा पानी इतना भरिये कि बैठते समय जांघ एवं नाभि के मध्य का भाग जल में डूबा रहे। इस प्रकार बैठ कर पेड़ू को जल से भीगे वस्त्र से धीरे धीरे रगड़ते रहिए। रोग तथा अवस्था के अनुसार दस मिनट तक यह स्नान लिया जा सकता है।

मेहन स्नान में टब में शीतल जल भर कर एक स्टूल या पटरा इस प्रकार रखना चाहिए कि सुभीते के अनुसार जननेन्द्रिय जल में डूबी रहे, अन्य अंग बाहर रहें। बाएँ हाथ की दो उंगलियों के मध्य इन्द्रिय को इस प्रकार पकड़े कि उसके आगे का कोमल अंश वाह्य झिल्ली से ढक जाय। अब इस चमड़े को पानी के अन्दर मुलायम रुमाल से धीरे धीरे मले। स्त्री रोगों, पुरुष घृणित रोगों में यह बहुत लाभप्रद है।

लूईकूने के वाष्प-स्नान के लिए साधारण बेंत की कुर्सी से कार्य हो सकता है। कुर्सी के नीचे संभाल कर खौलता हुआ जल रख कर कुर्सी पर रोगी को बिठा दीजिये और सम्पूर्ण शरीर को कम्बल से इस प्रकार ढक दीजिए कि वाष्प बाहर न निकलने पावे। इस बर्तन को अंगीठी या स्टोव के ऊपर भी रख सकते हैं।

जल की पट्टी का प्रयोग

जल की पट्टी नाना प्रकार की हो सकती है। आवश्यकतानुसार सम्पूर्ण शरीर पर पानी की पट्टी बाँधी जा सकती है तथा किसी अंग विशेष पर भी। फिर पट्टी ठंडे तथा गर्म जल दोनों ही प्रकार की हो सकती है। यदि कट जाय तो ठंडे पानी की पट्टी ही सर्वोत्तम है। उदर के विकारों के लिए गर्म पट्टी पेड़ू पर बांधनी चाहिए। गले के दर्द में गर्दन पर गर्म पट्टी से सेंक सकते हैं। पेट के दर्द में गर्म जल बोतल में भर कर सेंकना बहुत उत्तम है। स्थानिक रोग मिटाने के लिए गरम पानी की पट्टी का प्रयोग ही सर्वोत्तम है। श्री पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल इस विषय में लिखते हैं—"स्थानिक दर्द मिटाने के लिए कई परतवाली फलालैन की पट्टी लेना चाहिए। उसको खूब गरम जल में भिगो निचोड़ कर उसकी पट्टी बाँधनी चाहिए। फिर उसके ऊपर उसी प्रकार ऊनी वस्त्र बांध लेना चाहिए जिस प्रकार ठंडी पट्टी में। गरम पट्टी के बाद हमेशा फिर ठंडी पट्टी बाँधनी चाहिए, अन्यथा लाभ के बदले हानि होगी। निमोनिया में इस प्रकार एकान्तर से कई बार गरम और ठंडी पट्टी का प्रयोग करना चाहिए। गरम पट्टी का प्रयोग सब प्रकार की वेदना मिटाने के लिए किया जा सकता है, किन्तु जलोदर में भूलकर भी गरम पट्टी का प्रयोग नहीं करना चाहिए।"

जब ज्वर अधिक हो तो ठंडी पट्टी के प्रयोग से ज्वर कम हो जाता है। दूर तक टहलने के पश्चात् दुखते हुए पाँवों को धो डालने से थकावट दूर होती है। ठंडे पानी के स्नान बड़े बलबर्द्धक एवं दीर्घजीवन देनेवाले होते हैं। स्नान में जब जल कुछ दूरी से डाला जाता है तो उसे तरेरा कहते हैं। तरेरा केवल शीतल जल का ही उत्तम है। यदि ऊपरी भागों में रोग हो तो कमर से ऊपर तरेरा लेना चाहिए; निचले भागों के लिए कमर से नीचे तरेरा लीजिए। नेत्र कान इत्यादि के शूल से मुक्ति के लिए सिर पर ठंडे पानी का तरेरा उत्तम है। शरीर के भिन्न भिन्न अवयवों पर भी आवश्यकतानुसार किसी जल-चिकित्सा के विशेषज्ञ से पूछ कर तरेरे का प्रयोग किया जा सकता है।

जल के इन असंख्य उपयोगों को देखकर ऋग्वेद में उचित ही कहा है—"हे जल, तुम्हीं स्वास्थ्य के कारण हो, अतः हमें ऐसा बल दो कि सत्य को जान पावें।"

खनिज जल

श्री कमलेश श्रीवास्तव, बी० ए०

सृष्टि के निर्माण में जल-तत्त्व का विशेष योग है। जीवन का विकास प्रधानतया जल के ही द्वारा हुआ है। जिन रासायनिक क्रियाओं द्वारा प्राणियों के कलेवर (Organism) का निर्माण होता है वे जल की ही उपस्थित में सम्भव हैं।

जल के अनेक प्रकार हैं। वाह्य रूप में सभी जल एक से होने हुए भी अपने गुण एवं उपयोगिता की दृष्टि से अलग-अलग महत्व रखते हैं। यहां पर विद्वान लेखक ने जल-तत्त्व की मूल उत्पति से लेकर उसके विभिन्न रूपों का वैज्ञानिक विवेचन किया है। हमारे स्वास्थ्य एवं आरोग्य के लिए खनिज-जल (mineral water) का क्या महत्व है, यही इस लेख का मुख्य विषय है।

आप देखेंगे कि यद्यपि अनेक रोगों में खनिज जल महौषधि के रूप में है फिर भी इसकी कुछ विशिष्ट मर्यादाएं हैं जिनका पालन किए बिना खनिज जल के प्रयोग से पूरा पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता। इसके अलावा अन्य कई ज्ञातव्य बातें भी आपको इस लेख में मिलेंगी। जिनकी जानकारी प्राप्त करना जलोपचार के लिए वांछनीय ही नहीं अनिवार्य भी है। सं०]

जल की उत्पत्ति के विषय में ऐसा अनुमान किया जाता है कि जिस समय पृथ्वी सौर महापिंड से पृथक हुई उस समय एक कल्पनातीत महा उत्ताप के कारण उसके सारे मूलतत्त्व (Elements) वाष्पीय दशा में सारे आकाश में फैले थे। इन्हीं मूलतत्त्वों में हाईड्रोजन और आक्सीजन भी थे। उस भीषण दाह में इन मूलतत्त्वों के परमाणु इतने अधिक वेग से स्फुरित हो रहे थे कि उन्हें परस्पर रासायनिक सम्बन्ध जोड़ने का अवकाश ही न था। लाखों वर्षों के पश्चात् यह संयोग सम्भव हो सका, फिर भी उस योग का स्वरूप वाष्पीय ही रहा होगा। करोड़ों वर्षों के पश्चात् जब ताप कुछ कम हुआ तो यह वाष्प बादलों के रूप में परिवर्तित हो गया। यह बादल जब बरसे होंगे तो इनकी बूंदे धधकती हुई पृथ्वी के तल तक पहुँचने के पूर्व ही वाष्पीभूत होकर उड़ गई होंगी। लाखों वर्षों तक ठंडा होने के पश्चात् यह सम्भव हो सका होगा कि पानी भाप से जलरूप में घनीभूत हो पृथ्वीतल के गड्ढों में दे सका। जल से भरे यही गड्ढे आजकल महासागर के नाम से पुकारे जाते हैं। इन्हीं महासागरों सारे धरातल पर निरंतर जल का वितरण हुआ करता है। इस वितरण द्वारा पानी पृथ्वी पर प्रत्येक स्थान में वाष्प, जल अथवा हिम के रूप में व्याप्त रहता है।

पृथ्वी पर जल प्रचुर परिमाण में व्याप्त है। उसके सबसे बड़े पार्थिव भंडार पृथ्वी के महासागर हैं। जिस समय पानी धरातल पर टिक सका होगा उस समय जहां जहां उसकी पहुँच हुई होगी वहां के घुलनशील पदार्थ उसमें घुल गये होंगे। इसीलिये समुद्र-जल खारा है। इस जल में ३॥ प्रतिशत विभिन्न लवण रहते हैं, जिनमें से मुख्य हैं—सोडियम क्लोराइड (साधारण नमक), मैग्नीशियम क्लोराइड, पोटैशियम क्लोराइड, कैलशियम और मैग्नीशियम के सल्फेट्स इत्यादि।

केवल जड़ जगत में ही नहीं प्राणि जगत् में भी पानी प्रचुर परिमाण में व्याप्त रहता है। मनुष्य-शरीर में अवस्था के अनुसार ६० से ८० प्रतिशत पानी रहता है। वनस्पतियों के कलेवर में ९८ प्रतिशत तक पानी रहता है। यहाँ तक कि लकड़ में भी ५० प्रतिशत पानी रहता है। संयुक्त रूप में पानी कुछ रासायनिक यौगिकों (Chemical compounds)—जैसे मैदा, शकर आदि—में और कुछ लवणों—जैसे फिटकिरी, तूतिया आदि—में भी पाया जाता है।

वैसे तो कोई भी ज्ञात वस्तु पानी में सर्वथा अघुलनशील नहीं होती। पत्थर, शीशा, सोना आदि भी अति

सूक्ष्म परिमाणों में पानी में घुलते रहते हैं---ऐसे सूक्ष्म परिमाणों में कि उसका निर्धारण हम साधारण रीतियों से नहीं कर सकते। हवा भी कुछ अंशों में पानी में घुलती है। पानी में इस घुली हुई हवा की आक्सीजन ही जलचरों को जीवनदान करती है।

वर्षा-जल स्त्रवित (Distilled) होने के कारण अत्यन्त शुद्ध होता है फिर भी उसमें मार्ग के धूलकण आदि अशुद्ध पदार्थ मिले रहते हैं। सूक्ष्मांशों में आक्सीजन (Oxygen), नाइट्रोजन, (Nitrogen), कारबन डि० आक्साइड (Corbon dioxide,) अमोनिया (Ammonia), अमोनियम नाइट्रेट (Ammonium Nitrate) आदि भी मिले रहते हैं। पृथ्वी में शोषण होने पर जब यह वर्षा जल भूमि के अन्दर उतरता है तो उसमें मिले हुए जीव पदार्थ पृथक होते जाते हैं परन्तु मार्ग में पड़ने वाले घुलनशील खनिज, लवण आदि को वह घोलता हुआ नीचे उतरता चला जाता है। इन लवणों में सोडियम (Sodium) कैलशियम (Calcium) और मैगनेशियम (magnesium) के क्लोराइड (chlorides) कैलशियम और मैगनेशियम् के बाई कारबोनेट (Bi-carbonatss) और सलफेट (Sulphates) मुख्य हैं। छिद्रमय भूमि से होकर यह जल अभेद्य (Impermeabile) स्तरों पर एकत्र हो जाता है। इस जल को आभ्यांतरिक (Undergraound) जल कहते हैं मार्ग मिलने पर यही जल स्रोत रूप में धरातल के ऊपर आ जाता है। इस प्रकार के स्रोत जो आभ्यांतरिक जल धाराओं द्वारा बनते हैं कुछ खनिज गुण रखते हैं। कभी-कभी स्रोत जल में ऐसे पदार्थ घुल जाते हैं जो स्वास्थकारी और रोगनाशक होते हैं। कारण यह जब जल खनिज पदार्थों से होकर आता है इसलिए उसमें खनिज पदार्थों के घुलनशील अंश घुल जाते हैं जिससे जल में विभिन्न खनिजों के गुण समा जाते हैं। इस प्रकार का खनिज जल बाजार में दवा की दूकानों पर भी मिलता है और औषधियों के रूप में लोग इसका प्रयोग करते हैं।

आभ्यांतरिक जल अपने साथ बहुत से घुले हुये खनिज धरातल के भीतर से स्रोतों के जरिये बाहर आता है और स्रोत के मुख के आसपास इस खनिज को दबाव व गर्मी कम हो जाने के कारण जमा कर देता है। इस प्रकार के खनिज गुण सम्पन्न जलाशय सेराटोगा, न्यूयार्क, कार्लबाद, बाथ (इंगलैंड), विशी (फ्रांस), बोर्नियो (इटली), आदि स्थानों में पाये जाते हैं। गाइसर कुण्ड के मुख पर भी प्रायः इस प्रकार के खनिज जमा हो जाते हैं जो स्वास्थ्य के लिये लाभकारी माने जाते हैं। इस प्रकार के गाइसर कुंड उत्तरी अमेरिका के 'यलो स्टोन नेशनल पार्क (Yellow stone national park) में पाये, जाते हैं।

भारतवर्ष में भी मुंगेर, विन्ध्याचल आदि स्थानों में इस प्रकार के जलाशय पाये जाते हैं जिनका जल लोग बड़ी श्रद्धा, भक्ति के साथ पीते हैं। अश्रुवापन में भैरव-कुंड और देहरादून में गन्धक के स्रोत प्रसिद्ध हैं। राजगिरि में भी इस प्रकार के खनिज जल के झरने पाये जाते हैं जिनका जल बहुत ही मीठा और स्वास्थ हितकारी के लिये होता है। इस प्रकार के जल का व्यवहार करने से भोजन शीघ्र ही और अच्छी तरह पच जाता है। शरीर की अग्नि भी उद्दीप हो उठती है जिससे भूख भी अच्छी लगती है। परन्तु इस प्रकार के जल का आवश्यकता से अधिक प्रयोग करना हानिकारक भी सिद्ध हुआ है। कुछ दिनों पश्चात् उसी प्रकार के जल की आदत सी पड़ जाती है और यदि कहीं परिस्थित वश दूसरा जल पीना पड़ता है तो शीघ्र ही अपच हो जाता है।

प्रसंगवश यहाँ पर गंगा-जल का वर्णन कर देना अनुचित न होगा। अपने इन्हीं खनिज गुणों के कारण गंगा का जल हिन्दुओं में इतना पवित्र और श्रेष्ठ माना गया है। समतल भूमि में आने पर इस जल के बहुत से गुण नष्ट हो जाते हैं फिर भी हरद्वार के आगे का जल आज दिन भी अत्यन्त गुणकारी, स्वास्थ्यवर्द्धक और रोगनाशक है। गंगा नदी में नहाने से पाप कटने का अभिप्राय यही है कि अनेक प्रकार के रोगों में गंगा जल लाभ पहुँचाता है। कहा जाता है कि प्रतिदिन गंगा में स्नान करने से कोढ़ तक अच्छा हो जाता है।

यहाँ पर जल की कुछ दैनिक रासायनिक क्रियाओं का भी वर्णन कर देना आवश्यक ही प्रतीत होता है। हमारे शरीर में पानी का एक महत्वपूर्ण कार्य यह कि वह शरीर के उच्छिष्ट पदार्थों

को घोलकर या उनमें मिलकर स्वेद अथवा मलमूत्र के रूप में बाहर निकाल दे। इन उच्छिष्ट पदार्थों के शरीर में रहने से नाना प्रकार के रोग पैदा हो सकते हैं। इसलिये प्यास रहने पर भी पानी न पीना निश्चय ही रोग को निमंत्रण देना है। और प्यास भी उसी समय लगती है कि जब वाष्पीकरण अथवा निष्कासन के कारण हमारे शरीर में पानी की कमी हो जाती है और शरीर में होनेवाली रसायनिक क्रियाओं के स्वाभाविक संचालन में बाधा पड़ने लगती है। अन्य वस्तुओं के साथ भी पानी की रासायनिक प्रतिक्रियायें (chemical Reactions) होती रहती हैं। पानी में सोडियम या फासफोरस डाल देने से पानी में आग सी लग जाती है। इस प्रकार के आश्चर्यजनक खेल बहुधा हम नगरों में देखते हैं। पानी को चूने के साथ जो प्रतिक्रिया होती है उससे इतनी गर्मी का उत्पादन होता है कि पानी उबलने लगता है। इस प्रकार के चूने के पानी में क्षारीय (caustic) गुण होते हैं और बच्चों की पेट की बीमारियों में लाभकारी सिद्ध हुये हैं। धातुओं की कई अन्य 'आक्साइड' (Oxides) भी पानी में घुलकर क्षारों का उत्पादन करते हैं।

विद्वानों में खनिज खल की औषधि के रूप में उपयोगिता पर गंभीर मतभेद है। कुछ लोगों का दावा है कि खनिज जल ही सम्पूर्ण शारीरिक व्याधियों की एकमात्र महौषधि है। परन्तु हमारे पास इसके विरुद्ध कहने को भी पर्याप्त सामग्री है। खनिज जल का पूरा पूरा लाभ हम उस समय तक नहीं उठा सकते जब तक कि हम और दूसरे प्रयोगों का सहारा न लें, जैसे भोजन में सुधार, व्यायाम, मालिश आदि। इसके अतिरिक्त खनिज जल में घुले हुये धातु उतने लाभकारी नहीं हो सकते जितने कि फल आदि।

द्वितीय जल का महत्व उसके घनत्व पर पूर्ण रूप से अवलम्बित है। खनिज जल में धातुओं के घुल जाने के कारण उसका घनत्व भी कुछ बढ़ जाता है जिसकी वजह से ऐसा जल शीघ्र ही शरीर के रुधिर के अनुकूल नहीं पड़ता। जल का स्वास्थकारी गुण बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि उसका घनत्व मनुष्य शरीर के रुधिर के घनत्व के अनुपात (Ratio) में रहे। इसी कारण से खनिज जल के स्वास्थकारी गुण बहुत कुछ सीमित से हैं। फिर भी खनिज जल का वाह्य प्रयोग लाभकारी सिद्ध हुआ है। स्विट्ज़रलैंड में इस प्रकार के खनिज जल का प्रयोग प्राकृतिक चिकित्सक लोग किया करते हैं। इसके प्रयोग का यह प्रभाव मनुष्य शरीर पर पड़ता है कि त्वचा में यथेष्ट चैतन्यता आ जाती है जिसके कारण शरीर के दोषों के निष्कासन (Elimination) में सहायता मिलती है। कुछ विशेष रोग ऐसे भी हैं कि जिनका निदान खनिज जल की सहायता से आशातीत सफलता के साथ किया जाता है। गठिया के रोगियों को खनिज जल के प्रयोग से यथेष्ट आराम मिलता है। और इसी सिद्धांत पर यूरोप में खनिज जलाशयों के आस-पास गठिया से पीड़ित रोगियों की चिकित्सा की जाती है। इस प्रकार के पूरा पूरा लाभ उठाने के लिये प्रकृति के और की सिद्धांतों का सहारा लेना पड़ता है जैसे, भोजन में सुधार, उपवास, व्यायाम, विशेष प्रकार के स्नान आदि। परन्तु सभी प्रकार की बीमारियों में खनिज जल का एक मात्र प्रयोग उचित नहीं। कुछ रोगों पर इसका प्रयोग लाभकारी सिद्ध हुआ है और अधिकतर रोगी खनिज जल के प्रयोग को निरर्थक ही पाते हैं।

खनिज जलाशयों की एक अपनी स्वयं की मनोरंजक कहानी भी है। योरोप में बहुधा इस प्रकार के जलाशय लोगों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं और उनके चारों ओर एक छोटा-मोटा नगर सा बस जाता है। रोगियों के लिए विश्राम एवं चिकित्सा का एक अलग स्थान सा बन जाता है और साथ ही साथ एक व्यापार केन्द्र भी। कुछ लोग अपना स्वास्थ्य-गृह खोलकर धन कमाने का एक अच्छा जरिया भी निकाल लेते हैं। दुःख की बात तो यह है कि भारतवर्ष में इतने खनिज जल के जलाशयों के होते हुए भी अभी तक लोगों का ध्यान उधर नहीं गया है। यदा-कदा घूमने के विचार से लोग कभी कभी राजगिरि आदि स्थान पर पहुँच जाते हैं परन्तु अभी तक चिकित्सकों ने उन जलाशयों का विशेष प्रयोग करना नहीं आरंभ किया है। हमारी सरकार ने भी इधर कोई ध्यान नहीं दिया है। फिर भी हमारे सम्मुख एक उन्नत भविष्य है यदि हम इन जलाशयों का उचित प्रयोग करने लग जायं। रोगियों को भी यथेष्ट सुविधायें मिलेंगी और साथ ही साथ व्यापार की दृष्टि से भी इन जलाशयों का प्रयोग लाभकारी है।

जल-चिकित्सा का महत्त्व

डा० कृष्ण वर्मा, एन० डी, संचालक, नेचर क्योर हास्पिटल, मलाड, बम्बई

लेखक

डा० कृष्ण वर्मा भारत के वयोवृद्ध एवं अनुभवी प्राकृतिक चिकित्सकों में हैं। युवावस्था में आप क्षयरोग से पीड़ित हो गए थे, डाक्टरों से जवाब मिल चुका था। चारों तरफ से निराश हो जाने पर आपने प्रकृति की शरण ली। प्रकृति की कृपा से आपने स्वयं स्वास्थ्य एवं आरोग्य लाभ किया तथा अबतक न जाने कितने 'असाध्य' रोगियों को भी स्वास्थ्य एवं आरोग्य प्रदान किया है।

मलाड, बम्बई, में आपने प्रायः ३५ वर्ष पूर्व 'नेचुरल हीलिंग होम' नामक एक छोटा-सा चिकित्सा गृह स्थापित किया। इस संस्था को उत्तरोत्तर सफलता मिलती गयी और आज वह 'नेचर क्योर हास्पिटल' के नाम से प्रसिद्ध है।

आपने प्रस्तुत लेख में देश-विदेश में प्राकृतिक चिकित्सा की प्रगति का उल्लेख करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि हम इस समय चिकित्सा के संक्रान्ति-काल में है। भविष्य में औषधि प्रणाली का लोप और नैसर्गिक प्रणाली का उत्कर्ष एवं व्यापक प्रसार होना अनिवार्य है। विभिन्न रोगों में जलोपचार सम्बन्धी आपकी अनुभव तो बहुत ही प्रभावोत्पादक एवं उपयोगी अनुकरणीय है। —सं०]

जल को 'जीवन' तथा 'अमृत' कहा गया है—ये दोनों पर्यायवाची शब्द इस तथ्य के संकेतक हैं कि आरोग्य एवं अनारोग्य, इन दोनों अवस्थाओं में जल का महत्व अपरिमेय है। यह रोगों का नाश करने, मनुष्य को सदा नीरोग रखने तथा बल-बुद्धि बढ़ाने के लिए एक महौषधि के समान है। हमारे पूर्वजों ने सम्भवतः इसी हेतु जल के प्रयोग को एक प्रकार का धार्मिक रूप दे रक्खा था। आयुर्वेद में कहा गया है, "दिवस्यान्ते पिवेत् दुग्धं, निशान्ते शीतल जलम्।" अर्थात् दिवस के अन्त में— शाम को दूध—और रात्रि के अन्त में–प्रातः काल–शीतल जल पीना चाहिए। यहाँ पर प्रातः काल शीतल जल पीने का मतलब उषः पान से है। उषः पान का हमारे

प्राचीन ग्रंथों में बड़ा महत्व बताया गया है। इसकी विधि यह है कि रात्रि के समय ताँबे के पात्र में जल भर कर रख दे और वही जल सूर्योदय से ३ घण्टे पहले उठ कर ६० से ८० तोले के परिमाण में पी लिया जाय। इससे मल की शुद्धि अच्छी तरह हो जाती है। इसी श्लोक में आगे कहा गया है कि रात्रि के अन्त में ठंडा पानी, दिन के अन्त में गाय का धारोष्ण दूध और भोजन के अन्त में मठा पीना चाहिए।

इस नियम का पालन करने वाले व्यक्ति को न त कभी वैद्य की जरूरत पड़ेगी और न दवा की। इस एक छोटे से श्लोक में आरोग्य विषयक अनेक ग्रंथों का निचोड़ रख दिया गया है। सचमुच यह बड़े खेद की बात है कि आज हम अपने पूर्वजों की अमृतवाणी की सर्वथा अवहेलना कर सभी बातों में विदेशियों का अनुकरण करने लग गए हैं जिसका परिणाम भी हमें बुरी तरह भोगना पड़ रहा है और आज हमारे यहाँ औसत आयु केवल २५ वर्ष की रह गयी है, जबकि प्राचीन समय में लोग सौ-सवा सौ वर्ष तक जीवन का उपभोग करते थे। इस बात के भी प्रमाण हैं कि हमारे पूर्वजों द्वारा बताये गए आरोग्य-सम्बन्धी नियमों से विदेशियों ने लाभ उठाया, उनका प्रयोग किया और इस प्रकार अपने आरोग्य एवं आयुष्य की वृद्धि की।

आज संसार के प्रायः सभी देशों में जिस जल-चिकित्सा को बड़ा महत्व दिया जा रहा है, उसकी मूल-उत्पत्ति आर्यावर्त्त में ही हुई है। डा० पोप अपनी पुस्तक 'प्रैक्टिकल हाइड्रोथिरैपी' (Practical Hydrotherapy) में लिखते हैं:—उपचार के रूप में जल का प्रयोग शुरू-शुरू में हिन्दू लोग ही करते थे। जल-चिकित्सा का जन्म प्राचीन काल में हो ही चुका था। रोग-निवारक साधन के रूप में जल का प्रयोग बहुत प्राचीन समय से होता आ रहा है। प्राचीन समय के हिन्दू, फारसी, यहूदी, मिस्री, और यूनानी लोग विभिन्न प्रकार के रोगों के उपचार में जल का प्रयोग करते थे। प्राचीन काल के मिस्र के निवासी नील नदी की उसी प्रकार पूजा करते थे जिस प्रकार हिन्दू लोग गंगा की पूजा करते हैं और उनका विश्वास था कि इसके जल में स्नान करने से भूमि के ही समान वंध्या स्त्री भी उर्वरता का गुण प्राप्त कर सकती है—बाँझों के भी सन्तान हो सकती है।

अमेरिका के विश्व-विख्यात प्राकृतिक चिकित्सक डा० कैलाग ने, जिन्होंने अपनी सौ वर्ष की आयु पूरी कर हाल ही में स्वर्गा-रोहण किया है, अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'रैशनल हाइड्रोथिरैपी (Rational Hydrotherapy) में इस सत्य का प्रतिपादन किया है कि मनुष्य को सताने वाली सौ में नब्बे बीमारियां जलोपचार द्वारा बड़ी आसानी से और सदा के लिए निर्मूल की जा सकती हैं।

आपका कहना है—आधुनिक वैज्ञानिक अन्वेषण ने इस महान सत्य को सुदृढ़ एवं निश्चित आधार पर प्रतिष्ठित कर दिया है कि रोग-निवारण की शक्ति चिकित्सकों तथा उनकी दवाइयों में नहीं होती। रोग-निवारण की शक्ति स्वतः शरीर-प्रणाली में ही निहित है जो शरीर के अवयवों के निर्माण तथा उन्हें कायम रखने की शक्ति के रूप में प्रकट होती है। दूसरे शब्दों में शरीर अपनी चिकित्सा स्वयं करता है। विशिष्ट तापमान के जल का आवश्यकता-नुसार वाह्य अथवा आन्तरिक प्रयोग किए जाने पर वह रोग कारक अवस्थाओं का प्रतिरोध करने में शरीर-प्रणाली को सहायता पहुंचाता है। जलोपचार ही एक मात्र ऐसी चिकित्सा-विधि है जिसके द्वारा समूचे शरीर में अथवा शरीर के किसी विशिष्ट भाग में रक्त को और वस्तुतः शरीर की प्रत्येक प्राण-धारक क्रिया को समुचित रीति से संचालित किया जा सकता है।

'हाइड्रोपैथिक एनसाइक्लोपीडिया' (जल-चिकित्सा संबन्धी विश्व-कोष) के रचयिता डा० ट्रौल का विचार है कि जलोपचार का प्रयोग सभी रोगों में लाभदायक एवं सर्वश्रेष्ठ है। इसी प्रकार प्रिसनिज की 'दि नेचुरल मेथड्स आफ हीलिंग,' स्नेटन की 'क्यूरेटिव ट्रीट मेंट आफ डिजी-जेज,' लूईकुने की 'न्यूसाइन्स आफ हलिंग' आदि पुस्तक जलोपचार के महत्त्व को प्रतिपादित करती हैं।

मेरी एस० जी० निकोल्स अपनी पुस्तक 'ओमन्स वर्क वाटर क्योर' में लिखती हैं कि बहुत से लोगों का जो यह ख्याल है कि जल-चिकित्सा का प्रयोग केवल जीर्ण रोगों में ही कारगर होता है, यह उनकी भ्रान्ति ही है। कई

माताएं अपने बच्चों के ज्वर आदि तीव्र रोगों से पीड़ित होने पर औषधोपचार के लिए डाक्टरों और वैद्यों को बुलाती हैं। वे यह नहीं जानतीं कि उस कोमल अवस्था में इन जहरीली औषधियों का बच्चे के शरीर पर कितना भयानक प्रभाव पड़ेगा। यदि इस तरह की अवस्थाओं में जलोपचार की विधि अपनाई जाय तो रोगी थोड़े दिनों में ही आश्चर्यजनक रूप से नीरोग हो जायगा। यदि रोगी में पर्याप्त जीवन शक्ति होगी तो जलोपचार का कोई अवांछनीय परिणाम न होगा और वह शीघ्र आरोग्य लाभ कर लेगा।

उदाहरण के लिए यहाँ पर मैं कतिपय रोगों में जलोपचार की आश्चर्यजनक सफलता का उल्लेख कर देना आवश्यक समझता हूँ। इनमें से एक दृष्टान्त डा० कोयरनेर (Dr. Koerner) की प्रसिद्ध पुस्तक 'स्योरेस्ट क्योर आफ फेब्राइल डिजीजेज' (Surest cure of Febrile diseases) से यहां पर दिया जाता है :—

यकृत के प्रदाह की चिकित्सा

'एक वयोवृद्ध महिला (आयु ६०) यकृत प्रदाह (Hepatitis) से पीड़ित हो रही थीं। अपनी बीमारी के के छठें दिन उन्होंने मुझे बुलाया। इन ६ दिनों में उनका डाक्टरी इलाज हुआ था, लेकिन इससे उनकी बीमारी कम होने के बजाय और भी बढ़ गयी। फलतः उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली को भी आजमाइश करनी चाही और मुझे बुलाया। यकृत के स्थान पर जोरों का दर्द था। पेट फूल गया था। बुखार बहुत तेज, जोरों की प्यास, मुंह का स्वाद कड़ुवा, बार-बार उबकाई आना, ये सब लक्षण रोगिणी में प्रकट हो रहे थे। उस रोगिणी पर गीले कपड़े की पट्टी का प्रयोग किया गया। एक बार के प्रयोग में ही उस का दर्द कम हो गया। उसकी हालत तेजी के साथ सुधरने लगी और एक हफ्ते में वह बिलकुल चंगा हो गयी।

चेचक में जल का प्रयोग

एक नाजुक बदन की सुन्दरी स्त्री के चेचक की बीमारी हो गयी। कैथलिक धर्मावलम्बी होने के कारण उसने धार्मिक भावना से प्रेरित होकर उपवास किया। कंठमाला की बीमारी होने के कारण वह अपनी जल-चिकित्सा करा रही थी। उसे जोरों से जाड़ा देकर तेज बुखार शुरू हुआ। शरीर में वेदना, सिर दर्द, मुंह का फूल जाना आदि लक्षण प्रकट हुए। वह जीवन से निराश सी हो गयी।

चिकित्सा—उस रोगिणी की चिकित्सा इस प्रकार की गई। पहले दिन उस पर गीली चादर की पट्टी (Wet sheet pack) का प्रयोग किया गया। रोग के प्रत्यक्ष चिन्ह प्रकट न होने से जलोपचार की प्रतिक्रिया की कुछ संभावना हुई। दूसरे दिन रोग के लक्षण स्पष्ट हो गए।

उसके कुटुम्बियों ने जल-चिकित्सा सम्बन्धी कुछ पुस्तकें पढ़ी थीं, किन्तु किसी रोग में इसका प्रयोग होते नहीं देखा था। तीसरे दिन सुबह तक उसके शरीर पर चेचक के दाने दिखाई देने लगे। उसकी चिकित्सा प्रचलित पद्धति से भिन्न प्रकार की हुई और उसको चिकित्सा करने वाली थी एक स्त्री, जिसे औषधिशास्त्र की कोई डिग्री नहीं मिली थी। इस हालत में उसके घरवालों का असमंज अथवा हिचकिचाहट प्रकट करना स्वाभाविक ही था। इसलिए उसके पति ने औषधोपचार करने वाले किसी डाक्टर को बुलाने का विचार किया। किन्तु बहुत समझाने पर वह कुछ दिनों तक प्राकृतिक चिकित्सा कराने पर राजी हो गया। मैंने इस बात को मंजूर कर लिया कि जल-चिकित्सा का महत्व स्वीकार करनेवाले किसी डाक्टर को बुलाकर उसे बीच बीच में दिखा दिया जाय। अतः एक डाक्टर को बुलाया गया। उन्होंने उसके कुटुम्बियों को धैर्य धारण करने के लिए कहा और बीच-बीच में आकर वह आश्वासन भी देते रहे।

उसे बुखार इतना तेज था कि मामूली तौर पर जो गीली चादर की पट्टी दी जाती थी उसके स्थान पर उसे गीली चादर को चौपरत कर (Four fold) पट्टी दी गई। ज्यों-ज्यों बुखार कम होने लगा चादर की परतें भी हटाई जाने लगीं। तीसरे दिन दोपहर के बाद उसके शरीर पर दाने दिखायी देने लगे और चौथे दिन तक सब दाने निकल आए। उसे एनिमा भी दिया जाता था और बुखार के लिए उसे दिन में कई बार गीली चादर का स्नान दिया जाता था। आहार के रूप में उसे फल का रस दिया जाता। यद्यपि उसके शरीर पर चेचक के दाने बहुत अधिक

निकले थे, लेकिन जलोपचार के फलस्वरूप रोगिणी को कोई ज्यादा तकलीफ या बेचैनी नहीं मालूम हुई। कमरे में हवा आने-जाने के लिए सभी खिड़कियां और दरवाजे खोल रक्खे गये और बुखार की हालत में खिड़कियों और दरवाजों पर परदे लगा दिए गए थे।'

उपरोक्त दृष्टान्त डा० निकोल्स की पत्नी श्रीमती मेरी एस० जी० निकोल्स की पुस्तक से उद्धृत किया गया है। उक्त पुस्तक में उन्होंने केवल जलोपचार से ही स्त्री-पुरुषों के अनेक रोग दूर हो जाने के दृष्टान्त दिए हैं। उनकी राय में औषध चिकित्सकों द्वारा 'असाध्य' ठहरा दिए जानेवाले अनेक तीव्र एवं जीर्ण रोग जल-चिकित्सा विधि का सहारा लेने पर बड़ी आसानी के साथ दूर हो सकते हैं।

क्षय रोग में जलोपचार

डा० ए० विलफोर्ड हाल (Dr. A. Wilford Hall) ने अपनी पुस्तक में जो क्षय रोग की जल-चिकित्सा विधियां बतायीं हैं, उसके लिए उन्हें हजारों प्रशंसा-पत्र प्राप्त हुए थे। क्षय रोग का वह जो इतना सफल उपचार करते थे, उसका कारण यह था कि वह स्वयं भुक्त भोगी रह चुके थे और जल-चिकित्सा के ही द्वारा उन्हें इस भयानक रोग से छुटकारा मिला था।

वह अभी केवल १६ साल के युवक थे कि उन्हें क्षय रोग हो गया। कुछ वर्ष पूर्व उनके एक भाई की मृत्यु इसी रोग से हो चुकी थी। उनके कौटुम्बिक डाक्टर ने साफ कह दिया—मैं आपको झूठ मूठ में दिलासा नहीं दे सकता। आपकी भी हालत वैसी है जैसी कि आपके भाई की थी। मैं आपको यही राय दे सकता हूँ कि आप सारा काम-काज बन्द करके पूर्ण विश्राम करें। आपकी जिन्दगी कुछ महीने से अधिक नहीं चल सकती। अन्य विशेषज्ञों से भी राय ली गई और उन्होंने भी यही जवाब दिया कि अब आपका एक फेफड़ा बिलकुल खराब हो चुका है। अब आप एक साल से अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकते।

अपने रोग के सम्बन्ध में डा० हाल लिखते हैं—उस समय मैं अस्थि-पिंजर मात्र रह गया था। आशा के कोई चिन्ह नहीं रह गए थे। बगल के कमरे में जाने तक की मुझमें शक्ति नहीं रह गयी थी। दो कदम चलने पर भी थक कर बैठ जाता। वजन केवल १२० पौण्ड रह गया था। किन्तु जलोपचार ने मेरे लिए जादू का असर दिखाया। मुझे पूर्ण आरोग्य लाभ कर लेने पर देखने वाले दंग रह गए। शरीर में शक्ति एवं बल की वृद्धि के साथ साथ मेरा वजन २०० पौण्ड हो गया।

डा० हाल औषधोपचार करने वाले डाक्टर न थे, किन्तु पी० एच० डी, एल० एल० डी० होने के नाते वह एक अच्छे विचारक अवश्य थे। उन्होंने अपने रोग के मुख्य कारण का पता लगाया। उन्हें मालूम हुआ कि अंतड़ियों में संचित मल के ही द्वारा क्षय रोग के कीटाणु संचित मल के ही द्वारा क्षय रोग के कीटाणु उत्पन्न होते हैं। अंतड़ियों में एकत्र मल अथवा विष से शरीर का रक्त दूषित हो जाता है और यह दूषित रक्त ही उनके पोषण का आधार बनता है। यदि इस गन्दगी को दूर कर दिया जाय तो उनके पोषण का अधार मिट जायगा और वे नष्ट हो जायंगे। वह रोग के मूल कारण को अच्छी तरह समझ गए थे। उसका उन्होंने अपना इलाज अपने आप किया और नीरोग ही नहीं हुए बल्कि उनका स्वास्थ्य पहले से भी अच्छा हो गया। ८० वर्ष की आयु में भी उनके चेहरे पर जो सुर्खी थी वह अधिकांश युवकों के चेहरे पर मुश्किल से देखने को मिलेगी।

यूरोप तथा अमेरिका में तो आधुनिक डाक्टर भी विभिन्न रोगों के उपचार के सम्बन्ध में जल की प्रभावकारिता एवं उपयोगिता को स्वीकार कर चुके हैं। जुलाई सन् १८६१ में 'दि न्यूयार्क मेडिकल रेकार्ड' में सेन्ट लूकस अस्ताल के डा० बीवरली ने 'टायफायड बुखार के उपचार में जल का आन्तरिक प्रयोग' शीर्षक महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित किया था उसमें उन्होंने पेरिस के अस्पतालों की मेडिकल सोसायटी की बैठक में प्रो० डेबोव द्वारा पढ़े गए एक निबंध की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई थी। उस निबंध में डा० डेबोव ने दावा किया था कि उन्होंने पेरिस के अस्पतालों में टायफायड के १५० रोगियों को बिना किसी दवा दारू के केवल जल-प्रयोग से ही अच्छा किया है।

यूरोप के एक अन्य सुप्रसिद्ध डाक्टर प्रोफेसर कैन्टेनी ने भी प्रो० डेबोव के विचारों का पूर्ण रूप से समर्थन किया है। बल्कि वह उनसे एक कदम और आगे बढ़ गए हैं

और उन्होंने काफी परिमाण में जल पीने को देने तथा जल का आन्तरिक स्नान कराने इन दोनों बातों की सलाह दी है। तीव्र रोगों में तो वह रोगी को दिन में दो बार आन्तरिक स्नान देते थे।

सुप्रसिद्ध जर्मन चिकित्सक डा० ब्रैण्ड ने ज्वर की अवस्थाओं में रोगियों को कोई दवा न देकर सिर्फ जल पिलाने की सलाह दी है उनकी इस प्रणाली को जर्मनी के फौजी अस्पतालों में (और फ्रांस के भी अनेक अस्पतालों में) अपना लिया गया है। इस प्रकार के जलोपचार का परिणाम यह हुआ कि जब कि औषधोपचार से होनेवाली मृत्यु संख्या ४० प्रतिशत थी, वह जलोपचार के फलस्वरूप कट कर केवल ८ प्रतिशत रह गयी। प्रो० कैन्टेनी का कहना है कि यदि टायफायड ज्वर की प्रारम्भिक अवस्था में जलोपचार किया जाय तो अधिकांश मामलों में रोग को दूर कर दिया जा सकता है।

हैजे में जल का प्रयोग

इसी प्रकार ३ सितम्बर १८९२ में 'शिकागो डेली ट्रिब्यून' ने अपने सम्पादकीय में हैजे के उपचार के लिए जल-प्रयोग की उपयोगिता को स्वीकार किया है। उसमें इस जलोपचार की चर्चा करते हुए बताया गया है। हैजे का यह उपचार प्रकट रूप से बहुत सरल किंतु बहुत ही प्रभावकारी होता है इसमें सिर्फ नमक मिलाए हुए गरम पानी के एनिमा देने के सिवाय और कुछ नहीं किया जाता। लेकिन इसके परिणाम आश्चर्यजनक होते हैं। इसके प्रयोग से हैजे से होने वाली मृत्यु संख्या ५० प्रतिशत घट गयी है। यह दावा किया गया है कि हैजे की प्रायः सभी अवस्थाओं में जलोपचार समान रूप से गुणकारी होता है।

सन् १८३०-३२ में हैजे के भीषण प्रकोप के दिनों में ग्रिफेनबर्ग (जर्मनी) के डा० विनसेन्ट प्रिसनिज ने, जिन्हें प्राकृतिक चिकित्सा का जनक कहा जा सकता है, हैजे के रोगियों का इसी प्रकार जलोपचार किया था और कहा जाता है कि उन्होंने बहुत बड़ी तादाद में हैजे के रोगियों की जान बचा ली थी।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जीर्ण तथा तीव्र सभी प्रकार के रोगों में जलोपचार का महत्व बहुत अधिक है। हम आजकल चिकित्सा-सम्बन्धी एक संक्रान्ति काल के बीच से होकर गुजर रहे हैं। डाक्टरी औषधोपचार प्रणाली के दिन अब गिने गिनाए रह गए हैं।

मैंने अपने प्राकृतिक स्वास्थ्य-गृह में अनेक तरह की स्त्री-पुरुषों की बीमारियों को केवल पंचतत्वों के ही आधार पर—जिनमें जल, वायु और धूप (प्रकाश) का विशेष रूप से प्रयोग होता है—नैसर्गिक उपचार करके अच्छा किया है। हमारे स्वास्थ्य-गृह में कुछ तो ऐसे रोगी उपचार के लिए आए और वे प्रकृति माता की कृपा से अच्छे भी हो गए, जिन्हें बड़े बड़े नामधारी देशी तथा विदेशी डाक्टरों ने जवाब दे दिया था। यहां पर हम प्रसंग-वश उनमें से दो एक वृतान्त दे देना उचित समझते हैं।

मेरे चिकित्सा-गृह में एक बाई अपने इरोग के लाज के लिये आईं। उनका नाम था श्रीमती लक्ष्मी बाई नारायण दास वह एक श्रीमन्त कुल की महिला थीं। धन-वैभव पूर्ण जीवन, स्वास्थ्य एवं आरोग्य सम्बन्धी आवश्यक बातों की गैरजानकारी, अनियमित खान-पान आदि कारणों से उन्हें कब्ज की शिकायत शुरू हुई। कब्ज ही सारे रोगों का मूल कारण बनता है। प्राकृतिक चिकित्सा में इसीलिये चाहे कोई भी रोग हो, मेदे की सफाई पर पहले ध्यान दिय जाता है। किंतु प्रचलित चिकित्सा प्रणाली के डाक्टर कब्ज दूर करने का सही तरीका न अख्तियार करके उन्हे बार-बार जुलाब देते। बाई को भूख न लगती थी, इसके लिये वे भूख लगने की दवा देते। डाक्टरों का ध्यान रोगी को कोई वास्तविक लाभ पहुँचाने की अपेक्षा अपने स्वार्थ-साधन के प्रति अधिक था। इसका नतीजा यह हुआ कि डाक्टरों की जेब तो गर्म हुई, लेकिन रोगिनी के रोग ने जड़ पकड़ लिया— इतना ही नहीं उसने नए-नए रूप भी धारण कर लिये। दवा होती गयी, मर्ज बढ़ता गया। डाक्टरों द्वारा रोग का निदान भी होता रहा। अन्त में रोग के लक्षणों की जांच करके उन्हें बताया कि यह 'स्प्रू' (Sprue) रोग है। फिर कारण का इलाज न हो कर लक्षण का इलाज होने लगा। लेकिन भला इससे रोगिणी को वास्तविक लाभ कैसे हो सकता था। डाक्टरों से निराश होकर घरवालों ने वैद्यों की शरण ली। उन्होंने इसे संग्रहणी बताया।

बाई की क्षुधा मन्द पड़ गई थी। कभी पतले दस्त होते, कभी कब्ज रहता, साथ-साथ बेचैनी भी रहती। रोग पुराना पड़ जाने की वजह से चिकित्सक घबड़ाने लगे और अपनी जिम्मेदारी का बोझ हटा लेने की गरज से यह सलाह दी कि जल-वायु परिवर्तन के लिये रोगिनी को देहात में भेज दिया जाय। घर वालों ने चिकित्सकों की यह सलाह सकता। 'मरता क्या न करता' वाली कहावत चरितार्थ हुई। चारों तरफ से निराश हो जाने पर घर वालों ने बाई का प्रकृतिक चिकित्सा कराने का विचार किया और इस हेतु से वह मेरे पास लायी गयी।

हमारे चिकित्सा गृह में बाई का इलाज इस प्रकार शुरू हुआ। आहार के रूप में उन्हें फलों के रस में पानी

श्रीमती लक्ष्मी बाई नारायणदास

चिकित्सा के बाद — चिकित्सा आरम्भ करने के समय
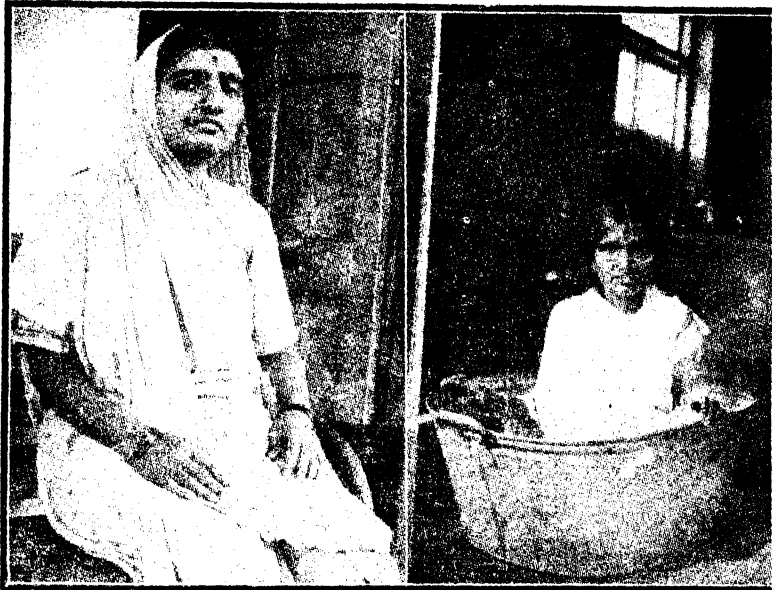
भी मान ली और उन्हें देहात में भेज दिया। लेकिन उनकी हालत सुधरने के बजाय बिगड़ती ही गयी। अतः उन्हें फिर शहर में लाया गया। उनकी शक्ति इतनी क्षीण पड़ गई कि अब वह घर के अन्दर भी चल फिर सकने में असमर्थ हो गयीं। उनके मुंह में छाले पड़ गए। भोजन की रुचि बिलकुल न रह गई। उनके कई और बदबूदार दस्त होने लगे। निद्रा का नाश हो गया—नींद बिलकुल आती ही न थी।

कौटुम्बिक डाक्टर को अब रोगिणी के बचने की कोई आशा न रह गई। फिर भी उन्होंने दिलासा दिया कि वह अपनी दवाओं के जोर से रोगिणी को कोई कष्ट का अनुभव नहीं होने देंगे, क्योंकि अब रोग इस अवस्था में पहुंच गया है कि इससे अधिक और कुछ नहीं किया जा मिलाकर या दूध को फाड़ कर उसका पानी (Whey) दिया गया। इसके साथ जलोपचार किया गया—कटि-स्नान, एनिमा, आदि के रूप में। इस उपचार क्रम से रोगिणी को कुछ ही दिनों में आराम मालूम होने लगा। जीवन की जो आशा छूट चुकी थी, वह अब फिर से होने लगी। पाचन-शक्ति में सुधार होने के साथ-साथ फलों के रस की मात्रा भी बढ़ाई जाने लगी और अब रोगिणी को मठा भी दिया जाने लगा। उसके बाद फलों के रस के स्थान पर ताजे रसदार फल दिये गए। इसके साथ साग-सब्जियों का भी रस दिया जाता।

ढाई साल तक एलोपैथिक डाक्टरों और वैद्य-हकीमों की चिकित्सा से रोगिणी को लाभ तो कुछ भी नहीं हुआ था बल्कि इसके विपरीत उसके लिये बिस्तरे से उठ सकना

भी कठिन हो गया था। लेकिन प्राकृतिक चिकित्सा से वही रोगिनी सवा महीने में सड़क पर टहलने जाने में समर्थ हो गयी। उसके बाद बाई को २० दिन का दूध-कल्प कराया गया। इसके बाद उसे क्रम से कच्ची और पकाई हुई शाक-भाजी फिर साधारण आहार पर उसे ला दिया गया। यहाँ पर रोगिणी की प्राकृतिक चिकित्सा शुरू होने के पहले का और चिकित्सा के बाद का जो चित्र दिया गया है उससे पाठक यह जान सकते हैं कि प्राकृतिक चिकित्सा क्या चमत्कार दिखा सकती है।

क्षय रोग से छुटकारे के लिए जलोपचार

हर साल असंख्य युवक-युवतियों का भक्षण करनेवाले क्षय रोग की भयानकता से तो प्रायः सभी परिचित हो चुके हैं किन्तु अब तक प्रचलित चिकित्सा-प्रणाली इसका कोई निश्चयात्मक और सही इलाज निकालने में असमर्थ ही हुई है। इसके लिए लाखों रुपये खर्च करके देश के उदार एवं लोकसेवी आत्माओं ने अस्पताल खोले हैं। शिमला के समीप धर्म पुर क्षय-रोग चिकित्सा गृह नामक एक ऐसी संस्था है जहां पर प्रायः प्राकृतिक चिकित्सा के नियमों के अनुसार क्षय के रोगियों का इलाज होता है। इसके अलावा किसी दूसरे स्थान में क्षय रोग का समुचित इलाज होता हो, अथवा रोगियों को इच्छित लाभ होता हो, ऐसा कम से कम अब तक देखने या सुनने में नहीं आया है। एलोपैथ डाक्टर तरह तरह की दवाइयों या इंजेक्शनों के प्रयोग से अथवा रोगी को मछली का तेल, अंडे आदि पुष्टिकारक चीजें खिला कर कुछ समय के लिए रोगी का वजन भले ही कुछ बढ़ा सकते हों, लेकिन इन उपायों से रोगी को जीवन शक्ति का लाभ प्रायः नहीं के ही बराबर होता है। फिर तो कुछ समय के बाद रोगी की हालत बिगड़ जाती है और जीवन के अन्त के ही साथ उसके रोग का अन्त होता है। किन्तु इस भयंकर रोग के लिए भी नैसर्गिक उपचार कितना आश्चर्यजनक लाभ पहुंचा सकता है, इसका एक दृष्टान्त मैं यहाँ पर जिज्ञासुओं के लाभार्थ देना चाहता हूँ।

मावजी गौ० ठक्कर नामक एक सज्जन इस भयंकर रोग से ग्रसित हो गये थे। उनका रोग अपनी तृतीयावस्था में पहुंच चुका था। बुखार, खाँसी, बलगम के साथ खून जाना, पतले दस्त होना, दस-बीस कदम चलने की शक्ति न रह जाना—इस तरह की अवस्था हो गई थी उनकी। किन्तु इस हालत में भी प्रकृति ने उनकी रक्षा कर ली। जल, वायु, धूप और आहार इनके समुचित प्रयोग से १०० दिन के भीतर ही रोगी की अवस्था में जो परिवर्तन हुआ वह रोगी के चित्र से साफ प्रकट हो जाता है।

श्री माव जी
चिकित्सा के पूर्व

गौ० ठक्कर
चिकित्सा आरम्भ करने के १०० दिन बाद

अपेंडिसाइटिस के लिए आपरेशन के बजाय जलोपचार

अपेंडिसाइटिश (अंत्र प्रदाह) के लिए एलोपैथी में आपरेशन करके उस भाग को निकाल देने के सिवाय और कोई दूसरा उपाय नहीं बताया गया है। किन्तु विश्वविख्यात प्राकृतिक चिकित्सक डा० जे० एच० केलाग ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'रेशनल हाइड्रोथिरैपी' में यह दावे के साथ लिखा है कि गरम जल के एनिमा से तीव्र (Acute) तथा जीर्ण (Chronic) अपेंडिसाइटिस को जड़ से दूर किया जा सकता है।

पिछले ५ वर्षों में अनेक अपेंडिसाइटिस के रोगी, हमारे चिकित्सा गृह में उपचार के लिए आए। प्राकृति चिकित्सा कराना ही उचित समझा था जिन्हें डाक्टरों ने फौरन आपरेशन करा डालने की सलाह दी थी, किन्तु उन्होंने या तो आपरेशन के भयभीत होने या साधन हीन होने के कारण आपरेशन कराने के बजाय प्राकृतिक चिकित्सा कराना ही उचित समझा था। इनमें से शत-प्रतिशत रोगियों को जलोपचार से लाभ पहुँचा है और इस तरह के कई रोगी अबतक जीवित हैं और पूर्ण स्वास्थ्य एवं आरोग्य का उपभोग कर रहे हैं।

गर्भाशय भ्रंश में जलोपचार

बाई ल० ह० सा० (अवस्था २७ वर्ष) ने दूसरी बार गर्भ धारण किया था। उनकी शिकायत यह थी कि ४ मास के बाद गर्भाशय नीचे खिसक आता था। टट्टी और पेशाब के समय बड़ी तकलीफ होती थी। उठने-बैठने, चलने फिरने या और कोई काम करने में बड़ा दर्द होता। केवल लेटे रहने में ही आराम मिलता। उनके उपचार के लिये एक लेडी (महिला) डाक्टर को बुलाया गया। उसने आपरेशन करा डालने की राय दी। अतएव उस बाई को बम्बई जनाना अस्पताल के सबसे बड़े डाक्टर को दिखाया गया। उसने भी यही राय दी कि गर्भाशय को फौरन काट कर निकलवा देना चाहिए; अन्यथा बच्चा पैदा होने के समय प्रसूति और बच्चा दोनों की जानें चली जानें का खतरा है। यह सुनकर वह बाई बहुत निराश हो गई। गर्भस्थ शिशु को काटकर निकाल दिया जाय, इतना धैर्य उसमें नहीं था। इसके अलावा और कोई भी उपचार कराने के लिए वह तैयार थी। अन्ततोगत्वा वह मेरे चिकित्सालय में भरती हुई। हमारे यहां उसका उपचार इस प्रकार आरम्भ हुआ।

सबसे पहले उसका भोजन बन्द कर दिया गया। आहार के रूप में फलों के रस के सिवाय उसे और कुछ न दिया जाता था। चिकित्सा के तौर पर उसे पहले गुनगुने पानी में कटि-स्नान दिया गया और फिर क्रमशः ठंडे पानी का स्नान दिया जाने लगा। दर्द के लिए मामूली गर्म पानी गर्भाशय में चढ़ाया (Viginal douche) जाता। कुछ दिनों के बाद उसे Cal-fe (एक प्रकार क्षार विशेष जिसका चिकित्सा में प्रयोग होता है) दिया जाने लगा। कटि-स्नान तो प्रसव के समय तक जारी रहा। इस क्रम को जारी रखने के फलस्वरूप प्रसव के समय न तो कोई उसे विशेष पीड़ा हुई और न किसी डाक्टर, नर्स या दाई (Mid wife) को बुलाने अथवा कोई औषधि प्रयोग करने की आवश्यकता पड़ी। बड़ी आसानी के साथ और मामूली दाई के ही द्वारा काम चल गया। इसके एक निरोग लड़की पैदा हुई। उसके २ साल बाद वह फिर गर्भवती हुई और इस बार उसके पुत्र पैदा हुआ। बाद और बच्चा दोनों स्वस्थ्य एवं सकुशल हैं। अभी तक फिर उसे यह शिकायत नहीं हुई है।

जीवन सखा-प्रेमियों से

जीवन सखा का जनवरी का अंक एक विशेषांक है—"जल चिकित्सांक"। इस विशेषांक की मांग अत्यधिक है। हमारे पास इसके लिए बराबर आर्डर आ रहे हैं। इस संबंध में हमें यह सूचित करते हुए संकोच होता है कि हमने यह जल-चिकित्सांक अत्यन्त परिमित संख्या में प्रकाशित किया है जो कि हमारे स्थायी ग्राहकों के लिए ही अपर्याप्त साबित हो सकती है। अस्तु, जीवन सखा स्नेहियों से निवेदन है कि वह केवल विशेषांक मंगाने का कष्ट न उठाकर यदि स्थायी रूप से जीवन सखा परिवार में शामिल होने की कृपा करें तो अति उत्तम हो।

व्यवसथापक—

जल तथा आरोग्य

श्री श्रीकृष्ण शर्मा, बी० ए०, एन० डी० डी० वाई

प्रकृति नटी द्वारा संचालित सृष्टि के सतत परिवर्तन शील नाटक में जल 'प्रधान पात्र' का अभिनय करता है। यह चंचल बहुरूपिया सदा-सर्वदा अपना स्वरूप बदलता रहता है। एकता में विविधता की रागिनी झंकृत करने वाला यह कौतुकी अपना एक व्यापक किन्तु रहस्यमय अस्तित्व रखता है। यह अपना रूप और गुण बदलने में अप्रतिम है। कभी तो हम इसे हिम के रूप में पर्वतराज के उन्नत मस्तक पर हीरक किरीट की शोभा सरसाते देखते हैं तो कभी अनन्त नीलाम्बर में सघन घन मालाओं के रूप में रस-वर्षण करते हुए! यह कभी तो वसुन्धरा के धधकते हुए अन्तस्तल से वाष्प रूप में निकलने के फलस्वरूप ज्वालामुखी को उभाड़ कर प्रलय नृत्य करने लगता है और कभी शस्य श्यामला धरिणी पर ओस के रूप में बिखरता हुआ नैसर्गिक शान्ति फैला देता है। कभी तो यह चट्टानों को तोड़ कर जल-प्रपात अथवा निर्झर के रूप में कल-कल नाद करता है, तो कभी महासागर की गगन चुम्बी लहरों के रूप में अट्टहास! जल को जीवन भी कहते हैं, क्योंकि यह जीवन की भांति सदैव गतिशील है। इसकी गतिशीलता में ही इसकी अद्भुत शक्तियों का निर्माण होता है और तभी वह सृष्टि के समस्त रचनात्मक कार्य करने में सफल भी होता है। गतिहीनता इसके लिये सांघातिक होती है। किसी जलाशय या गड्ढे में बंधा हुआ गतिहीन जल निष्प्राण हो उठता है, इसके सारे गुण मारे जाते हैं। यह सड़न उत्पन्न करके अनेक सूक्ष्म रोगाणुओं की सृष्टि करने लगता है जो इस भूतल के प्राणियों के लिए संहारक बन बैठते हैं। सचमुच जल की माया कितनी विचित्र है?

परन्तु सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि सृष्टि के सूक्ष्म तत्वों को अपने विलीन किये रहने वाला यह चंचल जल पावनता, शीतलता एवं शक्ति अक्षय भण्डार है। इसकी चंचलता और गतिशीलता में ही एक विचित्र गंभीरता एवं शुचिता का रहस्य छिपा है। यह मनुष्य के तप्त हृदय को शीतल करता है, उसके जीवन के प्रत्येक कार्य में सहायक और उपयोगी होता है। जल के बिना यह जगतीतल ही मरुस्थल नहीं बनता, बल्कि मानव जीवन की उर्वरता भी मारी जाती—मनुष्य का शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास हो ही नहीं सकता था।

जल सभ्यता का मूल उत्स

अत्यन्त प्राचीन समय में एक स्थान से दूसरे स्थान में विचरण करने वाली मानव जाति को जल का आश्रय प्राप्त होने पर ही उसे स्थिरता एवं दृढ़ता प्राप्त हुई होगी। एक जगह बस कर सामाजिक जीवन व्यतीत करने की भावना जल से ही उत्प्रेरित हो कर मानव मस्तिक में पहिली बार उत्पन्न हुई रही होगी, यह तो मानना ही पड़ेगा। नदी के किनारों पर अनेक नगरों की नीव पड़ी, जहाँ भिन्न भिन्न प्रकृति एवं स्वभाव वाले मनुष्यों का सम्मिलन हुआ, परस्पर विचारों के आदान-प्रदान के फलस्वरूप सभ्यता एवं संस्कृति का निर्माण हुआ। यह प्रभाव इतना गहरा एवं सुनिश्चित था कि आज भी हम उसकी उपेक्षा नहीं कर सके हैं, वह हमारे इतिहास में 'सिन्धु नदी की उपत्यका की सभ्यता' (Indus Valley Civilsation) या 'नील नदी की उपत्यका की सभ्यता' (Nile Valley Civilsation) के रूप में अंकत है।

हमारे देश में जीवन-यापन तथा रहन-सहन की प्रत्येक दिशा में जल अपना महत्वपूर्ण अस्तित्व रखता है। हमारे बड़े बड़े तीर्थ स्थान नदी या समुद्र तट पर ही स्थित है। त्योहारों तथा अन्य पुण्यपर्वों के अवसर पर प्रायः नदी या जलाशय के ही किनारे उत्सव होता है। हमारे जीवन से सम्बन्धित कोई भी धार्मिक एवं दैनिक कर्म जल के बिना सम्पादित नहीं हो सकता। जल जीवन के विकास का बहुमूल्य साधन है। पौराणिक आख्यान के अनुसार जल लक्ष्मी की उत्पत्ति-स्थान तो है ही, वह अमृत घट का दाता भी है। जल मनुष्य को नीरोग करके दीर्घायु बनाता है। जल-तत्व का अध्ययन एवं अन्वेषण करने पर यही ज्ञात होता है कि यह अमृतोपम गुणों से परिपूर्ण है।

पश्चिम में प्राकृतिक चिकित्सा का प्रादुर्भाव जल-चिकित्सा के ही रूप में हुआ । आज भोजन-विज्ञान, सूर्य-रश्मि-चिकित्सा, व्यायाम आदि अनेक उपचारात्मक प्रणालियों के काफी उन्नत एवं विकसित हो जाने पर भी मूल जल-चिकित्सा का महत्व ज्यों का त्यों बना हुआ है ।

प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली का अवगाहन करते समय आज भी हमारे मस्तिष्क में उस दृश्य का स्मरण हो आता है जब कि बवेरिया के एक मामूली किसान विसेन्ट प्रिसनिज ने एक लंगड़ाती हुई हिरनी को जलाशय में अपने प्राकृतिक उपचार के लिए प्रवेश करते हुए देखा था । उस समय उसने जल के कल-कल शब्द में जो नैसर्गिक सन्देश सुनायी दिया वह चिकित्सा जगत में क्रान्ति मचा देने वाला था। जिस प्रकार न्यूटन ने वृक्ष से जमीन पर सेब गिरते देखकर पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति (Law of gravity) का आविष्कार किया उसी प्रकार उस हिरनी वाली घटना से प्रभावित होकर विन्सेन्ट प्रिसनिज ने जल-चिकित्सा-प्रणाली की नींव डाली । उसने जो बीज वपन किया उसे उसके शिष्यों ने अभिनव प्रयोगों के जल से सिंचित करके अंकुरित एवं परिपल्लवित जिसने किया आज कल्प वृक्ष का रूप धारण कर लिया है और जिसकी शीतल पावन छाया पीड़ित मानवता को सुख-शान्ति प्रदान कर रही है । इस कल्प वृक्ष को अपने सतत प्रयत्नों से विकसित एवं परिपल्लवित करने वालों में सबसे अधिक श्रेय आँथ, नीप और लुई कूने को है, जिन्होंने नैसर्गिक चिकित्सा पद्धति को एक सर्वांगपूर्ण वैज्ञानिक प्रणाली के रूप से परिणत कर दिया है ।

आज हमें यह जान कर आश्चर्य होता है कि एक समय वह भी था जब एलोपैथिक डाक्टर ज्वर से संतप्त रोगी को जल का प्रयोग तक नहीं करने देते थे । उनका ख्याल था कि जल उनके आरोग्य लाभ में बाधक है। उनकी यह भ्रान्ति कितनी हास्यास्पद थी । वह समझते थे कि यदि रोगी को जल पीने को दिया गया तो उसकी आँतें फूल जायंगी । किन्तु इस तरह की भ्रामक धारणाओं के विरुद्ध संसार के प्रगतिशील प्राकृतिक चिकित्सकों ने जिस आन्दोलन का सूत्र-पात किया उसके फलस्वरूप इन एलोपैथ डाक्टरों की भी आँखें खुल गयीं और अब वे ज्वर के रोगी को जल पीने को ही नहीं देने लगे बल्कि टायफायड (विषम-ज्वर) में स्पंज-बाथ (घर्षण स्नान) तक कराने लगे हैं ।

स्वास्थ्य एवं आरोग्य के लिए जल का महत्व

आइए, अब हम जल के चिकित्सा सम्बन्धी महत्व पर विचार करें ।

जल में चार विशेष गुण हैं । पहला है व्यापकता (Emanence) दूसरा भेद्यता (Permeatability), तीसरा लोच (Mobility) और चौथा गुण है निर्गुणता (Neutrality) । इसमें घोलन-शक्ति (solvent) विशिष्ट रूप में विद्यमान है ।

जल स्वयं सर्वत्र व्याप्त है ही परन्तु वह शरीर में भी सर्वत्र समा जाता है । रग रग में व्याप्त हो जाने के कारण यह सफाई का काम बहुत अधिक करता है । शरीर में कुछ पोल (cavities) स्थान हैं जहाँ वह सीधे पहुँचाया जा सकता है और वहां से गंदगी भी साफ हो जाती है । नाक के द्वारा मुंह तक, मुख से गले होता हुआ आमाशय और आँतों तक पहुँचता है, गुदा के द्वारा सम्पूर्ण बड़ी आँतों में फैल जाता है और बज्रौली द्वारा ब्लैडर तक में पहुँचाया जा सकता है । कान में भी बड़ी सुगमता से चला जाता है और सब मैल खींच कर बाहर निकाल देता है । शरीर के आन्तरिक भागों में सीधे प्रविष्ट होने के कारण कफ को बड़ी सुगमता से निकाल देता है । श्वास-प्रणाली (pespiratoy pasasge) और भोजन प्रणाली (Alimenatry Canal) को पूर्ण रीति से साफ करने की क्षमता जल में है । योगियों ने इसी लिये धौति, नेति, वस्ति इत्यादि क्रियाओं के रूप में शरीर शुद्धि के लिये जल प्रयोग बताया है ।

जल केवल इन्हीं पोल-स्थानों (Cavities) ही में नहीं वरन शरीर के प्रत्येक कीट, तन्तु तथा कोष में प्रविष्ट हो जाता है । इसका एक प्रमाण तो यही है कि अगर सादे जल को पिया जाय तो वह पेशाब और पाखाने के द्वारा विष को लिये हुये निकलता है

शरीर में मूल रूप से तीन आवश्यक क्रियायें होती रहती हैं । वे है पाचन समीकरण और विसर्जन की क्रियायें। स्वास्थ्य के लिये यह आवश्यक है कि वे सुचारु रूप से हों और तीनों में सामंजस्य होना चाहिये । तीनों में से किसी एक में भी त्रुटि हो जाने से स्वास्थ्य संतुलन बिगड़

जायगा। इन तीनों क्रियाओं में जल की आवश्यकता होती है बल्कि बिना जल के यह सम्भव ही नहीं। जल के गुण और मात्रा से तीनों क्रियाओं में परिवर्तन हो जाता है। जल कम पीने से पाचन क्रिया और उसके फलस्वरूप विसर्जन क्रिया भी ठीक प्रकार नहीं होती और शरीर में मल एकत्रित होने लगता है। यह जल की तरलता (Fluidity) ही है जिसके द्वारा मल विसर्जन यन्त्रों (जैसे चर्म, गुर्दे इत्यादि) की सहायता से शरीर के बाहर फेंक दिया जाता है। जल शरीर के समस्त सरल पदार्थों (Fluids) का आधार है। शरीर के दस भागों में आठ भाग जल से बना है अतएव जल शरीर का प्रधान तत्त्व है।

शरीर में प्रत्येक कोष (Cell) सक्रिय है। यह सेल टूटते और बनते रहते हैं। इन दोनों क्रियाओं में जल का होना अत्यन्त आवश्यक है। बिना जल के कोष न तो पोषक तत्व ग्रहण करके विकसित हो सकते हैं और न इनका विभाजन ही हो सकता है। जल को बन्द कर दो तो जीवन लुप्त हो जायग। इसीलिये जल को जीवन भी कहा गया है।

अब यह सिद्ध हो गया कि जल के बिना जीवन सम्भव नहीं। परन्तु जल में वे कौन से गुण हैं जो चिकित्सा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण माने जाते हैं। इन आरोग्यकारक गुणों पर (Remedial powers) विचार करना चाहिये।

जल शरीर का ताप व्यवस्थापक (Thermal Regulator) भी है और ताप निर्णायक यंत्र (Thermometer) भी। प्यास और शरीर पर जल पड़ने पर मानसिक प्रतिक्रिया (रुचि अथवा भय)से शरीर की आन्तरिक गर्मी का अनुमान किया जा सकता है। रोगी गर्म अनुभव कर रहा है अथवा ठंड (Chilly) यह अनुभव करना चिकित्सक के लिये बहुत आवश्यक है। आन्तरिक गर्मी ताप यन्त्र से नहीं नापी जा सकती परन्तु रोगी की शारीरिक और मानसिक स्थिति से अनुमान अवश्य किया जा सकता है—जैसे जबान का सूखा होना, त्वचा की रुक्षता, प्यास इत्यादि।

शरीर में ताप सम्बन्धी त यंत्र हैं। पहले को कहते हैं उष्ण-उत्पादक (Thermogenetic), दूसरे को उष्ण-प्रसारक (Thermotaxis) और तीसरे को उष्ण-वाहक (Thermolytic) कहते हैं। इन्हीं के द्वारा शरीर में गर्मी का उत्पादन, प्रसारण (Distribution) और बहिष्करण होता है। जल तीनों को प्रभावित करता है और विशेषकर पिछले दो यन्त्रों को।

जल के द्वारा गर्मी निकलने में बड़ी सहायता मिलती है। जल अपनी इस विशेषता के कारण चिकित्सकों को अधिक प्रिय है! प्रायः सभी तीव्र व्याधियों में उद्वेग क्रिया के अन्तर्गत शरीर में उष्णता बढ़ जाती है। परन्तु अगर यह गर्मी चर्म के द्वारा बाहर न निकल सकी तो शरीर के आन्तरिक भाग और विशेष कर उपयोगी अवयवों (Vital organs) में व्याप्त हो जाती है। यह दशा जिसे आन्तरिक ज्वर कहते हैं बहुत भयानक होती है। अगर इस ज्वर को बाहर न निकाला जाय तो प्राण खतरे में पड़ जाता है।

जल अपना कार्य विशेषकर चर्म के द्वारा करता है उसका बाह्य प्रयोग चर्म के ही ऊपर जाता किया है। चर्म के सम्पर्क में आने से जल उसकी गर्मी अपने में ले लेता है। हम यह जानते हैं कि कुछ विशिष्ट उष्णांक (Calories) एक निश्चित परिमाण में मल को गर्म करता है अस्तु चर्म की सतह पर जल के गर्म होने का तात्पर्य है अनेक उष्णांक गर्मी शरीर से निकल जाना। परन्तु यह प्रभाव बहुधा (mechanical) यान्त्रिक होता है।

जल के बाह्य प्रयोग में ठंडा पैक बहुत उपयोगी होता है क्योंकि इसका प्रभाव क्रियात्मक (Functional) भी होता है। पैक के द्वारा जो गर्मी निकलती है वह ताप विकीरण (Heat Radiation) के सिद्धान्त पर अवलम्बित है। पैक के नीचे जो नम गर्मी बनती रहती है वह अन्दर से रक्त को बाहर चर्म की ओर खींचती है जिसके फलस्वरूप न्यूनतम रक्त नलिकाएं (Blood vessels) और रोम छिद्र फैल जाते हैं और शरीर से अत्यधिक ताप को बाहर निकालने में समर्थ होते हैं। ज्वर की दशा में रक्त नलिकाएं और रोम-छिद्र तन कर संकुचित हो जाते हैं जिसके कारण गर्मी निकल नहीं पाती और चर्म गर्म और

रूखा हो जाता है और गर्मी शरीर के अन्दरूनी भाग में बैठ जाती है। पैक से यह चर्म फैल जाता है और स्वेदन होने लगता है और फिर ज्वर भी स्वतः उतर जाता है।

शरीर की आन्तरिक गर्मी के कारण प्रदाहयुक्त भागों या अवयवों में रक्त का जमाव अधिक हो जाता है। रक्त के इस अत्यधिक जमाव को पैक बड़ी सुगमता से दूर कर देता है क्योंकि रक्त का खिंचाव त्वचा की ओर होने लगता है और अन्दर रक्त का दबाव कम हो जाता है। इस प्रकार पैक से न केवल गर्मी कम होती है वरन् शरीर का विष भी बाहर निकल जाता है। पैक के वस्त्र पर भूरा या पीला रंग और दुर्गन्ध से विदित होता है कि शरीर का विष भी पैक के द्वारा निकल जाता है।

परन्तु केवल यही बात नहीं है कि पैक से गर्मी ही निकलती है वरन् इसके विपरीत शरीर की ठंडी अवस्था जबकि शरीर का ताप सामान्य से कम हो गया हो दूर कर के गर्म प्रतिक्रिया (Warm Reaction) उत्पन्न कर देता है। इसमें पैक के आवरण गीले कम हों और सूखे अधिक। इसके अतिरिक्त पैरों में गर्म बोतलों या रोगी के चारों ओर गर्म ईंटें भी रखनी चाहिये।

इस प्रकार जल के उचित प्रयोग से ज्वर या अन्य प्रदाहयुक्त अवस्थायें आसानी से पार हो जाती हैं। अपने ठीक समय में बिना किसी क्षति या कुप्रभाव के यह अवस्था (Inflammatory procss) निर्विघ्न रूप से अन्त हो जाती है। शरीर की शक्तियों का अपव्यय भी नहीं होता।

परन्तु बाह्य प्रयोग के अतिरिक्त आन्तरिक प्रयोग से भी गर्मी कम करने में सहायता मिलती है। जल की एक विशेषता है उसकी निर्गुणता अस्तु इसका अम्ल से रासायनिक स्नेह है। शरीर की बढ़ी हुई अम्लता को कम कर के भी यह शरीर के ताप को कम करता है। गठिया जैसे रोग में जल के प्रचुर उपयोग से शरीर में एकत्रित अम्ल पेशाब और पसीने के रूप में निकल जाते हैं और रोगी को विशेष आराम मिलता है।

ठंडे जल का दूसरा महत्वपूर्ण प्रभाव शरीर की सूक्ष्म शक्तियों पर पड़ता है। शरीर में विद्युत-चुम्बक शक्तियों की वृद्धि हो जाती है जिसके फलस्वरूप शरीर में नई स्फूर्ति अथवा उत्तेजना का भान होता है। जीवन शक्ति केवल गर्मी या सर्दी के निरन्तर संसर्ग से प्रभावित नहीं होती परन्तु यदि उसे गर्मी और सरदी का क्रमिक (Alternate) प्रयोग किया जाय तो विशेष रूप से उत्तेजित होती है। शरीर में गर्मी यों ही विद्यमान है परन्तु जब एकाएक ताप का अन्तर ठंडे जल के द्वारा पहुँचता है तो विद्युतशक्ति का प्रवाह होने लगता है।

इन शक्तियों के प्रवाह से शरीर में अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन होने लगते हैं जो आरोग्य के लिये बहुत आवश्यक हैं। विद्युत जल के परमाणुओं (Molecules) को उनके मूल तत्वों में विभक्त कर देती है और शरीर में आक्सीजन, हाइड्रोजन और ओज़ोन (Ozone) गैस की वृद्धि होती है। आक्सीजन और ओज़ोन से शरीर के विजातीय द्रव्य भस्म हो जाते हैं और शरीर निर्मल हो जाता है। इन गैसों के संयोग से कीटाणुनाशक गुण भी शरीर में तीव्र हो जाते हैं।

जल का विशेष प्रभाव रक्त के संचालन पर भी पड़ता है। जल के प्रयोग से रक्त सम्पूर्ण शरीर में बड़े वेग से दौड़ने लगता है। ठंडे जल से एक प्रकार का धक्का सा लगता है जिससे सम्पूर्ण शक्तियाँ उत्तेजित हो उठती हैं। पहली प्रतिक्रिया के अन्तर्गत रक्त शरीर के अन्दर चला जाता है परन्तु दूसरी प्रतिक्रिया, जो स्थायी होती है, रक्त को अन्दर से बाहर की ओर बड़े वेग से लाती है। रक्त की इस गति और प्रवाह का लाभकारी प्रभाव समस्त शरीर पर पड़ता है।

जल के उत्तेजक प्रभाव को वैज्ञानिकों ने एक प्रकार से और सिद्ध किया है। नहाने के पूर्व एक बूंद रक्त में लाल कण गिने गये और फिर नहाने के पश्चात। नहाने के उपरान्त लाल कणों की संख्या दूनी पायी गई। इसका तात्पर्य यह नहीं कि जल ने इतने नवीन कण पैदा कर दिये परन्तु जो अलसाए हुए कण इधर उधर बिखरे हुए थे वे एक जगह एकत्रित हो गए।

जल का स्नायुओं पर बड़ा शीतल और पुष्टिकारी प्रभाव पड़ता है। स्नायुओं का तनाव कम हो जाता है

और उनको विशेष आराम मिलता है। जल के समान स्नायुओं के लिये, किंचित स्वच्छ वायु को छोड़कर, अन्य कोई चीज नहीं। विशेष स्नानों में मेहन-स्नान (Sitz-bath) का स्नायुओं पर बड़ा शामक (Soothing) प्रभाव पड़ता है। बड़ी हलकी और सरल (Non Irritable) उत्तेजना होती है जो समस्त स्नायु-प्रणाली को सशक्त कर देती है। वर्तमान युग मशीनों का है और कलों की कोलाहल के फल स्वरूप जो स्नायविक और मानसिक रोग आजकल प्रचलित हैं उनका एक मात्र सहारा शीतल और स्वच्छ जल है। अनिद्रा, हिस्टीरिया, उन्माद इत्यादि रोगों पर जल का सफल प्रयोग किया जा सकता है। स्नायु-शक्ति को पुनः संचालित करने क्षमता रखने के कारण, जल का जीर्ण-रोगों की चिकित्सा में महत्वपूर्ण स्थान है।

जल का आरोग्य सम्बन्धी प्रयोग उसके रेचक अवयवों को प्रभावित करने पर निर्भर है। प्रत्येक रेचक अवयव का जल से घनिष्ट सम्बन्ध है। त्वचा के द्वारा पसीने (अदृश्य और दृश्य) के रूप में फेफड़ों के द्वारा श्वास के रूप में, गुर्दे के द्वारा पेशाब और गुदा के द्वारा मल के रूप में यह निकलता है। इससे स्पष्ट है कि सभी रेचक अवयव इसका प्रयोग करते हैं। चर्म के विषय में अभी कहा गया है कि यह विष को पसीने के रूप में बाहर निकालता है। श्वास में भी जल का अंश रहता है। गुर्दे के लिए जल अत्यन्त आवश्यक है। रक्त के तीक्ष्ण अम्ल को पानी के द्वारा घोल कर शरीर से पेशाब के रूप में निकालता है। अगर पानी कम पिया जाय तो यही अम्ल गुर्दे के के कोमल कोषों की क्षति पहुँचाता है। इसी प्रकार कोष्ट को भी जल की अवश्यकता पड़ती है। जल का बहुत बड़ा भाग बड़ी आंत में सूखता है और मल के निष्कासन में अग्रगामी किया (peristaltieaction) को सहायता पहुँचाता है।

जल शरीर के लिए एक सर्वांगपूर्ण टानिक है। यह रक्त, स्नायु, मांशपेशी तथा प्रत्येक कोष को सतेज और सशक्त करता है। शरीर की समस्त प्रणाली जैसे—भोजन, श्वास, स्नायु, रक्त संचालन (Circulatory system) इत्यादि प्रणालियों के सुसंगठित कार्य के लिये अनिवार्य है। परन्तु जल का स्वास्थ्यकारी प्रभाव मन पर भी पड़ता है। यह मन को शान्ति, स्फूर्ति तथा प्रफुल्लता प्रदान करता है। मनुष्य की नीच पाशविक प्रवृत्तियों को शान्त कर के दैवी प्रवृत्तियों की ओर मन को ले जाता है। यह सदाचार का अनमोल साधन है। किसने गंगा या यमुना नदी ...न कर के पवित्र विचारों और भावों का अनुभव नहीं किया ? कुछ नहीं तो मन की मलिनता, उद्विग्नता तथा आलस्य को तो यह अवश्य हर लेता है।

इतने गुण जान लेने के उपरान्त प्रश्न यह उठता है कि क्या जल में कोई अवगुण नहीं है ? वही दृष्टांत जो पहले हमने लिया था फिर से लें। समुद्र मथने पर केवल अमृत ही नहीं बरन् विष भी निकलता था। अस्तु जल भी बिना हानिकारक गुण के नहीं हो सकता। कोई चीज स्वयं अच्छी या बुरी नहीं होती बरन् उसका प्रयोग ही उसको भला या बुरा बनाता है। वास्तव में जल के दुरुपयोग से वह विष के समान घातक सिद्ध होता है। जल रोगी को मार सकता है, अगर उचित रूप से व्यवहार न किया जाय।

ज्वर की अवस्था में जल को केवल ताप की उग्रता को कम करने के लिये ही प्रयोग किया जाता है। ज्वर को जल के द्वारा वैसे ही दबाया जा सकता है, जिस प्रकार तेज औषधियों से सम्भव है। अतएव जल का ताप उस हद तक रखा जाता है जितने में प्रवाहयुक्त अवस्था सरलता और सुरक्षित रीति से पूर्ण हो जाय, न कि उसकी गति को बीच ही में रोकने के लिये। जल के उचित प्रयोग के लिये रोग की अवस्था तथा रोगी की शक्ति का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये और उसी के अनुसार जल का ताप और स्नान या पैक का समय निश्चित करना चाहिये। यह बात भ देखना आवश्यक है कि आन्तरिक ज्वर भीतर न रह पावे और तुरन्त बाहर निकालने का प्रयत्न करना चाहिये।

कमजोर रोगी के साथ जल का बाह्य और आन्तरिक प्रयोग में बहुत सावधानी रखनी चाहिये। कमजोरी की दशा में अधिक जल देने से शारीरिक रस पतले पड़ जाते है और आरोग्यकारक शक्ति कम हो जाती है।

एक अवस्था ऐसी भी होती है जब कि जल बिलकुल ही नहीं दिया जा सकता। वह दीन दशा जलोदर (Dropsy) की होती है। ऐसी हालत में प्रत्येक कोष जल से लुचलुचे (Water Logged) हो जाते हैं और शरीर साधारण

जल को ग्रहण नहीं कर सकता। जल देने से तन्तुओं (Tissues) में पुनः जल संचय होने लगता है। ऐसे रोगी के उपयोगी अवयव, जैसे यकृत, गुर्दे, प्लीहा इत्यादि बहुत कमजोर हो जाते हैं और पाचन-क्रिया बिलकुल कमजोर पड़ जाती है। ऐसी दशा में जल केवल फलों के रस के रूप में दिया जा सकता है। इस दशा में दूध में पानी मिलाने से भी हानि कर जाता है। जल को इसलिये थोड़ाथोड़ा कर के पीना चाहिए और कभी भी बड़े बड़े घूंट न पीना चाहिये।

जल की उपयोगिता को जो समझता है उसके लिए जल की एक-एक बूंद मोती के समान मूल्यवान हैं। जल का स्वास्थ्य और आरोग्य से घनिष्ट सम्बन्ध है। वर्तमान युग के संघर्षमय जीवन में मनुष्य मात्र के लिए शान्ति शुचिता तथा सत्य का सन्देश सुनने वाला जल ही है। हमारा कर्त्तव्य हमें उचित है कि इससे लाभ उठाकर जीवन के लक्ष्य की ओर अग्र- सर हों और सुख-शान्तिमय जीवन व्यतीत करें।

जल-चिकित्सा का इतिहास

(श्री कामता प्रसाद अग्रवाल एम० ए०, एन० डी० डी० वाई०, विशारद)

यह कहना शायद अत्युक्ति न होगा कि जल चिकित्सा का इतिहास यथार्थ में प्राकृतिक चिकित्सा का ही इतिहास है और स्वतः प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास है जल चिकित्सा का श्रीगणेश। इसके अतिरिक्त यह भी समान रूप से सत्य है कि औषधि या चिकित्सा के रूप में जल का प्रयोग मानव सभ्यता के आदि काल से होता चला आ रहा है। प्रकृति के "क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा"—इन पञ्च तत्वों में जल को ही प्रधानतया यह श्रेय क्यों प्राप्त है? इसीलिए कि प्रकृति के पांचो तत्वों में जल ही ऐसा एक तत्व है जो आपकी सेवा करने को निरन्तर सुलभ रहता है, आपके इतने निकट इतनी और प्रचुरता से विद्यमान है, आपके प्रत्येक रोगों में अपने इतने अधिक रूप बदलकर आप का उपकार करने में समर्थ रहता है। चाहे आप किसी भी रोग से पीड़ित क्यों न हों, चाहे आप कितने ही अस्वस्थ क्यों न अनुभव करते हों, जल का कोई-न कोई प्रयोग, कोई-न-कोई उपचार आपकी सहायता को सदैव प्रस्तुत मिलेगा, आपकी पहुंच उस तक अवश्यमेव होगी। जल में ही वह गुण है जिस कारण वह कल्पना के अन्दर आने वाले प्रत्येक शारीरिक अथवा मानसिक रोग की किसी भी दशा अथवा अवस्था में समय एवं स्थिति के अनुसार अपने अनेकानेक आकार बदल सकता है, अनेकानेक अद्भुत रूप धारण कर सकता है, अनेकानेक उपचारात्मक उभाड़ों को उत्पन्न कर व्याधि से मुक्ति दिला सकता है। जल का यह परोपकार इस सीमा तक पहुँचा हुआ है कि वह एक मात्र 'सर्वरोग-औषधि' की संज्ञा का पूर्ण अधिकारी है। अन्य किसी प्राकृतिक तत्व में यह गुण आपको कहां मिलेगा? प्रकृति का अन्य कोई तत्व विश्व में इतनी व्यापकता से न तो विद्यमान है और न वह है आपकी चिकित्सा के निमित इतना बहुरूपिया। अन्य कोई तत्व शरीर में उपचार-सम्बन्धी इतनी प्रतिक्रियाएं नहीं उत्पन्न कर सकता है और न उसका प्रयोग प्रत्येक रोग अथवा दुर्घटना जन्य संकटों के समय इतनी शीघ्रता व सरलता से उपलब्ध एवं उपादेय ही हो सकता है।

लेखक

भारतीय प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित जल के औषधि-गुण

हाँ, तो मैं कह रहा था कि चिकित्सा के रूप में जल का प्रयोग उतना ही पुराना है जितनी कि स्वयं जल की इस पृथ्वी पर सृष्टि। हमारे वेदों की रचना कदाचित् सृष्टि के आदि से मानी जाती है। देखिए, उनमें जल के अपूर्व चिकित्सा-गुण की किस प्रकार महिमा गाई गई है। ऋग्वेद के केवल दो श्लोकों का हिन्दी अनुवाद नीचे मैं दे रहा हूँ जिससे मेरे इस कथन की सत्यता का पूर्ण प्रमाण मिल जायगाः—

(१) "जल औषधि है। जल रोगों का नाश करता है। यह सब रोगों को दूर करता है। इसलिए यह तुम्हारा रोग दूर करे।" ऋग्वेद १०। १३७। ६

(२) "जल में अमर बना देने की शक्ति है अर्थात् यह हमें निरोग बना कर अमर कर दे सकता है। जल में रोग छुड़ा देने का गुण है। इस जल की ऐसी महिमा है।" ऋग्वेद १२। ३। १६
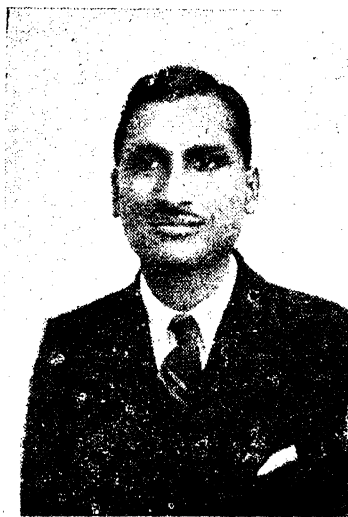
आयुर्वेदीय ग्रन्थों में तो जल द्वारा रोगों को दूर करने की अनेक विधियाँ वर्णित हैं। इसीलिये बहुत से आयुर्वेदाचार्य प्राकृतिक चिकित्सा एवं जल-चिकित्सा को आयुर्वेद के ही अन्तर्गत उसका एक विकसित अङ्ग, उसकी एक प्रस्फुटित शाखा मानते हैं। उनकी धारणा है कि प्राकृतिक चिकित्सा अथवा जल-चिकित्सा-शास्त्र कोई नवीन खोज नहीं है, उसका स्रोत, उसका उद्‌गम, आयुर्वेद से से ही निकला है। चीन का प्राचीन साहित्य बताता है कि वहाँ उपचार के लिये जल का प्रयोग कम-से-कम ईसा के ७०० वर्ष पूर्व से होता आ रहा है। एक चीनी लेख में, जिसका रचना-काल ईसा के कई शताब्दि पूर्व की आँका जाता है, वर्णन मिलता है कि वहां के एक चिकित्सक ने एक चीनी स्त्री के लिये यह चिकित्सा निर्धारित की थी—हिम-जल के सौ अवगाहन और प्रत्येक अवगाहन के पश्चात् एक लिनेन की चादर को लपेटना। पाठक देख सकते हैं कि यह उपचार आधुनिक 'भीगी चादर की लपेट' (Wet sheet Pack) के सिद्धान्त से कितना मिलता-जुलता है।

ग्रीस और रोम में जल का प्रयोग

हमारे देश की तरह यूनान (ग्रीस) में भी जलके लाभ-प्रद प्रभाव को जान कर नित्य स्नान को एक धार्मिक-कृत्य का रूप दे दिया गया था जिससे कि काहिल और सुस्त लोग भी धार्मिक बन्धन के कारण प्रतिदिन स्नान करें और उसके लाभ से वंचित न रहें।

यूनान में ४६०-३७७ ई० (ईसा के पूर्व) में हिपोक्रिटीज नामक एक व्यक्ति का जन्म हुआ था। हिपोक्रिटीज वह व्यक्ति है जिसे लोग भ्रम वश 'औषधोपचार प्रणाली का जनक मानते है, पर वह जीवन भर प्राकृतिक चिकित्सा के नियमों के अनुसार चिकित्सा करता रहा और इसी कारण उसे अपने समय में बड़ी प्रसिद्धि मिली थी। हिपोक्रिटीज को ठण्डे व गर्म जल के औषधि-गुणों का बड़ा अच्छा ज्ञान था। इनका प्रयोग वह ज्वर, घाव, रक्त-स्राव तथा अन्य कितनी ही विविध बीमारियों के उपचार में बे खटके करता था। रोगों को दूर करने में जल के प्रयोग के समय वह अनेक आदेश दिया करता था। इन आदेशों पर आज भी दो हजार वर्षों के अनुभव के पश्चात् कोई संशोधन नहीं किया जा सका है। उदाहरणके लिए, उसका एक आदेश यह था कि ठण्डे स्नान बहुत थोड़े समय का होना चाहिए। इसके अतिरिक्त वह ठण्डे व गर्म पानी के प्रयोग की 'प्रतिक्रिया के नियम' से भी पूर्णतः परिचित था, क्योंकि ठण्डे पानी से स्नान करने के बाद शरीर तुरंत अपनी उष्णता, गर्मी, को फिर से प्राप्त कर लेता है, जब कि इसके विपरीति, गर्म जल का स्नान लेने के बाद उल्टा ही असर होता है।*

रोमवासियों ने भी, जिनके सुन्दर सुडौल शरीर आज भी प्रख्यात हैं, शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाने के लिए जल को बहुत ही उपयोगी पाया था।

रोमन सम्राटों के भव्य स्नानागार

रोमनों के समय में तो स्नान (बाथ) का विकास बहुत ऊंचे दर्जे तक पहुँच गया था। रोमनसम्राटों की तो यह दशा थी कि वे जगह-जगह विशाल भव्य स्नानागारों के निर्माण करवाने में एक दूसरे से होड़ लगाते थे। ये स्नानागार सार्वजनिक होते थे और इतने बड़े बनाये जाते थे कि उसमें प्रतिदिन हजारों आदमी स्नान कर सकें। केवल रोम में ही इनकी संख्या साढ़े आठ सौ के लगभग बताई जाती है। यहां केवल लोग स्नान के आनन्द का उपभोग करने नहीं आते थे, वे जल के चिकित्सा-गुण से भी लाभ उठाते थे। इसके प्रयोग से वे अपने शरीर को निरोग और सुदृढ़ बनाते थे। रोम और पम्पियाई के भग्नावशेषों को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनके नहान-घर स्नान के अनेक साधनों व उपकरणों से किस प्रकार सुसज्जित थे। उनमें ठंडे पानी से स्नान के लिए फौवारे, गर्म वायु व वाष्प स्नान के लिए कमरे, गर्म व ठंडे पानी के हौज और आराम के लिए सुन्दर स्थान बने थे। एक समय था, जब कि रोम-निवासियों के ये स्नानागर सारे संसार में प्रसिद्ध थे। प्लाइनी (Pliny) नामक प्रसिद्ध इतिहासकार का तो यहां तक कहना है कि रोमन-साम्राज्य के वैभव काल के ५०० वर्षों में चिकित्सा के लिए एकमात्र जल का ही उपयोग किया जाता था। सेल्सस (Celsus) तथा अन्य रोमन चिकित्सकों ने अपनी पुस्तकों में 'स्नान' की बड़ी महिमा गायी है। सेल्सस ने तो बाद में अपनी संपूर्ण चिकित्सा प्रणाली के अन्तर्गत 'स्नान' को एक आवश्यकीय अंग माना।

उसकी चिकित्सा प्रणाली के अन्य दो अंग 'व्यायाम' व 'घर्षण' थे'

मध्यकालीन युग में संभवतः अरब के हकीम ही संसार में सबसे अधिक सुयोग्य गिने जाते थे। वे ज्वर, चोट, घाव आदि अनेक रोगों के उपचार में जल का उपयोग खुल कर करते थे। चेचक व खसरा के इलाज के निमित्त जलोपचार सम्बन्धी उनकी जो हिदायतें थीं वे आज भी उतनी ही सही हैं।

जापान में १८८१ में प्रकाशित 'टोकियो मेडिकल जर्नल' नामक पत्र में स्पष्ट लिखा है कि जापान में ठंड स्नान का प्रयोग लगभग ८०० वर्षों से होता आया है, विशेष कर ग्रामीण आदिमवासी चिकित्सकों के बीच। इसके अतिरिक्त उसमें यह भी दिया हुआ है कि लगभग २०० वर्ष पहिले वहां के एक डा० नाकागामी ने ठंडे स्नान के औषधि-गुण सम्पन्न प्रयोगों पर एक छोटी सी पुस्तिका प्रकाशित करवाई थी जिसमें शीतल स्नान का प्रयोग हिस्टीरिया, दमा, बच्चों के दौरे और तीव्र उन्माद आदि रोगों में विशेष लाभदायक बताया गया है।

पन्द्रहवीं शताब्दी में सावोन रोला नामक एक इटैलियन चिकित्सक था जो ठंडे अपनी चिकित्सा में ठंडे जल के स्नान का बराबर क्रम-बद्ध उपयोग करता था। वहीं का बरिज्जी नामक चिकित्सक गर्भाशय सम्बन्धी बीमारियों में ठंडे योनि- डूस का प्रयोग में लाता था। तत्कालीन प्रमुख जर्मन व स्पेन वासी चिकित्सक अनिद्रा (Insomnia) रोगों में ठण्डे जल द्वारा उपचार करने की सलाह देते थे।

सत्रहवीं शताब्दि में सेप्टला नामक चिकित्सक सिर-दर्द व लू लगने पर ठण्डे जल के स्नान द्वारा उपचार करता था। इसी काल में बेल्जियम-निवासी एक चिकित्सक, जिनका नाम हरमैन था, कब्ज, लकवा, व उन्माद आदि रोगों में शीतल जल का प्रयोग करता था। ये वे रोग हैं जिनके उपचार में ठंडे पानी से बढ़कर और कोई 'एकमात्र' चिकित्सा नहीं है। १६७५ ई० में लियां (Lyons) निवासी बर्रा नामक एक डाक्टर ने एक पुस्तक प्रकाशित की थी जिसका शीर्षक था "दि यूस आव आइस, आव स्नो ऐण्ड आव कोल्ड" (प्राकृतिक व अप्राकृतिक बर्फ का तथा शीतलता का प्रयोग)। इस पुस्तक से ज्ञात होता है कि लेखक ने शीतल जल के अनेक उन उपचारात्मक-गुणों का पता पा लिया था जिनकी उपयोगिता पिछले ७५ वर्षों में वैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर सुदृढ़ भित्ति पर स्थापित हो गई है। दीर्घकालीन अविराम ज्वर के लिए तो वह शीतल जल को सर्वोत्तम औषधि बताता था। छूत की बीमारियां, फोड़े, पाला लगना, पेचिश, जलोदर, प्लेग, गले का शोथ, पेट का कड़ापन, इन व्याधियों में शीतल जल के उपयोग द्वारा उपचार का वह विशेष रूप से समर्थक था।

इङ्गलैंड में जल-चिकित्सा

इङ्गलैण्ड के जल-चिकित्सा के इतिहास में जॉन फ्लायर का नाम सर्व प्रथम आता है। सर जॉन फ्लायर लिचफील्ड के डाक्टर थे। उनको एक दिन यह पता चला कि उपर्युक्त शहर के पास ही किसी झरने के पानी में स्नान करके कुछ किसानों ने स्वास्थ्य-लाभ किया है। जल की इस उपयोगिता की ओर उनका ध्यान आकृष्ट हुआ। उन्होंने इसकी खूब जांच व शोध की और तब उन्हें जल का प्रभाव विदित हुआ। **सन् १६६७ ई० में उन्हों ने** ठण्डे जल के स्नान का इतिहास प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने आदेश दे रक्खा है कि शीतल जल का स्नान लेने के पहिले रोगी के शरीर से पसीना निकलवाना चाहिए जिसकी विधि यह है कि रोगी को भीगी चादर से लपेट कर ऊपर से उसे कम्बल से ढक दिया जाय। ठीक यही विधि १०० वर्ष से अधिक बीतने के बाद प्रेसनीज (priessnitz) ने, जो जल-चिकित्सा का आविष्कारक व जनक कहा जाता है, चलायी थी और जो आज 'भीगी चादर की लपेट' के नाम से पुकारी जाती है। फ्लॉयर ने लिचफील्ड में सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में एक जल-चिकित्सालय को भी जन्म दिया था। सर जॉन फ्लायर ने अपनी पुस्तक में एक स्थान पर वर्णन किया है कि भीगी चादर की लपेट (वेट शीट पैक) का प्रयोग उनके समय में खिलाड़ियों द्वारा होता था। घुड़दौड़ में भाग लेने वाले घुड़सवारों का वजन उसके द्वारा कम किया जाता था।

उसमें इसकी विधि इस प्रकार बताई गई है:—

"घुड़सवार की कमीज को ठण्डे पानी में डुबो दो, और जब यह अच्छी तरह भीग जाय तब आदमी को गर्म कम्बलों के अन्दर लिटा दिया जाय जिससे जोरों से पसीना निकले। इससे उसका काफी वजन घट जायगा, एक या दो पौण्ड।"

यही विधि अन्य कई रोगों के दूर करने में भी इस्तेमाल की जाती थी। जॉन फ्लायर साहब के उपर्युक्त कथन से तथा उनकी समूची पुस्तक से इसी प्रकार के अनेकानेक अधकचरे प्रयोग से पाठक अच्छी तरह कल्पना कर सकते हैं कि उस समय में इङ्गलैण्ड में प्रचलित ये अपूर्ण प्रयोग वे ही थे जिनको प्रेसनीज व फादर नीप ने आगे चलकर लगभग १५० वर्ष बाद अपनाया, पुनर्जीवित किया व उनका पुनरुद्धार किया।

सर जॉन फ्लायर की पुस्तक के पश्चात् यहाँ पर एक और ग्रंथ का उल्लेख कर देना आवश्यक है, जिससे इस बात पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है कि आज से २०० वर्ष पूर्व भी योरप के देशों में जल का सामान्य रूप से रोगों में किस प्रकार चिकित्सा-सम्बन्धी उपयोग किया जाता था। इस पुस्तक का नाम है 'प्रिमिटिव फिज़िक' (प्राचीन कालीन औषधोपचार) यह १७४७ ई० में प्रकाशित हुई थी। इसके लेखक हैं जॉन वेसले (John wesley), एम० ए०। वेसले साहब की पुस्तक में उन्हीं जलोपचारों का उल्लेख है जिनसे लेखक ने जन साधारण में सफलता पूर्वक प्रयोग होते पाया था। इस पुस्तक से कुछ उदाहरण दिये जाते हैं, जो पाठकों को अवश्य रोचक व ज्ञान वर्धक प्रतीत होंगे:—

जाड़ा-बुखार या मलेरिया ज्वर में—"ठण्ड का दौरा होने के ठीक पहिले ठण्डा स्नान ले लो" (यह विधि आज भी जर्मनी व फ्रांस में फैली है), अथवा "दौरे के ठीक पहिले एक क्वार्ट ठण्डा पानी पी लो और तब बिस्तरे पर लेट कर शरीर से पसीना निकालो"।

दमा में:—"रोज प्रातः एक पाइण्ट ठण्डा जल पियो, उसके पश्चात् फौरन उससे सर को धो डालो और १४ दिन में एक बार ठण्डे स्नान का प्रयोग करो।"

अंतरा जाड़ा बुखार में:—जान वेसले का कहना है कि "ज्वर न आने के दिन बहुत हलका व बचाकर खाना खाइए अथवा ठण्डे स्नान का प्रयोग कीजिए (जब कि आप बहुत वयोवृद्ध या दुर्बल न हों)।" परन्तु जब आप इसका प्रयोग करें, चाहे किसी भी कारण से, तो उचित यह है कि शीतल जलाशय में आप जायं; फौरन उसके अन्दर घुस जायं पर सर के बल नहीं; सिर्फ दो या तीन मिनट तक उसमें रुक जाय (अथवा आरम्भ में और भी कम); जब पेट भरा हो तब कभी स्नान न लिया जाय; कम-से-कम सप्ताह में दो या तीन बार स्नान लिया जाय, जब तक कि नौ या दस बार आप स्नान न कर चुकें।

"ठण्ड का दौरा शुरू होने के पहिले, बिस्तर पर लेट जाइए और लेमोनेड पीकर छः या आठ घण्टे ठीक बहुत सा पसीना निकालिए। इससे सामान्यतः तीन या चार बार में रोग चला जाता है और यदि न जाय, तो दौरों के बीच में शीतल स्नान का इस्तेमाल कीजिए।" अंतरा ज्वर को भगाने का उपर्युक्त विधि के विषय में अमेरिका के लब्ध-प्रतिष्ठ प्राकृतिक चिकित्सा के डा० केलाग का कथन है कि उन्होंने १८६८ में यू० एस० ए० (अमेरिका के संयुक्तराज्य) के मध्य भाग में जन-साधारण को इसी विधि का प्रयोग करते देखा है और वह भी सफलता पूर्वक उन केसों में जिनमें मलेरिया तथा अन्य औषधियां बिल्कुल बे-असर रही हैं।]

"चोट लगने पर सूजन न आने देने के लिए:—पांच या छः बार कपड़े को दोहरा-दोहरा कर तथा शीतल जल में डुबो कर उसे रखिए और जब वह गर्म हो जाय तो उसे बदल दीजिए।"

"चोट की सूजन को अच्छा करने के लिए:—जितना आप से सहन हो सके उतने गरम पानी में कपड़ों से डुबो कर प्रातः व सन्ध्या में आध घन्टे तक सेंक दीजिए।"

"जलने पर:—फौरन ही शीतल जल में अंग को डुबो दीजिए एक घन्टे तक वहीं रखिए, अथवा यदि पहिले ही अच्छा न हो जाय तो कदाचित् चार या पांच घन्टे तक।"

कुकर-खाँसी में:—"रोजाना शीतल स्नान का प्रयोग कीजिए"।

उदर-शूल में:—"एक पाइण्ट ठण्डा जल पीजिए अथवा एक क्वार्ट गर्म पानी, या थैलो में गर्म पानी भर कर (रखिए) अथवा गर्म पानी में पाँवों को डुबो रखिए १५ मिनट के लिए।"

पुराने सर दर्द में:—"सोने के १५ मिनट पहिले अपने पाँव गर्म जल के अन्दर रखिए, दो या तीन सप्ताह तक।"

गठिया में:—"मालिश और पसीना निकालने के साथ साथ ठण्डे जल के स्नान का प्रयोग कीजिये।"

जोड़ों में सूजन आने पर:—"प्रतिदिन उस भाग पर गर्म जल की एक धारा डालिये अथवा एक दिन ठण्डे जल की धार दूसरे दिन गर्म जल की।"

"कुछ दिनों तक, ठण्डे जल का प्रयोग करने के पूर्व गर्म जल का स्नान लेना भी बहुत लाभप्रद है"।

वेसले ने अपनी पुस्तक में बालकों के सभी रोगों में, सभी पुराने रोगों में तथा कई चीर-फाड़ के केसों में भी ठण्डे जल के स्नान को लाभदायक और उपयोगी बतलाया है। यद्यपि वेसले चिकित्सक नहीं था, पर उसने अपनी पुस्तक में उन्हीं सफल उपचारों का केवल वर्णन किया है जो अठारहवीं शताब्दी के मध्य में जन-साधारण के बीच समान्यतः प्रयोग में लाये जाते थे। पर ऊपर के उदाहरणों से पाठक स्वयं देख सकते हैं कि वेसले के निर्देशित उपचारों व बताये इलाजों में कितनी बुद्धिमानी व सूझ अन्तर्निहित है। इनसे स्पष्ट भासित होता है कि लेखक ने जलोपचार सम्बन्धी कितना विस्तृत और सही अनुशीलण किया था जिसके कारण विविध रोगों पर बताये उपचार आज भी बिना किसी तरमीम के लागू होते हैं।

इङ्गलैण्ड में सर जॉन फ्लायर और उनकी पुस्तक के पश्चात् जेम्स क्यूरी (James curie) और जैक्सन (Jackson) के नाम उल्लेखनीय हैं। इन दोनों डाक्टरों ने १८ शताब्दि के अन्तिम समय में ज्वर में जल के उपयोग का बहुत ही बुद्धिमत्तापूर्ण एवं वैज्ञानिक अध्ययन किया था। उनके अध्ययन के फलस्वरूप इङ्गलैण्ड के चिकित्सक वर्ग का ध्यान एक समय तक उनकी ओर ही खिंचा रहा। क्यूरी ने १७९७ में अपनी एक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें उन्होंने ज्वर तथा अन्य रोगों में जल के प्रभाव पर विशेष लिखा। उन्हों ने जल-चिकित्सा सम्बन्धी कई आवश्यकीय सिद्धान्तों को खोज निकाला। जल के प्रयोग को नियमित करने के निमित्त उनके अनुसार एक परमावश्यकीय सिद्धान्त यह था कि जल का तभी निरापद प्रयोग होना चाहिये "जब कि ठण्डक की अनुभूति उपस्थित न हो, जब कि देह की गर्मी स्वाभाविक गर्मी से बराबर ऊपर रहे, और जब कि सामान्य अथवा अधिक स्वेदन न हो"। उनका कहना था कि शीतल को एकदम शरीर में उड़ेल कर उससे स्नान करना (A-cold pour) देर तक ठण्डे पानी से रगड़-रगड़ कर नहाना (cold sponging) विधि से अधिक निरापद है क्यों कि यह एक "स्फूर्तिदायक उपचार है"। इसके अतिरिक्त क्यूरी की यह भी हिदायत थी कि बाथ लेकर थकावट अथवा क्लान्ति न पैदा कर ली जाय। उनका कथन था कि स्नान के पश्चात् "तौलिये से कौरन रोगी को सुखा दिया जाय तथा यदि स्नान के कारण बहुत अधिक शीतलता आ जाय व शरीर गिर जाय तो हथेलियों से पैरों को रगड़ देना चाहिए और "गर्म पानी की एक थैली पेट पर रखनी चाहिए।" जेम्स क्यूरी ज्वर में गीले कम्बल या पट्टी का प्रयोग करता था और कहता था कि इससे सन्निपात (Delirium) का शमन होता है। फेफड़े से रक्त का बहाव होने पर वह पैरों में जलीय शीतलता पहुंचाता था। एक बार तो उसने एक ऐसे ही रोगी को सहसा कमर भर ठण्डे पानी में खड़ा कर दिया था।

एक साइलेशियन अपढ़ किसान बालक का अवतरण

उपर्युक्त सब बातें थीं। ज्वरादि रोगों पर जन-साधारण में जहाँ तहाँ जल के उपचार सम्बन्धी छुटपुट प्रयोग होते थे। जेम्स क्यूरी एवं ज्वर सम्बन्धी बीमारियों के चिकित्सा के हेतु जलोपचार के रूप में एक सचमुच अमूल्य और वैज्ञानिक उपचार पद्धति के योग्य प्रारम्भिक प्रवर्तक थे। पर सभ्य संसार का ध्यान जल के इस अद्भुत एवं अनुपम गुण की ओर अभी तक बिल्कुल ही नहीं गया था। और जेम्स क्यूरी व जैक्सन की यह सेवा तिमिर-गह्वर में ही पड़ी गई और उसका मूल्य बिना आंके ही रह गया था। जल के चिकित्सा

सम्बन्धी गुण की ओर समस्त सभ्य संसार व समाज का ध्यान तभी आकृष्ट हुआ जब उसके कर्ण-कुहरों तक एक साइलेशियन अशिक्षित किसान की ख्याति जल-चिकित्सक के रूप में ध्वनित हुई। तभी संसार के चिकित्सक-वर्ग ने जल के औषधि गुण की ओर अचम्भे से देखा और उनकी आंखें खुलने लगीं।

चिकित्सा के रूप में जल की वर्तमान प्रसिद्धि का सेहरा तो प्रेसनीज के सिर बंधना था।

जल चिकित्सा का जनक

यदि सच कहा जाय तो उपर्युक्त डाक्टरों के समय तक जल-चिकित्सा का प्रचार व्यावहारिक व सर्वव्यापक रूप से जनता व चिकित्सक वर्ग में न हो सका था और न जल-चिकित्सा की किसी नियमित प्रणाली की ही स्थापना हो पायी थी। इस कार्य को किया जर्मन डाक्टर विन्सेण्ट प्रेसनीज ने (Vincent Pressnintz)। इसीलिए बहुतों की धारणा यही है कि आधुनिक चिकित्सा प्रणाली काया यों कहना चाहिए कि वर्तमान प्राकृतिक चिकित्सा का (जनक) डा० प्रेसनीज ही है। इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा का आन्दोलन आज से प्रायः सवा सौ वर्ष पहिले प्रेसनीज के समय से ही प्रारम्भ हुआ है।

एक हिरनी ने अपढ़ किसान बालक को सहसा डाक्टर बना दिया

नीचे अब पाठकों के लाभार्थ जल-चिकित्सा के जनक की जीवन की कतिपय रोचक घटनाएं दी जाती हैं जिसने बालक प्रेसनीज को क्या से क्या कर दिया।

जर्मनी के साइलेशियन पहाड़ की तंग्टी में स्थित ग्रैफेनबर्ग गांव में एक साधारण एवं अशिक्षित घराने में सन् १७९० ई० में विसेण्ट प्रेसनीज का जन्म हुआ। कुछ बड़ा होने पर उसे भी अन्य किसान बालकों की तरह चरवाहे का काम सौंपा गया। बालक प्रेसनीज दिन भर गांव के आसपास पहाड़ी जङ्गलों में गायें चराया करता था। एक दिन की बात है। वह आठ वर्ष का हो चुका था। वह अपनी गायों को जङ्गल में चरा रहा था। इसी बीच उसकी दृष्टि एक अजीब दृश्य की ओर आकृष्ट हुई। उसने देखा कि एक हिरनी बुरी तरह लंगड़ाती हुई एक झरने के पास पहुंची और लगभग आध घण्टे तक पानी में खड़े रहने के बाद पानी से निकल कर जिधर से आयी थी उधर ही चली गयी। इस घटना से अष्टवर्षीय किन्तु कुशाग्र बुद्धि रखने वाले बालक प्रेसनीज के दिल में यह जानने की उत्कण्ठा हुई कि वह घायल हिरनी पानी में कुछ देर तक क्यों खड़ी रही और फिर चली क्यों गयी। उसने सोचा कि दूसरे दिन देखना चाहिए कि हिरनी फिर आती है कि नहीं। ऐसा सोचकर उसने दूसरे दिन भी उसी स्थान पर पहिले से छिपकर उसके आने की प्रतीक्षा करने लगा। हिरनी उस दिन भी पहिले दिन की तरह ही उसी समय पर फिर वहीं आयी और इस बार आध घण्टे से कुछ अधिक समय तक पानी में ठहरने के बाद फिर वापिस चली गयी। इसी प्रकार प्रतिदिन तीन सप्ताह तक ठीक समय पर नियमिति रूप से वह आती और पानी में खड़ी रहकर चली जाती। प्रेसनीज बराबर बहुत ही ध्यान-पूर्वक उसकी सम्पूर्ण गतिविधि नोट करता रहा। **अरे लीजिए बालक प्रेसनीज ने अब क्या देखा ?** उसने देखा कि हिरनी के इस दैनिक क्रिया के कारण उसका लंगड़ाना दिनप्रति दिन कम होता जा रहा है। फिर एक दिन ऐसा आया कि पूर्ण रूप से अच्छी हो गई और एक दिन वह पानी से निकल कर चौकड़ी भरती हुई ऐसी भागी कि फिर वह जल में खड़ी होती दिखलायी ही नहीं दी।

हिरनी की इस अद्भुत घटना ने बालक प्रेसनीज को जल का डाक्टर बना दिया। यह घटना प्रेसनीज के जीवन की एक अपूर्व घटना थी और उसके लिए बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुई। इसकी अमिट छाप उसके मस्तिष्क में सदैव के लिए अङ्कित हो गयी।

जब प्रेसनीज ने सत्रहवें वर्ष में पदार्पण किया था उस समय की बात है। वह एक दिन जङ्गल से लकड़ी काटकर लौट रहा था कि एकाएक बर्फ की इतने जोर की बौछार और आंधी आयी कि उसको विवश होकर रास्ते में ही एक छप्पर के नीचे शरण लेनी पड़ी। दैवयोग से वह छप्पर, जिसके नीचे प्रेसनीज बैठा था, आंधी-बौछार की उग्रता न सहन कर सकने के

कारण गिर पड़ी और बेचारा प्रेसनीज उसी के नीचे दब गया। जब वह निकाला गया तो देखा गया कि उसकी दो पसलियां बुरी तरह कुचल गयीं। इसके अतिरिक्त वे उसके शरीर में घुस भी गयी थीं। जब वह छप्पर के नीचे दबा पड़ा था उसके स्मृति-पथ में अचानक पिछली आठ वर्ष पहिले वाली हिरनी की घटना घूम गयी! उसने अपने मन में दृढ़ प्रतिज्ञा की यदि वह छप्पर से जीवित निकाल लिया गया तो वह हिरनी ही की तरह जल द्वारा अपना उपचार कर उसका प्रभाव अपने ऊपर देखेगा। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि छप्पर के नीचे से निकाले जाने के बाद उसने अपनी चिकित्सा उसी तरह की हां हिरनी की तरह पानी में खड़ा होकर उसको जल का प्रयोग न करना था, क्योंकि पसलियां टूटी थी; पैर नहीं लंगड़ा हुआ था। प्रेसनीज ने अपने उपचार में जल का किस प्रकार प्रयोग किया? सूती कपड़े की गद्दी पानी में भिगो कर वह अपने आहत अंग पर रखता था, और जब गद्दी सूख जाती तो उसे फिर पानी में भिगो कर वहीं पर रख देता। इस तरह करते रहने पर पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि कुछ दिनों के बाद उसकी पीड़ा कम हो गई, क्षत-विक्षत अंग में शक्ति आ गई, हड्डियां ठीक स्थान पर बैठ गयीं और वह अन्त में बिल्कुल स्वस्थ हो गया!

"तुम्हें धैर्य धारण करना होगा"

इस प्रकार सभ्य जीवन से बहुत दूर रहने वाला, अनुभवशील, दीन, अशिक्षित पहाड़ी किसान-बालक के सर जल-चिकित्सा के जनक होने का मौर बंधा। प्रेसनीज ने ही सर्व-प्रथम जल-चिकित्सा प्रणाली की स्थापना की, जो आज समस्त सभ्य संसार में अचूक चिकित्सा का एक आवश्यक अंग मानी जाती है। सन् १८२६ में प्रेसनीज ने अपने घर पर ही जल-चिकित्सा करनी आरम्भ की। जब लोगों ने सुना कि प्रेसनीज ने अपने को स्वयं बिना किसी औषधि के, लोशन अथवा मलहम के इस अद्भुत तरीके से जल द्वारा ठीक कर लिया तो फिर क्या कहना था सैकड़ों की संख्या में घायल लोग और बाद को पुराने रोगों से पीड़ित रोगी भी दूर-दूर से उसके घर आते और पानी के उपचार रोग मुक्त होकर उसका यशोगान करते घर वापस जाते। बाद में प्रेसनीज ने अपने ही जन्म स्थान ग्रैफेनबर्ग में एक चिकित्सा-गृह की स्थापना की जिसमें इलाज के लिये संसार के कोने-कोने से झुण्ड के झुण्ड रोगी आते थे। यह दुनिया में सबसे पहिला जल-चिकित्सा सम्बन्धी आरोग्य मन्दिर था जो धीरे-धीरे रोगियों के लिये यथार्थ में एक तीर्थ स्थान सा बन गया था। प्रेसनीज अपनी चिकित्सा पद्धति में जल को ही विशेष महत्व देता था। भोजन में वह सादगी के पक्षपाती था। वह अपनी चिकित्सा में रोगियों के धैर्य धारण करने पर अधिक जोर देता था। इसलिये उसने अपने स्वास्थ्य-गृह के बाहर अपना यह 'मोटो' एक पत्थर पर खुदवा दिया था कि **"तुम्हें धैर्य धारण करना होगा"**। इस प्रकार वह बताता था कि प्रकृति के गुणों को देखने के लिये समय की आवश्यकता है। प्रेसनीज अपना काम बहुत सफाई और ईमानदारी से व खुल्लम-खुल्ला करता था। वह मितभाषी, गम्भीर व उच्च चरित्र का व्यक्ति था। आडम्बर उसको छू तक नहीं गया था। बड़े धैर्यपूर्वक और बड़ी लगन के साथ प्रकृति का यह विद्यार्थी उन सिद्धान्तों के विकास के लिये परिश्रम करता था जिनको कि उसने पहिचाना था। उसके देशवासी तथा चिकित्सक-समुदाय उसका आदर करते थे। आस्ट्रियन सरकार ने उसके कार्यों व विधियों की सरकारी खोज करवा कर उसे डाक्टरी के डिप्लोमा से सुशोभित किया था। फ्रेंच सरकार ने बाद को अपने औषधि-विभाग के अध्यक्ष को उसके पास भेजा था कि वह जाकर उसके चिकित्सा-प्रणाली का अध्ययन करे और इस तरह आज से सवा सौ वर्ष पहिले फ्रांस की मिलिटरी सर्विस में जल-चिकित्सा का पदार्पण हुआ। दूसरे देशों की सरकारों ने भी फ्रांस का शीघ्र अनुसरण किया। इस प्रकार प्रकृति के विश्वविद्यालय में शिक्षा पाये हुये इस चिकित्सक द्वारा विकसित सिद्धान्त व विधियों का शीघ्र प्रचार व प्रसार हुआ।

प्रेसनीज की देन

प्रेसनीज की चिकित्सा-प्रणाली का आधार था पसीना निकालना और उसके पश्चात् शीतल जल के उपचारों का प्रयोग करना। शीतल जल के उपचारों की प्रयोग-विधियाँ उसकी अत्यन्त अपरिपक्व थीं। प्रेसनीज की खोज तो कोई बड़ी अथवा आश्चर्यजनक नहीं थी। उसकी चिकित्सा

पद्धति में जल के प्रयोग को जो-जो भी विधियां सम्मिलित थीं वे सब उसे अपने देश के किसानों से विरासत के रूप में मिली थीं जो उन सब का प्रयोग १७३७ ई० या उससे भी पहिले से सामान्यतया करते आये थे। किन्तु प्रेसनीज ही उन व्यक्तियों में से पहिला व्यक्ति था जिसने जलोपचार की विविध विधियों का संयोजन कर उन्हें एक चिकित्सा प्रणाली का रूप दिया। यह ही उसका सब से बड़ा श्रेयपूर्ण कार्य है। इसके अतिरिक्त वह ही सर्व प्रथम व्यक्ति था जिसने चिकित्सा के तौर पर जल-प्रयोग की सरल विभिन्न विधियों की आश्चर्यजनक उपादेयता की ओर सब का ध्यान आकर्षित किया, जिसकी सार्थकता का लोगों को नहीं के बराबर ज्ञान था। प्रेसनीज ने इतना ही नहीं किया उसने और भी एक बड़ा उपकार किया और वह यह था कि उन दिनों के ओषधि-चिकित्सक जिन पुराने रोगों को अच्छा करने में कार्य असमर्थ थे ऐसे पुराने रोगों के अनेक रोगियों का रोग-मुक्त कर उसने जीवनदान दिया। इसके लिए प्रेसनीज को बहुत कठिनाइयां झेलनी पड़ी थीं। कितने ही उन्नायकों की भांति प्रेसनीज भी सर्व प्रथम पुरानपन्थी डाक्टरों की आंखों का कांटा हो गया। उसका डाक्टरों द्वारा काफी विरोध हुआ। उपहास, गालियां, अदालतों में कानूनी कार्रवाई इन सब को बारी-बारी से उसे भुगतना पड़ा। पर अन्त में सत्य की विजय हुई। अनेकानेक रोगियों को सफलतापूर्वक दिन-प्रतिदिन अच्छे होते देख कुछ समय बाद रूढ़िवादी पर बुद्धिमान डाक्टर लोग भी उसका तथा उसकी चिकित्सा का लोहा मान गए। प्राचीन डाक्टरों द्वारा उपर्युक्त उत्पीड़न के फलस्वरूप प्रेसनीज की ख्याति व मान-प्रतिष्ठा में चार चांद लग गये। उसकी प्रसिद्धि उत्तरोत्तर उज्ज्वल व प्रखर हो गई। और इसका एक सबसे बड़ा परिणाम यह हुआ कि रोगी तो इलाज के लिए आते ही थे, विद्यार्थी भी उसके पास आये जिन्होंने इस चिकित्सा पद्धति को बढ़ाया।

सबसे पहिले थियोडोर हान (Theodor Hann) नामक अतार ने प्रेसनीज की शिष्यता ग्रहण की थी। यह उसके शिष्यों में प्रधान भी था। लुईकूने दूसरे थे। तीसरे शिष्य ववेरिया निवासी आर्नल्ड रिकली हुये। कूने जुलाहा और रिकली कारीगर था। चौथा शिष्य फ्रैम्प नामक पादरी था। हेनरिक लामान (Henrick Lahmann) नामक एक डाक्टर ने भी इसकी शिष्यता ग्रहण की। उसका छठा शिष्य एडोल्फ जुस्ट नामक एक शिक्षक था। यों प्रेसनीज के सैकड़ों शिष्य हुये पर ये छः उनमें विशेष प्रसिद्ध हैं। अमेरिका के प्रसिद्ध एलोपैथिक डाक्टर ट्राल, जैक्सन और केलाग भी प्रेसनीज के पास गये और उनके पास रह कर प्राकृतिक चिकित्सा सीखी।

जोहान श्रॉथ

प्रेसनीज के पश्चात् जोहान श्रॉथ (Johanneo schroth) दूसरा उल्लेखनीय व ख्याति प्राप्त व्यक्ति है जिसने जल-चिकित्सा प्रणाली को उन्नतिशील बनाने में विशेष योग दिया। इसका जन्म प्रेसनीज के जन्म स्थान से कुछ ही मील की दूरी पर हुआ था। कदाचित् यह प्रेसनीज का समकालीन भी थी। यह व्यक्ति पहिले आस्ट्रिया, वर्तमान चेकोस्लोवाकिया के अन्तर्गत लिण्डवेज (Lindewiese) नगर में कोचवानी करता था। प्रेसनीज की तरह जोहान श्रॉथ को भी अपने निजी अनुभवों के विद्यालय में चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षा ग्रहण कर डाक्टर बनने का सौभाग्य मिला था। इसके जीवन की भी दो-एक रोचक घटनायें हैं जो बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। एक बार ऐसा हुआ कि उसके घुटने की गोल हड्डी पर इतनी जोर की चोट लग गई कि मालूम होता था कि वह सदैव के लिये लंगड़ा हो जायगा। चोट के उपचार के लिये उसने क्या क्या नहीं किया। अच्छी से अच्छी दवा लगायी, पर लाभ कुछ भी न हुआ। एक साधू ने उसे चोट पर ठण्डे जल के प्रयोग की सम्मति दी। सब तरह की दवाओं से निराश होकर उसने अन्त में पानी का इलाज करना तो पहले से ही निश्चय किया था, किन्तु अब साधु-द्वारा प्रोत्साहन मिलने पर, वह साधु के बताये ढंगों में कुछ अपनी सहज बुद्धि से हेर फेर कर अपनी चिकित्सा स्वयं करने लगा। उसने ठंडे जल की पट्टियाँ देनी आरम्भ की और कई अन्य सहयोगी उपचार भी किये। फल यह हुआ कि कुछ ही सप्ताह के बाद वह बिलकुल भला चङ्गा हो गया।

घोड़ों व कुत्तों पर भी प्रयोगकिया

अब श्रॉथ को बहुत अधिक प्रोत्साहन मिला। और अब उसने अपने अनुभूत चिकित्सा-विधि का प्रयोग करना

आरम्भ किया। पशुओं पर इसलिए कि जिससे मनुष्यों पर इस चिकित्सा-प्रणाली के प्रयोग का सम्भवतः कोई खतरा न हो और सफलता अधिक मिले। अपने प्रयोगों के लिए उसने घायल घोड़ों और कुत्तों को चुना। जब इसके उपचार में उसने पूरी तरह सफलता प्राप्त करली और वह अपने को सिद्ध-हस्त समझने लगा तब उसने रोगी मनुष्यों का भी इलाज करना आरम्भ कर दिया और उनको अच्छा करने लगा।

श्राॅथ की अग्नि-परीक्षा

प्रेसनीज की तरह श्राॅथ की भी सफलता की ख्याति खूब फैली और दूर-दूर तक फैली। पर भला औषधि विज्ञान के अन्ध भक्त भला यह कब देख सकते थे। फलस्वरूप उसकी खूब निन्दा की जाने लगी, क्यंकि उसके नियम, उसकी चिकित्सा-विधियां औषधोपचारकों के लिए घातक थे। उन्हें अपना व्यवसाय नष्ट होता दिखायी देता था और ऐसे लोगों के हाथ से जो उनकी अपेक्षा अध्ययन व विद्वता में कोरे थे औषधि-शास्त्र के ज्ञान से पूर्णतया शून्य थे तथा जिन्होंने उनकी तरह वर्षों स्कूलों और कालिजों में कष्टपूर्वक एवं बहुत सा धन खर्च कर शिक्षा नहीं ग्रहण की थी। पूरे बीस साल तक उन लोगों ने श्राॅथ को खूब ही सताया। उसका जीवित रहना दूभर हो गया। अन्त में उस पर दोषारोपण कर उसे जेल की हवा भी खिला दी। पर सत्यता का सन्देश वहन करने वाले और निर्भीकता से अपने ढङ्ग पर जन-सेवा करने वाले सभी प्रवर्तकों और उन्नायकों को ऐसी ही अग्नि-परीक्षा होती है जिसमें उन्हें अपनी आहुति ही देनी पड़ती है। पर श्राॅथ के जीवन में एक ऐसी घटना हुई कि जिसने अचानक उसके प्राणों की रक्षा कर ही तो ली, साथ ही वह सदैव के लिए अपने विरोधियों से छुटकारा पा गया। १८४६ में वर्टम्बर्ग (Wurtemburg) का ड्यूक लड़ाई में बुरी तरह घायल हुआ। कई स्थानों पर उसका सारा शरीर क्षत विक्षत हो गया था। उस समय के बड़े-बड़े डाक्टरों ने तीन महीने तक उस ड्यूक की अच्छी से अच्छी चिकित्सा की, पर सब व्यर्थ रहा। वह जीवन से एकदम निराश हो चुका था। अन्त में उसको सूझा कि मरना तो है ही चलो कम से कम एक बार श्राॅथ के ही पास क्यों न चला जाय। यह सोचकर श्राॅथ का आश्रय ग्रहण किया। श्राॅथ ने वचन दिया कि उसने उसे अच्छा कर देगा। और उसकी चिकित्सा ने सचमुच कुछ महीनों में ही ड्यूक को भला चंगा कर दिया। इस सफल उपचार से तो विरोधियों को मुंह-तोड़ जवाब मिला जिससे फिर वे हमेशा के लिए शान्त हो गये। ड्यूक ने श्राॅथ के सफल उपचार की ख्याति समस्त आस्ट्रियन फोज में फैला दी। इसके फलस्वरूप उसके लिएडविज के स्वास्थ्यगृह में सारे संसार से रोगियों की भीड़ जुटने लगी।

श्राॅथ अपनी चिकित्सा-विधि में, गीली पट्टी के ठण्डे गर्म रोग-निवारक प्रभाव को भी अधिक महत्व देता था, साथ-ही-साथ प्राकृतिक आहार का भी प्रयोग करता था। इसकी चिकित्सा को लोग श्राॅथ-चिकित्सा (Schroth Cure) के नाम से पुकारते हैं। श्राॅथ के बाद उसके पुत्र नुएल श्राॅथ ने भी इसी चिकित्सा-प्रणाली को अपनाया।

फादर सेबैस्टियन नीप

जोहान श्राॅथ के समय ही एक और व्यक्ति था जिसका ध्यान जल-चिकित्सा के मूल्यवान उपचार की ओर आकृष्ट

फादर नीप

हुआ। यह बवेरिया निवासी एक पादरी था जिसका नाम

फादर सेबैस्टियन नीप (Father Sebastian Kneipp) है। फादर नीप ने अपने अदम्य उत्साह, असीम लगन के बल पर जल-चिकित्सा-विधि का बहुत अधिक प्रचार किया। उसको जल के प्रयोग सम्बन्धी बहुत से बहुमूल्य अविष्कार करने का भी श्रेय प्राप्त है। उसके द्वारा जल-चिकित्सा का इतना प्रचार व प्रसार हुआ कि जल-चिकित्सा का लाभ ही 'नीपवाद' (Kneippism) हो गया। उसकी जल-चिकित्सा-विधि में एक विशेषता भी थी। वह जलोपचार के साथ-साथ जड़ी बूटी के प्रयोग का भी हामी था। रोगी की बीमारी तथा उसकी शारीरिक दशा के अनुसार विभिन्न प्रकार के तापमान के जल का प्रयोग चिकित्सा में करना यही उसकी मुख्य चिकित्सा प्रणाली थी। आज भी जर्मनी में उसके नाम पर एक नहीं अनेक संस्थाएं स्थापित हैं जिनमें उसकी चिकित्सा पद्धति द्वारा रोगों का उपचार किया जाता है। इन संस्थाओं के पचास हजार से भी अधिक सदस्य हैं। उसने अपना एक आरोग्य मंदिर भी खोल रक्खा था जिसका संचालन उसने ४५ वर्षों से अधिक समय तक अद्भुत तत्परता एवं सफलता से किया। चिकित्सक की हैसियत से उसने प्रायः प्रत्येक तरह के रोग दूर करने में सफलता प्राप्त की। नीप ने जल-चिकित्सा पर एक उतम पुस्तक भी लिखी है जो आज भी व्यापक रूप से अध्ययन की जाती है।

फादर नीप के शिष्यों में डाक्टर बेनेडिक्ट लुस्ट (Binedict Lust) का नाम विशेष रूप से यहां उल्लेखनीय है। डा० बेनेडिक्ट लुस्ट वह व्यक्ति हैं जो अमेरिका के संयुक्त राज्य में "प्राकृतिक चिकित्सा के संस्थापक एवं अधिष्ठाता" थे। इनका जन्म जर्मनी में १८७२ ई० में हुआ था। अत्यधिक परिश्रमी एवं गहन अध्ययन के प्रेमी होने के कारण युवावस्था में ही ये बहुत ही कृश और दुर्बल काय हो गये थे। इनके फेफड़े बहुत कमजोर घोषित कर दिये गये थे। जिससे यह जीवन से एकदम निराश हो चुके थे। अन्त में आप फादर नीप की शरण में आये और अन्तिम उपचार की तौर पर उनकी सम्मति के अनुसार आपने उनकी जल-चिकित्सा का आश्रय लिया। फादर नीप के यहां आप पुनः अपना स्वास्थ्य लाभ करने में सफल हुए। बाद में जब ये केवल २० वर्ष के ही थे तो सन् १८९२ में नीप ने बड़े आग्रह से इन्हें अपने पास इस उद्देश्य से बुलाया कि वे जल-चिकित्सा का आरोग्यमय सन्देश अमेरिका तक पहुंचावें एवं समस्त संसार में इसका प्रसार करें। एक अग्रदूत व पथ-प्रदर्शक की भावना से ओतप्रोत होकर डा० लुस्ट अमेरिका आये और वहां उन्होंने जल-चिकित्सा सम्बन्धी एक मासिकपत्र, एक स्कूल और एक आरोग्य-मन्दिर की स्थापना की। मासिक का नाम सर्वप्रथम 'दि नीप वाटर क्योर मन्थली' (The Kneipp Water Cure mnothly) (नीप जल-चिकित्सा सम्बन्धी मासिक पत्र) था पर बाद में इसका नाम बदल कर 'नैचुरोपैथ' (प्राकृतिक चिकित्सक) कर दिया गया। कालान्तर में इन्होंने एक पत्र और निकाला जिसका नाम 'नेचर्स पाथ' (Natures path) प्रकृतिका पथ) है। योरप में अपनी लम्बी यात्रा के फलस्वरूप प्राकृति-चिकित्सा सम्बन्धी सब विधियों की अच्छाइयों का पूर्ण अध्ययन करने के बाद डा० लुस्ट ने १८९६ में अमेरिका में प्राकृतिक चिकित्सा व जल-चिकित्सा की नींव डाली। डाक्टर लुस्ट परम लोकसेवी व्यक्ति थे। अमेरिका में प्राकृतिक चिकित्सा की संस्थापना के लिए उन्होंने एक पैग़म्बर की दूरदर्शिता, अदम्य साहस, असीम एकनिष्ठा एवं अनवरत अध्यवसाय के साथ काम किया था। उन्हीं के दृढ़ संकल्प, अथक प्रयत्नों और त्याग के कारण ही प्राकृतिक चिकित्सा वहां जीवित रही और मासिक पत्रिकाएं निकलती रहीं। अंग्रेजी तथा अन्य कितनी ही विदेशी भाषाओं में उनकी प्रकाशित की हुई तत्सम्बन्धी पुस्तकें बहुत हैं।

उन्हीं के ऊपर स्थापित 'अमेरिकन स्कूल आफनैचुरोपैथी से पढ़कर निकले हुए अनेकानेक विद्यार्थी आज संसार के कोने-कोने में चिकित्सा करते मिलेंगे। अभी पिछले वर्ष सितम्बर मास में ही इस प्रसिद्ध अनुयायी लोकसेव का देहावसान हुआ है।

इस समय तक प्रीसनीज, र्‍ाथ, फादरनीप---इन महान प्रवर्तकों ने अपने अनुभवों के बल पर जल-चिकित्सा की धाक योरोपीय देशों में काफी जमा दी थी। इनके चिकित्सा गृहों से दिन-प्रतिदिन जो विविध प्रकार के रोगों के मरीज भले चङ्गे होकर निकलते थे वह साक्षात् प्रमाण होते थे कि जल-चिकित्सा-विधि ही ऐसी अचूक सफल उपचार-प्रणाली है जो सचमुच सभी

रोगों से मुक्ति दिला सकती है । इसीलिए इन तीनों के बहुत से अनुयायी भी हो गये थे जिनमें मेलज़र (Meltzer), थियोडोर हान (Theodor Hann) और रसे (Rasse) आदि बहुत ख्याति प्राप्त कर रहे थे । मेलज़र ही के आश्रम में आकर रोगी कूने ने अपने रोग की चिकित्सा करवाई थी जिसके फलस्वरूप वे जल-चिकित्सा की उपादेयता पर निछावर हो गये और बाद में अपनी प्रतिभा, सूझ, बुद्धि व आविष्कारों द्वारा 'जल-चिकित्सा के आचार्य' बने ।

रोगी लुई कूने जल-चिकित्सा के आचार्य कैसे बने ?

लुई कूने (Louis Kuhne) का जन्म जर्मनी के अन्तर्गत लिपजिग नगर में एक जुलाहे के घर हुआ था ।

लुई कूने

उसके माता पिता रुग्णावस्था में औषधि-चिकित्सकों की औषधियों के शिकार हो चुके थे । लुई कूने अभी बीस वर्ष के नवयुवक थे कि स्वयं भी रोगी होकर मृत्यु की घड़ियां जोहने लगे । इन्हें सिर और फेफड़े के भयानक रोग लग गये थे और इनसे बुरी तरह पीड़ित होकर वे जीवन से निराश हो उठे थे । पेट के भीतर भयावह फोड़ा हो गया था जो किसी तरह अच्छा न होता था । डाक्टरों का बहुतेरा इलाज किया पर उससे कोई लाभ न हुआ । अन्त में सन् १८६४ में पुरान-पन्थी डाक्टरों ने जब उनके रोगों को असाध्य करार दे दिया तथा इनके रोगोपचार को अपनी शक्ति से बाहर समझकर इनकी चिकित्सा छोड़ दी, तब इसी समय इस जीर्ण-शीर्ण युवक के कानों में प्रेसनीज, श्राथ और नीप के प्रसिद्ध अनुयाइयों के जलोपचार द्वारा रोग-मुक्ति की भनक पड़ी । जल-चिकित्सा द्वारा लुई कूने ने कैसे रोग से छुटकारा पाया तथा जल-चिकित्सा की उन्होंने कैसे खोज की इसकी कहानी स्वयं उनके शब्दों में सुनना पाठकों के लिए अधिक रुचिकर और शिक्षाप्रद होगा:—

"सन् १८६४ के लगभग मैंने समाचार पत्रों में पढ़ा कि लिपजिग नगर में प्राकृतिक-चिकित्सा के कुछ प्रेमियों ने एक गोष्ठी कायम की है और वे हर प्रकार के रोगों का इलाज बिना औषधियों के करते हैं। इसके संचालक मेलजर (Meltzer) साहब थे । मैं साहस बांधकर इस सभा में शामिल हुआ और उपस्थित मण्डली के व्याख्यानों को सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ । इसदिन से मैं गोष्ठी की हर बैठक में पहुँचने लगा ।

"मेरे फेफड़े का दर्द क्रमशः बढ़ता गया । पेट में भी एक फोड़ा निकल आया । डरते-डरते मैंने एक सज्जन से पूछा कि भाई क्या मेरे रोग की भी दवा आप बता सकते हैं ? उन्होंने ने कहा, हां, प्रायः पानी की पट्टी फेफड़ों पर बांधिये । मैंने बांधना शुरू किया और पेट के ऊपर भी पट्टी बांधी और इस समय की प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार भीगी चादर लपेटी । पिचकारी लगायी, शरीर के अङ्गों को जल से तराबोर किया, किन्तु कुछ दर्द कम होने के के अलावा और कोई विशेष लाभ न हुआ ।

"इस बीच मैं अपना दिमाग़ प्रकृति की ओर दौड़ाता रहा और कुछ नियम निर्धारित किये, कुछ यंत्र बनाये और उनकी परीक्षा मैं अपने शरीर पर करने लगा । मुझे इससे सफलता हुई । मेरी दशा सुधरने लगी और जिन लोगों ने मेरे कहने के अनुसार चिकित्सा की उनको भी लाभ हुआ । मुझे इस बात का पूरा विश्वास हो गया कि मेरे सिद्धान्त बिल्कुल सत्य हैं ।

"मैंने जब इन सिद्धान्तों का जिक्र सर्वसाधारण में करना शुरू किया तो वे मेरी हंसी उड़ाने लगे । डाक्टरों ने तो कहना शुरू किया कि लुई कूने पागल हो गया है । वह सनक गया है । मैंने अपने यंत्र उनके सामने रक्खे और एकबार परीक्षा करने की प्रार्थना की, किन्तु उन्होंने उन यंत्रों को कमरे के एक कोने में फेंक दिया जहां थोड़े दिनों

में वे घुनकर खराब हो गये ।

"मैंने डाक्टरों की उपेक्षा की कुछ भी परवाह न की । मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि मैंने सब रोगों का कारण और उनके अच्छा करने की तरकीब ढूंढ़ निकाली है। मुझे इससे बड़ा सन्तोष हुआ । अब मैंने अपनी चिकित्सा का प्रसार सर्वसाधारण में करने का विचार किया । मैंने सोचा कि यदि कुछ रोगियों को मैं अच्छा कर सका तो जनता मेरी चिकित्सा पर अपने आप विश्वास करने लगेगी । मेरे घर में रोजगार होता था । मैंने सोचा यदि उसे छोड़कर मैं जल चिकित्सा में अपना जीवन अर्पण करता हूँ तो इतने वर्षों का मेरा रोजगार नष्ट होता है । मेरे हृदय में उथल-पुथल होने लगी । अन्त में अन्तरात्मा की विजय हुई ! मैंने अपना सब काम बन्द करके १० अक्तूबर सन् १८८३ ई० को अपना एक जल-चिकित्सालय खोला । धीरे-धीरे रोगी मेरे पास इलाज के लिए आने लगे और मैंने उन्हें चङ्गा करना आरम्भ कर दिया । सैकड़ों निराश रोगियों को मैंने अच्छा किया । वे ही अब मेरी चिकित्सा का गौरव चारों ओर बढ़ाने लगे ।"

"मैंने अब जल-चिकित्सा में खोज करना शुरू किया । चेहरा देखकर मैं बीमारियों को पहिचानने लगा । इसमें मुझे शत प्रतिशत सफलता मिलने लगी । मैंने मेहन-स्नान (Sitz Bath) की खोज की, जिसने रोगों के हटाने में मेरी बड़ी सहायता की । अब तो मुझे अपने इलाज पर इतना विश्वास हो गया है कि मैं चुनौती देकर कह सकता हूँ कि मैं हर रोग को दूर कर सकता हूँ । हां, हर रोगी को नहीं अच्छा कर सकता । जिन रोगियों ने दवा खा-खाकर अपना सारा शरीर बिगाड़ रक्खा है जिनके शरीर में कुछ दम ही नहीं रह गया, उनको मैं अलबत्ता रोग मुक्त नहीं कर सकता, लेकिन उनके रोग को कम जरूर कर सकता हूँ ।

पच्चीस वर्ष अथक परिश्रम करके मैंने अपने को अब बिल्कुल चङ्गा कर लिया है और दूसरे रोगियों को चंगा करने का दम भरता हूँ ।"

यह है जल-चिकित्सा के आचार्य की राम कहानी, यह है एक असाध्य रोगी से एक कुशल चिकित्सक बनने की स्व-कथा, यह है जल-चिकित्सा के आधुनिक रूप के आविष्कारक का संक्षिप्त विवरण और है यह जल तत्व के अचूक चिकित्सक गुण का अकाट्य प्रमाण !

जल-चिकित्सा के इतिहास में कूने की इतनी बड़ी देन है कि आज जब जल-चिकित्सा के अतिरिक्त अन्य तत्व-चिकित्साओं का भी पूर्ण महत्त्व प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत निर्विवाद रूप से स्वीकार कर लिया गया है तथा जल-चिकित्सा के साथ ही साथ अन्य तीनों या चारों प्राकृतिक तत्वों का भी उपचार में पूर्णप्रयोग किया जाता है, उस समय भी प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति का दूसरा नाम 'कूने चिकित्सा प्रणाली' (Louis kuhne System of Healing) पड़ गया है । और आज भी, जब पाश्चात्य देशों में प्राकृतिक चिकित्सा-विज्ञान काफी उन्नत व अग्रसर हो चुका है, प्राकृतिक चिकित्सा का नाम सुनते ही प्रायः लोग अर्थ लगाते हैं कूने चिकित्सा प्रणाली के अन्तर्गत टब द्वारा विभिन्न स्नानों या बाथों का प्रयोग । प्रेसनीज, श्राथ, और नीप ने जलोपचार के पुनर्विकास तथा उसको आगे बढ़ाने व प्रचार करने में बहुत कार्य व परिश्रम किया । पर अभी तक जल-चिकित्सा के प्रयोग की विधियों का व्यापक रूप जनता के सामने नहीं आया था । जैसा कि पूर्व के पृष्ठों से पाठकों की धारणा हुई होगी, जल-चिकित्सा का रूप व प्रयोग, लुई कूने के पहिले तक, ठंडे व गर्म पानी के साधारण स्नानों, ठंडे व गर्म पानी की पट्टियों या गद्दियों तथा गीली चादर की लपेट तक ही सीमित व संकुचित था अभी तक जल-चिकित्सा का वैज्ञानिक आधार भी रहस्य के गर्भ में विलीन था । अभी तक जल-चिकित्सा के अन्तर्गत वर्तमान समय में प्रयोग में आने वाले पेड़ू स्नान, मेहन स्नान, सूर्य स्नान, वाष्प स्नान आदि विविध स्नानों का जन्म ही नहीं हुआ था । यह सब भी लुई कूने की विलक्षण प्रतिभा, अदम्य साहस ने किया । जल-चिकित्सा के प्रयोगों का आज जो रूप है उसके निर्माता आचार्य लुने कूने ही हैं । उन्होंने ही जल-चिकित्सा को पानी की पट्टिया, गद्दियों, गीली चादर की लपेट को साधारण स्नानों से कहीं ऊपर उठाकर उसे पेड़ू व मेहन स्नान, सूर्य व वाष्प स्नान आदि टब-बाथ के विविध प्रयोगों का विशाल रूप दिया । विविध प्रकार के उपचार सम्बन्धी स्नानों के आविष्कारक वे ही हैं । उन्ही की बुद्धि ने सब से पहिले जल-चिकित्सा

के वैज्ञानिक आधार को संसार के सामने प्रस्तुत किया। उन्होंने ही सबसे पहिले उच्चस्वर से घोषित किया कि सभी रोगों का कारण, उनकी जड़ एक ही है (Unity of all diseases) और वह है शरीर में विजातीय द्रव्यों (Foreign matter) का एकत्र होना उन्होंने विज्ञान-सम्मत तर्कों के आधार पर समझाया कि इसी विजातीय द्रव्य को शरीर से निकाल फेंकने में रोग-मुक्ति है, आन्तरिक सफाई द्वारा ही रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है और इस कार्य में जल-चिकित्सा का कोई दूसरा सानी नहीं है। उन्होंने रोगी के चेहरे व गर्दन का निरीक्षण कर रोगों के आश्चर्यजनक निदान का विज्ञान भी प्रस्तुत किया। उनकी दो पुस्तकें 'नवीन चिकित्सा विज्ञान (The New Science of Health) तथा आकृति निदान का विज्ञान' (The Science of Facial Expression) जल चिकित्सा-जगत के लिए अपूर्व युग-प्रवर्तक देन हैं जिनमें उनके वर्षों के अनेकानेक रोगियों की चिकित्सा सम्बन्धी अनुभव, उनके अपने सिद्धान्त, प्रयोग एवं आविष्कार सन्निहित हैं। उनकी 'न्यू साइन्स आव हीलिङ्ग' एक ऐसा ग्रन्थ है जिसके अनुशीलन करने के बाद कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो जल-चिकित्सा के वैज्ञानिक गुण से मुग्ध होकर स्वयं एक बार उसका प्रयोग कर लाभ उठाने को लालायित न हो उठे! ऐसी है वह प्रामाणिक, एवं वैज्ञानिक पुस्तक। कूने की इन दोनों युग-प्रवर्तक पुस्तकों का अविकल अनुवाद संसार की प्रायः सभी भाषाओं में हो चुका है और उनके आज तक जाने कितने कितने संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं! इन पुस्तकों को पढ़ कर विश्व के कोने-कोने में असंख्य असाध्य रोगियों को आज जीवन दान मिल चुका है और अब भी केवल इन्हीं पुस्तकों के बल पर बहुत से रोगी जलोपचार का आश्रय लेते हैं और लाभ उठाते हैं! आज भी कूने के दिये हुए जल-चिकित्सा संबंधी रोग मुक्ति के वैज्ञानिक सिद्धांत व प्रयोग उसी प्रकार अक्षुण्ण बने हैं। उनमें किंचित परिवर्तन भी आवश्यक नहीं समझा जाता है। हां, विविध उपचारात्मक स्नानों के प्रयोग व विधियों में रोग व रोगी की अवस्थानुसार कुछ हेर-फेर अवश्य कर दिया जाता है।

जल चिकित्सा का परिवर्तित रूप

जलतत्त्व के आश्चर्यजनक रोग निवारक शक्ति को जब प्रेसनीज जैसे किसान, श्राथ जैसे कोचवान, नीप जैसे पादरी और कूने जैसे जुलाहे ने संसार के सामने सिद्ध कर दिखाया, तो शिक्षित तथा विद्वान व्यक्तियों तथा डाक्टरों का ध्यान प्रकृति के अन्य तत्वों में निहित उपचारात्मक शक्तियों की ओर भी गया। और इस तरह अब आगे जल-चिकित्सा केवल जल तत्त्व द्वारा ही चिकित्सा न रह गयी बल्कि उसके रूप में परिवर्तन हो गया और उसने अपना स्वरूप प्राकृतिक चिकित्सा के रूप में बदल कर व्यापक व विस्तृत कर लिया। जल के अतिरिक्त अन्य तत्वों द्वारा चिकित्सा के महत्व को सामने रखने वालों में बवेरिया निवासी ओरनाल्ड रिक्लरी जर्मन डा० हेनरिक लामान, एडोल्फ जुस्ट आरनल्ड एहरेट, डा० डिवी और डा० केलाग प्रमुख हैं। आज विदेशों में सर विलियम आर्बथनाट लेन, स्टैनली लीफ,

स्टैनिली लीफ

हैरी बेनजैमिन, बर्नर मेकफेडन आदि प्रमुख जीवित चिकित्सकों में कोई भी ऐसा नहीं है जो अपनी चिकित्सा में जल-चिकित्सा का उपयोग न करता हो पर इसका यह अर्थ नहीं है कि वह रोग मुक्ति के लिये अन्य प्राकृतिक तत्वों की उपेक्षा करता है। 'आज जल-चिकित्सा का उतना महत्त्व एक स्वतन्त्र चिकित्सा प्रणाली के रूप में नहीं रहा जितना कि प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत एक प्रमुख सहयोगी उपचार पद्धति के रूप में।

हमारे देश में

हमारे देश में तो जल-चिकित्सा का सर्व प्रथम आगमन

(यदि वेद कालीन कथाओं को छोड़ देते हैं) तो कदाचित् गत प्रथम महायुद्ध के कुछ पूर्व ही लुई कूने की 'न्यू साइंस आव हीलिंग' (नवीन चिकित्सा विज्ञान) के हिन्दी-उर्दू अनुवाद के साथ ही हुआ कहा जा सकता है। और इसका श्रेय श्री श्रोत्रिय कृष्ण स्वरूप जी को ही है जिन्होंने सर्व प्रथम लुई कूने की इस युग-विधायक पुस्तक का हिन्दी व उर्दू अनुवाद जनता के सामने प्रस्तुत किया। और अपने जिले बिजनौर में एक जल-चिकित्सागृह भी खोला। ये कूने से पत्र-व्यवहार भी करते रहते थे और बराबर मौके-बे-मौके उनसे सलाह लेते एवं अपनी शंकाओं का समाधान करते रहते थे। आगे चल कर इस पुस्तक का अनुवाद भारत की लगभग सभी प्रमुख भाषाओं में हो गया। जिन लोगों ने इस पुस्तक के आधार पर अपनी चिकित्सा कर कठिन रोगों से मुक्ति पायी है उनकी संख्या भी गिनना असम्भव है। वे देश के कोने-कोने में उपस्थित हैं। आज भी जल-चिकित्सा अथवा प्राकृतिक चिकित्सा के नाम पर भारत के बहुत से घरों में कूने की 'नवीन चिकित्सा-विज्ञान पुस्तक ही मिलती है जिसे अब भी लोग पढ़ते और लाभ उठाते हैं।
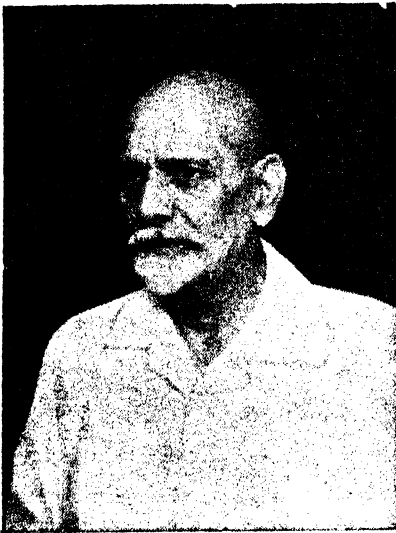
डा० लक्ष्मी नारायण चौधरी

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि कल का जल-चिकित्सक आज का प्राकृतिक चिकित्सक है और आज का प्राकृतिक चिकित्सक कल का जल-चिकित्सक। आज दोनों का समागम हो गया है। आज दोनों में भिन्नता अथवा पृथकता मिलना असम्भव है। आज दोनों में भेद करना बहुत ही कठिन है। यही बात हमारे देश के चिकित्सकों के सम्बन्ध में भी पूरी तरह से चरितार्थ होती
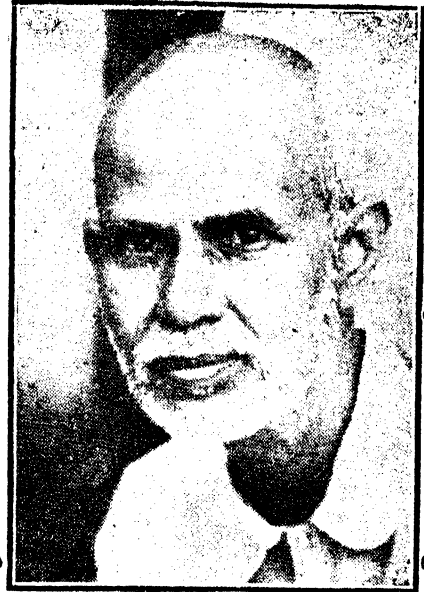
डा० के० लक्ष्मण शर्मा

है। आज भारत में यह नहीं कहा जा सकता कि कौन प्रमुख जल-चिकित्सक है और कौन प्राकृतिक चिकित्सक

डा० दीन शा मेहता

अथवा कौन उनमें से एक ही है। आज हमारे देश में

'प्राकृतिक चिकित्सक' कहलाने वाले ही चिकित्सक 'जल-चिकित्सक' हैं और प्रकृति के अन्य तत्वों के उपचार के

श्री जानकी शरण वर्मा

भी। इन चिकित्सकों में स्वर्गीय डा० लक्ष्मीनारायण चौधरी, डा० के० लक्ष्मण शर्मा, डा० दीन शा मेहता

डा० कामेश्वर शर्मा

डा० कृष्ण वर्मा डा० कुलरंजन मुखोपाध्याय, डा० विट्ठल दास मोदी, श्री जानकी शरण वर्मा, डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह

डा० खुशीराम दिलकश, सरदार जसवंत सिंह, डा० सुरेन्द्र प्रसाद गर्ग, डा० रामनारायण द्विवेदी, डा० वी० जी०

सरदार जसवंत सिंह

हुण्डेकर तथा श्री युगुल किशोर चौधरी के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें से बहुत से कुशल चिकित्सकों ने अपने-अपने
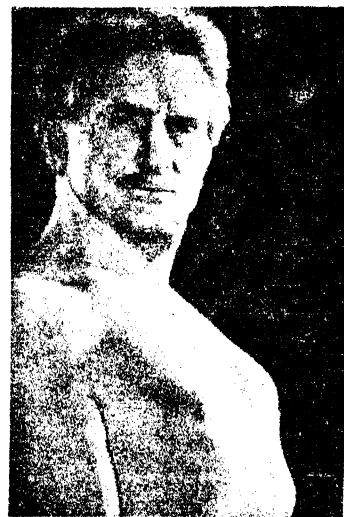
बर्नार्ड मैकफेडन

प्राकृतिक आरोग्य-मन्दिर स्थापित कर रक्खे हैं जिनके द्वारा

डा० वेंकट रमैया

रोग-पीड़ित मानव-समाज की अपूर्व सेवा हो रही है। उपर्युक्त महानुभावों के अतिरिक्त मद्रास, त्रिचनापल्ली, पूना, बम्बई की ओर भी अनेक प्रशंसनीय प्राकृतिक-चिकित्सक व जलोपचारक हैं जो अपनी अमूल्य सेवाएं सर्व साधारण को अर्पित कर रहे हैं। इनमें 'इण्डियन नेचुरोपैथ' (अंग्रेजी) और 'प्रकृति' (तेलगू) के सम्पादक डा० पूचा वेंकट रमैया का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

—:०:—

ग्राहकों को सूचना

'जीवन सखा' के विशेषांक (जनवरी का अंक) के प्रकाशन में अधिक विलम्ब हो जाने के कारण फरवरी और मार्च के अंक संयुक्तांक के रूप में प्रकाशित हो रहे हैं। अप्रैल से 'जीवन सखा' हर महीने नियमित रूप से निकला करेगा। —सं०

अपनी बात

यह विशेषांक

आज अपने प्रेमी पाठकों के सामने यह विशेषांक प्रस्तुत करते समय हमें जो हर्ष होना चाहिए था, वह हो नहीं रहा है। इसके कारण प्रत्यक्ष हैं। जो चीज जनवरी में ही प्रकाशित हो जानी चाहिए थी, वह पाठकों को मार्च में मिले, यह हमारे लिए कम लज्जा की बात नहीं है। इस असाधारण विलम्ब ने सचमुच हमारे स्वाभाविक हर्ष एवं उत्साह को पूरी तौर से ढक दिया है। किन्तु यह विलम्ब अक्षम्य होते हुए भी अकारण नहीं है। इसके अनेक कारणों में से दो कारण सब से प्रबल हैं।

विगत सितम्बर या अक्टूबर मास में हमने अपने जिन सहयोगियों एवं लेखकों के बल पर यह विशेषांक निकालने की योजना तैयार की थी, उन्हों ने अपना साहाय्य प्रदान करने में शिथिलता ही दिखाई। फल यह हुआ कि जनवरी में इस अंक के प्रकाशित हो जाने की तो बात ही अलग रही, मुश्किल से हमें उस समय तक दो या तीन फार्म की सामग्री प्राप्त हो सकी लेकिन हम हताश नहीं हुए। जो ख मौजूद थे उन्हें प्रेस में दे दिया और अन्य लेखों के लिए हमने अपने सहयोगियों से बारम्बार निवेदन करते रहे। इस प्रकार फरवरी के अन्तिम सप्ताह तक १२ फार्म का मैटर इकठा कर सके, जब कि हमारा विचार २० फार्म का विशेषांक निकालने का था। विलम्ब का एक दूसरा कारण यह हुआ कि हमने दिसम्बर मास से 'जीवन सखा' अपने निजी प्रेस से प्रकाशित करने का निश्चय किया। किन्तु इसे कार्यान्वित करने में हमें असाधारण एवं अप्रत्याशित कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। किन्तु हमें तो यह अंक निकालना ही था, इससे हम पीछे हट नहीं सकते थे। फिर विलम्ब होना अनिवार्य ही था।

इतनी विघ्न-बाधाओं और कठिनाइयों को पार कर जाने के बाद, यह अंक कैसा निकला है, इसके बारे में हम कुछ नहीं करना चाहते। इसका निर्णय तो हमारे जिज्ञासु पाठक ही करेंगे। हाँ, हमें सिर्फ यही निवेदन करना है कि उसके प्रकाशन में असाधारण रूप से जल्दबाजी हुई है। जिस क्रम से हम लेखों को रखना चाहते थे, वह सम्भव नहीं हुआ।

हम इस विशेषांक का आरम्भ जल-चिकित्सा के इतिहास से करना चाहते थे, लेकिन देर से प्राप्त होने के कारण उसे अन्त में ही रखने के लिए विवश हुए। इसी प्रकार अन्य लेखों का भी क्रम यथोचित रीति से निर्वाह नहीं किया जा सका। इसके अलावा लेखों में बहुत सी प्रूफ की गलतियाँ रह गयी हैं, जिनके लिए हमें हार्दिक खेद है।

हाँ, तो इतने विलम्ब से और इसी रूप में यह 'जीवन सखा' का विशेषांक प्रिय पाठकों के पास पहुँच रहा है। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है, हम यह कह सकते हैं कि हमने इसे यथाशक्ति उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया है। इसके लेखों में बहुत कुछ अंशों तक विविधता भी आपको मिलेगी, और कुल मिलाकर शायद यह आपको सुन्दर तथा उपयोगी ही जान पड़े, और तब आप इसके प्रकाशन सम्बन्धी विलम्ब एवं त्रुटियों को भुलाकर अपनी प्रसन्नता ही प्रकट करें।

× × ×

अन्त में हम अपने सहयोगियों एवं लेखकों के प्रति अपन हार्दिक कृतज्ञता प्रकट किए बिना रह नहीं सकते, जिनके सहयोग से हम यह विशेषांक प्रस्तुत कर सके हैं।

हम सेवा ग्राम आश्रम के डा० शंकरन् के प्रति विशेष रूप से कृतज्ञता प्रकट करते हैं, जिन्होंने अपने इतने गम्भीर, सुविस्तृत और उपयोगी लेख से इस अंक को विभूषित किया है। हाँ, हम यहां पर एक त्रुटि का परिहार कर देना चाहते हैं, जो उस लेख की परिचयात्मक टिप्पणी में हो गयी है। उसमें लिखा गया है कि 'आप वहां स्वास्थ्य एवं स्वच्छता सम्बन्धी विभाग के प्रधान हैं।' डा० शंकरन् ने इसका खण्डन करते हुए हमें सूचित किया है कि वह उस विभाग के प्रधान नहीं, प्रमुख कार्यकर्त्ताओं में हो सकते हैं। हमें इस भूल के लिए बड़ा खेद है। इसी प्रकार उस महत्वपूर्ण

एवं उपयोगी लेख में अन्य कई अनुवाद या प्रूफ सम्बन्धी गलतियाँ रह गयी हैं। जैसे—डा० कोच की जगह डा० कोड्रिन, माइक्रोब्स की जगह माइक्रोड्स आदि। किन्तु एक सबसे बड़ी त्रुटि हो गयी है पृष्ठ ५७ पर। उसमें लिखा है 'लेकिन जल का परिमाण ८ पौण्ड से (लगभग ४ सेर) से कम होना चाहिए'—जब कि होना चाहिए था कि '८ पौण्ड से कम न होना चाहिए।' इसी प्रकार उसके आगे की पंक्ति में छपा है '२४ घण्टे में होने वाले पेशाब की मात्रा ६४ औंस से कम होनी चाहिए—जब कि होना चाहिए था, 'कम न होनी चाहिए। अंग्रेजी के नौसिखिए कम्पोजीटरों के हाथों से अंग्रेजी शब्दों में अधिक त्रुटियां हुई हैं, इसे विज्ञ पाठक सुधार लेंगे।

× × +

डाक्टर शंकरन् के अलावा हम अपने अन्य सहयोगियों के भी प्रति उतनी ही गहरी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। हम विशेषतः डा० कृष्ण वर्मा, डा० दिलकश, डा० विट्ठल दास मोदी, श्री कामता प्रसाद अग्रवाल, श्री श्रीकृष्ण शर्मा के प्रति अपना आह्लादपूर्ण आभार प्रकट करते हैं, जिनके विशेष सहयोग के ही फलस्वरूप यह विशेषांक निकल सका।

× × ×

इस अंक के साथ-साथ 'जीवन सखा' अपने ११ वें वर्ष में पदार्पण कर रहा है। इस अवसर पर हम अपने सहयोगियों, 'जीवन सखा' के प्रेमी पाठकों, तथा अन्य सभी महानुभावों को हार्दिक बधाई देते हैं। मंगलमयी, लोक कल्याणकारी प्रकृति हमारे मार्ग को अधिक प्रशस्त, बाधा-रहित और प्रकाशमय बनावे, हम अपने लक्ष्य पर अपेक्षाकृत द्रुत गति से बढ़ें, यही हमारी हार्दिक प्रार्थना है!

'जीवन सखा' १।।) में

श्री देवेन्द्रदत्त गुप्त, केमिस्ट, नेवली शूगर फैक्टरी, एटा, ने अपनी स्वर्गीय पुत्री सुश्री वीणा रानी की स्मृति में हमारे पास २००) रु० इस उद्देश्य से भेजा है कि इस रकम से वाचनालयों को सस्ते मूल्य में एक साल तक 'जीवन सखा' दिया जाय। इसके अनुसार हमने २०० पुस्तकालयों को १।।) में (आठ आने की रियायत हमने अपनी तरफ से की है), साल भर तक 'जीवन सखा' भेजने का निश्चय किया है। आशा है, इसका समुचित लाभ उठाते हुए शीघ्र ही वे १।।) मनीआर्डर से भेज कर, साल भर के लिए 'जीवन सखा' के ग्राहक बन जायंगे।

व्यवस्थापक, 'जीवन सखा'
२८७, बादशाही मण्डी, चौक, प्रयाग।